



This is a digital copy of a book that was preserved for generations on library shelves before it was carefully scanned by Google as part of a project to make the world's books discoverable online.

It has survived long enough for the copyright to expire and the book to enter the public domain. A public domain book is one that was never subject to copyright or whose legal copyright term has expired. Whether a book is in the public domain may vary country to country. Public domain books are our gateways to the past, representing a wealth of history, culture and knowledge that's often difficult to discover.

Marks, notations and other marginalia present in the original volume will appear in this file - a reminder of this book's long journey from the publisher to a library and finally to you.

Usage guidelines

Google is proud to partner with libraries to digitize public domain materials and make them widely accessible. Public domain books belong to the public and we are merely their custodians. Nevertheless, this work is expensive, so in order to keep providing this resource, we have taken steps to prevent abuse by commercial parties, including placing technical restrictions on automated querying.

We also ask that you:

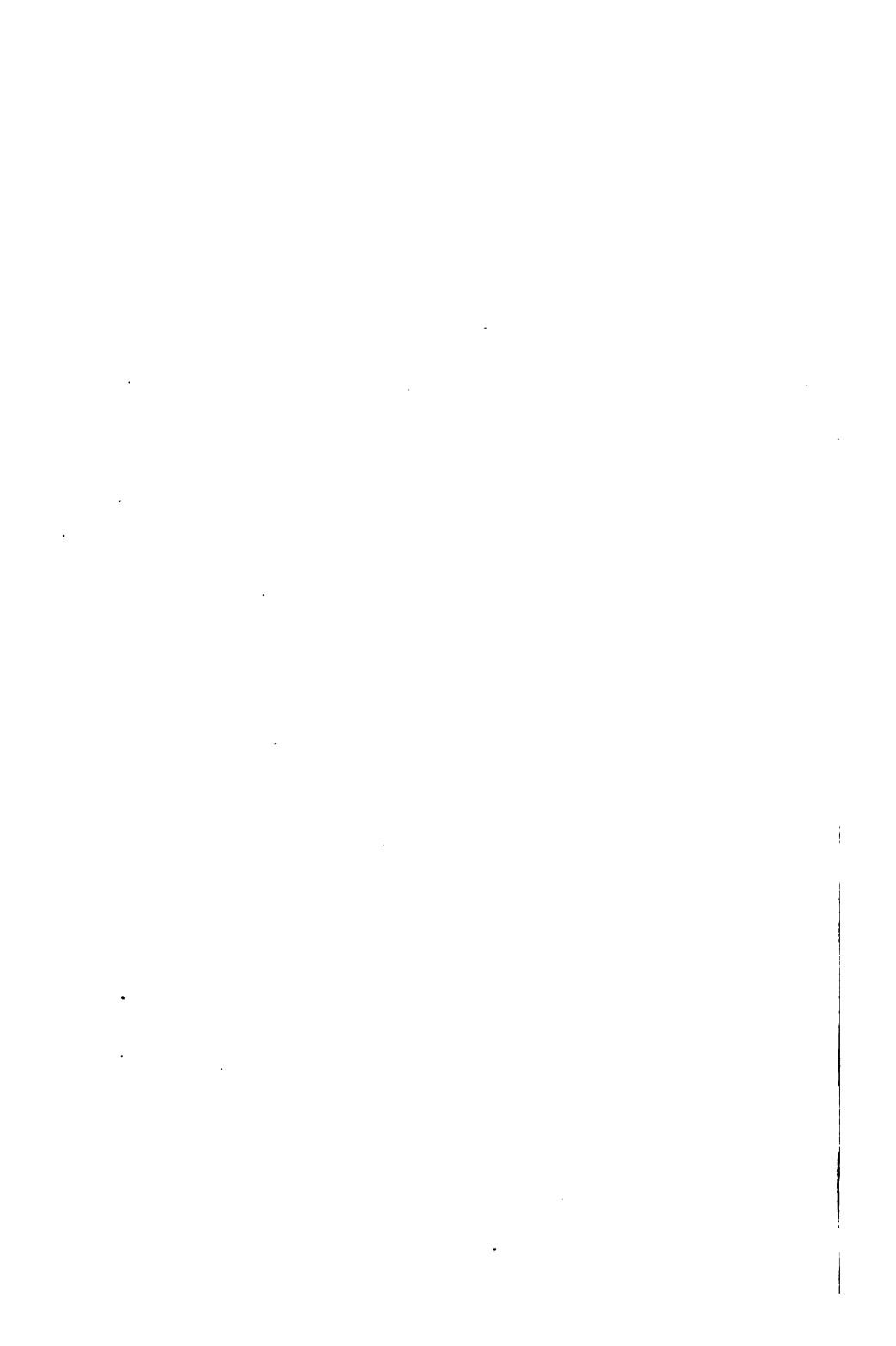
- + *Make non-commercial use of the files* We designed Google Book Search for use by individuals, and we request that you use these files for personal, non-commercial purposes.
- + *Refrain from automated querying* Do not send automated queries of any sort to Google's system: If you are conducting research on machine translation, optical character recognition or other areas where access to a large amount of text is helpful, please contact us. We encourage the use of public domain materials for these purposes and may be able to help.
- + *Maintain attribution* The Google "watermark" you see on each file is essential for informing people about this project and helping them find additional materials through Google Book Search. Please do not remove it.
- + *Keep it legal* Whatever your use, remember that you are responsible for ensuring that what you are doing is legal. Do not assume that just because we believe a book is in the public domain for users in the United States, that the work is also in the public domain for users in other countries. Whether a book is still in copyright varies from country to country, and we can't offer guidance on whether any specific use of any specific book is allowed. Please do not assume that a book's appearance in Google Book Search means it can be used in any manner anywhere in the world. Copyright infringement liability can be quite severe.

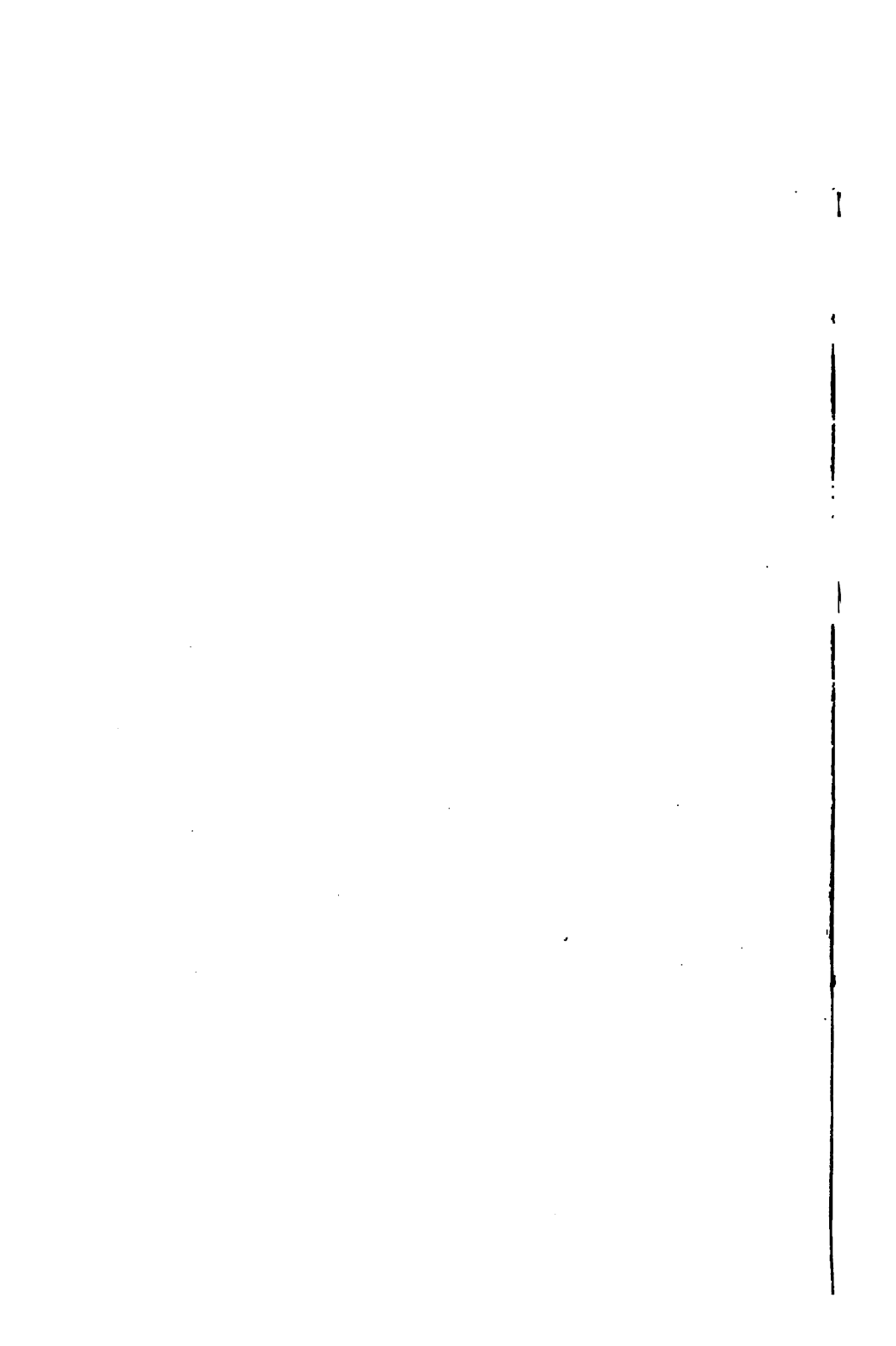
About Google Book Search

Google's mission is to organize the world's information and to make it universally accessible and useful. Google Book Search helps readers discover the world's books while helping authors and publishers reach new audiences. You can search through the full text of this book on the web at <http://books.google.com/>



**Provided by
The Library of Congress
Special Foreign Currency Program.**





Vol. XXI

Part I (Half Yearly)

**JOURNAL
OF
THE KERALA UNIVERSITY
ORIENTAL RESEARCH
INSTITUTE
AND
MANUSCRIPTS LIBRARY**



EDITOR

Dr. K. RAGHAVAN PILLAI

A. D. 1976 / M. E. 1152

S. E. 1898

11

12

13

14

15

16

17

Trivandrum, India (City), University
of Kerala.

Statistical Institute
Licence No. 664, dated 3-9-1949

Vol. XXI

Part I (Half Yearly)

JOURNAL
OF
THE KERALA UNIVERSITY
ORIENTAL RESEARCH
INSTITUTE
AND
MANUSCRIPTS LIBRARY



EDITOR

Dr. K. RAGHAVAN PILLAI

A. D. 1976 / M. E. 1152

S. E. 1898

**Journal of the Oriental Research Institute
and Manuscripts Library. (Half Yearly)**

Vol XXI-Part I.

Editor,

Dr. K Raghavan Pillai,

B A. (Hons). Ph. D. (Ind)

Director and Professor of Sanskrit,

O. R. I and Mss. Library. University of

Kerala, Thiruvananthapuram-17.

Published in November 1976.

No. of Copies. 250

Printed at Vijnanabhavan Printers-Trivandrum.9

Annual Subscription Rs. 10/-

Publishers

O. R. I and Mss. Library, University of

Kerala, Trivandrum-17

PK

3541

TS

1.21

DR. K. RAGHAVAN PILLAI

20.11.1976

20.11.1976

CONTENTS

PART-A

	PAGES
१ नारदीयस्तोत्रम् (गद्यम्)	1—2
२ सर्वमतसंग्रहः	3—30
३ गजेन्द्रमोक्षप्रबन्धः	31—44
४ उडुजातकोदयः	45—73
५ कृत्यरत्नावली	75—134

PART-B

1 Some Letters of Mm. T. Ganapati Sastri.	1—28
2 Dapdin's Version of the Story of Kadambari. Dr. Man Singh.	1—8
3 A Short Note on Telugu Prosody N. V. Krishna Warrior.	1—18
4 The role of mathematics in Physics and its absence in the Vaiśeṣika Sūtrā and the Prasas- tapāda Bhāṣya. Dr. Kadambari Haravu.	1—10

CONTENTS

PART-A

1-1	1-1	1-1
1-2	1-2	1-2
1-3	1-3	1-3
1-4	1-4	1-4
1-5	1-5	1-5
1-6	1-6	1-6
1-7	1-7	1-7
1-8	1-8	1-8
1-9	1-9	1-9
1-10	1-10	1-10

PART-B

1-11	1-11	1-11
1-12	1-12	1-12
1-13	1-13	1-13
1-14	1-14	1-14
1-15	1-15	1-15
1-16	1-16	1-16
1-17	1-17	1-17
1-18	1-18	1-18
1-19	1-19	1-19
1-20	1-20	1-20
1-21	1-21	1-21
1-22	1-22	1-22
1-23	1-23	1-23
1-24	1-24	1-24
1-25	1-25	1-25
1-26	1-26	1-26
1-27	1-27	1-27
1-28	1-28	1-28
1-29	1-29	1-29
1-30	1-30	1-30
1-31	1-31	1-31
1-32	1-32	1-32
1-33	1-33	1-33
1-34	1-34	1-34
1-35	1-35	1-35
1-36	1-36	1-36
1-37	1-37	1-37
1-38	1-38	1-38
1-39	1-39	1-39
1-40	1-40	1-40
1-41	1-41	1-41
1-42	1-42	1-42
1-43	1-43	1-43
1-44	1-44	1-44
1-45	1-45	1-45
1-46	1-46	1-46
1-47	1-47	1-47
1-48	1-48	1-48
1-49	1-49	1-49
1-50	1-50	1-50
1-51	1-51	1-51
1-52	1-52	1-52
1-53	1-53	1-53
1-54	1-54	1-54
1-55	1-55	1-55
1-56	1-56	1-56
1-57	1-57	1-57
1-58	1-58	1-58
1-59	1-59	1-59
1-60	1-60	1-60
1-61	1-61	1-61
1-62	1-62	1-62
1-63	1-63	1-63
1-64	1-64	1-64
1-65	1-65	1-65
1-66	1-66	1-66
1-67	1-67	1-67
1-68	1-68	1-68
1-69	1-69	1-69
1-70	1-70	1-70
1-71	1-71	1-71
1-72	1-72	1-72
1-73	1-73	1-73
1-74	1-74	1-74
1-75	1-75	1-75
1-76	1-76	1-76
1-77	1-77	1-77
1-78	1-78	1-78
1-79	1-79	1-79
1-80	1-80	1-80
1-81	1-81	1-81
1-82	1-82	1-82
1-83	1-83	1-83
1-84	1-84	1-84
1-85	1-85	1-85
1-86	1-86	1-86
1-87	1-87	1-87
1-88	1-88	1-88
1-89	1-89	1-89
1-90	1-90	1-90
1-91	1-91	1-91
1-92	1-92	1-92
1-93	1-93	1-93
1-94	1-94	1-94
1-95	1-95	1-95
1-96	1-96	1-96
1-97	1-97	1-97
1-98	1-98	1-98
1-99	1-99	1-99
1-100	1-100	1-100

नारदीयस्तोत्रम्* [गद्यम्]

अथतु भगवानयं जगत्त्रयपवित्रीकरणचणविचित्रतरवरित्रशाली
 कालजितयसासात्कर्ता वृष्टनिग्रहशिष्टानुग्रहनिरवग्रहधृताग्रहः
 तत्तदवसरेषु तत्र तत्र सत्वरमुपागत्य तत्तज्जनांस्तत्तत्कर्मसु प्रवर्तयन्नयत्नमेव निजजयनं पुण्येन
 हिरण्याभपुरस्सरानाममर्त्यपरिवदमित्राणामत्यन्तमसौ वैर्यहितकृत्याशंसी
 नित्यमेवास्मन्मित्रमिति श्रितश्चिन्तयतामुत्पाद्य सद्य एव तद्वधस्य निमिसीभवन्
 कदापि निजानुचरतुस्तुर्यवर्तप्रच्छवसिष्ठाष्टिवेणारिष्टनेमिभृगुभरद्वाज-
 तरद्वज्रमैत्रेयज्यवनकवचौर्वदेवलोतभ्यमेघातिचिगौतमाङ्गिरःपराशर-
 कौशिकपिप्पलाबपुलस्त्यागस्त्यप्रभृतिसमस्तमुनिस्तोमपरिवीतपरिसरो बहिरिकाश्व-
 मविरलबदरीतरनिकुबन्धनिबिरीसमविरतविमुक्तविरोधसहबिहरणसंजातसौहार्द-
 हरिद्विबहुरिणशार्ङ्गलकुलकाद्रवेयप्रमुखमृषकुलकुलं मदतरलकरिकलमकर्षताल-
 महलम्बनिमिलितमदकलकलकण्ठकण्ठनालगलितकलकूजितगानानुसारि-
 मबोधप्रमयूरपटुतरनटनाटोपसम्पन्नतीर्थत्रिकविचित्रितमुनेत्य
 प्राक्तनमुनोश्चरयोः नारायणयोः स्वविरचितसाङ्ख्यसारसर्वस्वभूतविध्वस्तव-
 प्रकारकलितप्रसाद-
 धनसुधाकरोदरनिरिवरपरमोपदेमाभूतरसमास्वाद्यन्
 कवाचिदमन्दचिदानन्दद्वैतसवानुभूतिविद्वरितमदादिविकारपरमहंसैकमिकेतं
 रवेतद्वोपमासाद्य सुदुर्लभतरतवीश्वरवरिवस्यामहोत्सवमनुभवन्,
 कदापि च सत्यलोकमेत्य निजापत्यसत्सापकोतुकतदात्वरित्यक्तनित्यदेवपाठकृत्यं
 पितृभविष्यञ्च भुवनवृत्तान्तानावेदयन्,
 कवाचिदपि प्रबोधसमयप्रवृत्तनृत्तपुरत्रयविमर्दनसमर्चनसत्तन्ममसमापनीयस्थमान-
 समस्तामरसमुदयसम्भर्दसमाकुल कंलासशैलमुषगम्य निजागमनसमा-
 धुनितविपश्चिकाप्रपञ्चनविरिञ्चप्रियतमा-
 विमुक्तमासनम् उदञ्जितानन्दपञ्चबाजारिनयनाञ्जलाभिनन्दितः समलङ्कुर्वन्,
 कदाचन सकलभुवनोपरि परिलसितम् अफलाभिलषितबहुलजन्माचरित-
 विपुलधर्मकलितनिर्मलीभाव-

* This stotra is taken from the Manuscript No. 20163 K.

सर्वमतसंग्रहः

[नारायणभट्टप्रणीतः]

१ वष्नीमश्चित्तबन्धं कलभवरमुखं घाम पाटीरवाटी-
२ क्षेत्रे वास्तव्यमेतद् त्रिभुवनमननमात्मसंहारपक्षम् ।
शरवस्त्रिश्चेयसाय स्मृतमिन्द्रावराणाम्भोजनिःशेषलोक-
श्लेषस्याः कल्पवृक्षं प्रकटितकृष्णाकम्बलध्रीकटाक्षम् ॥१॥

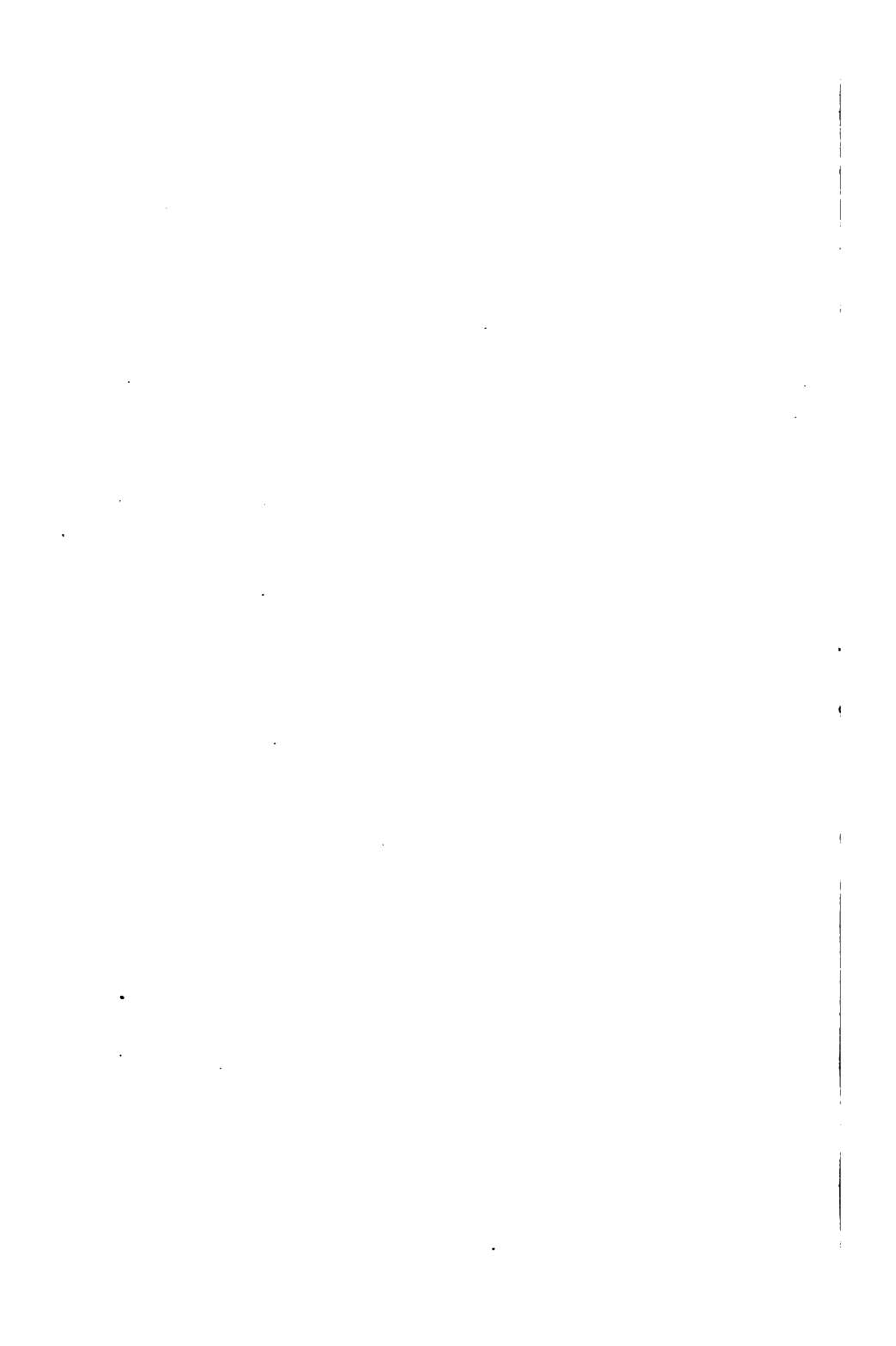
चतुर्दोष्णे कोष्णस्तनमररमालिङ्गनसुख-
प्रहृष्यद्रोष्णीऽस्मै त्रिभुवनपरित्राणपटुने ।
३ पटीरारामं नः स्फुटमनुजिघृक्ष्याधिवसते
नमस्कुर्वे धाम्ने प्रसुमरमहःकीस्तुभयुजे ॥२॥

विश्वोत्पत्त्याविहेतुर्मलिनदरगदाधक्रजाज्वल्यमान-
श्रीमद्बाहाचतुष्कं बहलघनघनश्यामलं निष्कलं नः ।
साक्षाद् ब्रह्माद्वितीयं तद्विद्यमुपनिषद्ध्येयमानम्भरूपं
४ धामैष्येधीति मुक्त्यै क्षटिति मलयजारामवास्तव्यमस्तु ॥३॥

१. 'वष्नीमश्चित्तबन्धः' (पा० सू० १. ४. ४१) इति नमुल । चित्ते वष्नीम इत्यर्थः ।
१, २, ४. 'त्रिभुवनमननमात्मसंहारपक्षम्' श्लेषम् । ४. 'क्रियासमभिहारे च' (पा०) इति
विचक्षणम् । एष्येधीत्यस्तु भृशपरित्यागार्थः ।



**Provided by
The Library of Congress
Special Foreign Currency Program.**



१
जीवोन्मोदोऽप्यलङ्घ्य संवासे निर्धनस्तथा ।

बन्धो मोक्षश्च पञ्चास्तिकायास्तैज्वाद्ययोर्मिदा ॥२१॥

जीवो बोधस्त्वभाक्ते, जड इतर इहायस्तु जीवास्तिकायः-

सिद्धो बद्धश्च मुक्तस्तिविश्वः इति; परः पुद्गलाद्यस्तिकायाः
आद्योऽयं क्षमादिभूतान्यचरमपि चरं; पुंश्वस्तिस्थितिभ्यां.

४
धर्माधर्मास्तिकार्यौ विदुरनुमितिः; वास्तिकार्यं द्विधाहुः ॥२२॥

लोकान्तर्वर्त्यदो व्योम लोकाकाशोऽस्य चोपरि ।

अलोकाकाश इष्टोऽसौ मोक्षस्थानमिति स्थितिः ॥२३॥

2

पुण्याः पुङ्गवकास्तु धर्म इतरोऽधर्मो जगत् तैरभूद्

वेहृशचावयवोहृ तत्परिणिस्तोः जीवोऽनृशित्यम्यके ।

१. केचन दिग्भराः बीजाबीजास्रवन्तसंहरनिर्जंरमोक्षाः सप्त तत्त्वानीति वदन्ति ।
 सप्तभेदेषां विवरणः । २. व्याख्यानोः—विषयविषयः विद्याः सम्प्रतिष्ठापनाः
 बीवपुद्गलधर्मनिर्गताः कश्चित्कालमेवास्ति । सप्तः पुद्गलस्रवस्तिकावो द्विविधः
 वराचरभेदात् । ३. अस्तीति काव्यन्तोऽस्रवन्तोऽस्रवन्तितावाः । स्वर्गस्रवन्त-
 र्गन्तः पुद्गलाः । पुद्गलं कस्मिन् । पृथिव्यादीनां चतुर्णां स्वाप्रवक्तव्यमप्यस्र-
 पुद्गलजनकत्वात् । तद्भेदाः पृथिव्यादीनि । ४. धर्मास्तिकावः प्रवृत्त्यनुमेयः ।
 प्रवृत्तिः शास्त्रप्रोदितमनुष्ठानं शास्त्रोपग्राहप्रवृत्तिश्च । ताभ्यामपूर्वाभ्यां धर्मांजुमेयः ।
 अततोऽर्थगमनक्षेत्रस्य बीवस्य देहेऽवस्थापितधर्मांजुमेयः । तेन ह्ययं देहो विच्छति ॥
 ५. 'सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विषयं' (सर्वमतसंग्रहे) । पुण्यैः सत्कर्मभिर्जाताः
 पुद्गला धर्मः, पापैः कर्मभिर्जाताः पुद्गला अधर्मः । आत्मा तच्चक्षुर्हृत्पाश्याभ्यान्
 इति केचित् । अनुरित्यन्ते ।

भूरिच्छिद्रघटस्थदीपवत्सो कर्मात्तदे(हो ? हा)वृत्तो

जानातीन्त्रियपञ्चकेन विषयानेव प्रमादो नः ॥२४॥

१

पुंस आत्मावयत्येतान् विषये पातयत्यसौ ।

इतीन्द्रियप्रवृत्तिर्वाञ्छवणात् कर्म बाह्यवः ॥२५॥

२

समाद्यात्मा प्रवृत्तिस्तु संबन्धोतीति संबरः ।

पुण्यापुण्ये निर्जरयेत् तप इत्येव निर्जरः ॥२६॥

स तु तप्तशिलारोहकेशोस्तुञ्छनपूर्वकः ।

बन्धोऽष्टविधकर्मैव धातिकर्म चतुर्विधम् ॥२७॥

सम्यग्ज्ञानं न मोक्षस्य साधनं स्यादिति श्रवः ।

स्याज्ज्ञानादरणीयकर्मं साधकमिति बन्धकम् ॥२८॥

वर्शनस्यप्रणीतं सत्त्वस्यैव धर्मादिति श्रीः ।

३

मोक्षोऽस्तुः त्रिविधेषु त्रियोपायबुधध्यानाम् ॥२९॥

मोक्षोऽस्तीति त्रिविधस्य त्रियोपायबुधध्यानाम् ।

एतच्चतुर्विधं श्रेयोहन्तृत्वाद् धातिकर्म नः ॥३०॥

१ आत्मावयति विषयेष्विति व्युत्पत्त्या इन्द्रियप्रवृत्तिराज्ञव इत्युच्यते । आत्मावयति चतुर्विधमिति व्युत्पत्त्या कर्मं च आत्मावयति इति प्रमादो नः । २ आत्मावयति विषयेषु आत्मावयति पातयति इतीन्द्रियप्रवृत्तिराज्ञवत्वम् । द्वितीये आत्मावयति कर्मोऽस्तुः इति कर्मोऽस्तुः । ३ इन्द्रियप्रवृत्तिमिति श्रेयो व ह्यः । बन्धाया संप्रवृत्तिरुच्यते इत्यपि पाठः । ४ त्रिविधेषु त्रियोपायबुधध्यानाम् । ५ आत्मावयति- ध्यातव्यः ।

१

आयुः कायविहायुष्कं मिलितं शुक्लशोणितम् ।

देहाकारपरीणाहशक्तिरस्यैव गोत्रिकम् ॥३१॥

नामिकं त्वत्र कललाद्यवस्थारम्भक्रिया ।

वेदनीयं तु कर्मषड्धनीभावोऽस्य तेजसा ॥३२॥

तत्त्वज्ञानाविधातिस्वादघातीवं चतुर्विधम् ।

(ए)तत्कर्माष्टकं बन्धो बध्नाति पुरुषानिति ॥३३॥

मोक्षस्त्वक्षयदेहाप्तिरलोकाकाश आत्मनः ।

सदोर्ध्वगतिरित्यन्येऽत्रार्हत्प्राप्तिरितीतरे ॥३४॥

तत्सिद्धिः सर्ववस्तूनामनेकान्तत्वबोधतः ।

स्वतः सर्वमनेकान्तमैकान्तानुपपत्तितः ॥३५॥

सर्वत्र सर्वधा सर्वं सदा सर्वात्मनास्ति चेत् ।

कस्येच्छया प्रवृत्तिः स्यान्निवृत्तिर्वा जिहासया ॥३६॥

अनेकान्तत्वपक्षे तु सत्त्वासत्त्वाव्यवस्थितेः ।

हेयहान्यं निवृत्तिः स्यात् प्रवृत्तिश्चेहिताप्तये ॥३७॥

१. आयुः कायत् उत्पादनद्वारेत्यायुष्कम् । २. 'इच्छिप्ताप्तये' इत्यपि पाठान्तरम् ।

तन्नानेकान्ततामानं सप्तभङ्गीयमच्यते ।

सर्वस्यैकान्तिकी सत्ता स्यादस्तीति निरस्यते ॥३८॥

असत्त्वसदसत्त्वानिर्वाच्यताश्च व्यवस्थिताः ।

स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति स्यादवाच्यमिति क्रमात् ॥३९॥

स्यादस्ति चावाच्यं चेति सदनिर्वाच्यतेदृशी ।

स्यान्नास्ति चावाच्यं चेति नियताऽसदवाच्यता ॥४०॥

स्यादस्ति नास्त्यवाच्यं चेत्युभयावाच्यतेदृशी ।

अनेकान्तिकताद्योती स्याच्छब्दोऽयमिहाव्ययम् ॥४१॥

तेनानेकान्तिकत्वेन सत्त्वाद्यस्तीति कथ्यते ।

सप्तभङ्गीनयोऽयं स्यात् तेनानेकान्तता स्थिता ॥४२॥

१. सप्तभङ्गीनयः—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः, इति वाक्यसमूहः सप्तभङ्गीनय इत्युच्यते । अत्र सर्वत्र स्याच्छब्दः सापेक्षताया अनेकान्ततायाश्च द्योतकः । एवमेतदिति निश्चयाभावोऽनेकान्तता वक्तव्यशब्दस्य अनिर्वाच्यमित्यर्थः । सर्ववस्तूनामनेकान्ततासाधनाय आहर्तृत्वं न्यायः प्रयुज्यते । यथा—षटाद्यस्तिस्त्वविवक्षायां 'स्यादस्ति', कथञ्चिदस्तीत्यर्थः । तैत्तिकालगुणाद्यपेक्षया च कथञ्चित्त्वम् । षटादिनिषेधविक्षायां 'स्यान्नास्ति', कथञ्चिन्नास्तीत्यर्थः । क्रमेण षटादस्तिस्त्वनास्तिस्त्वविवक्षायां 'स्यादस्ति च नास्ति च' इति प्रयोगः । कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्तीत्यर्थः । युगपदस्तिस्त्वनास्तिस्त्वयोविवक्षायां वाचः क्रमप्रवृत्तिरशुभम् युगपदवाच्यमिति 'स्यादवक्तव्यम्' इत्यस्यार्थः । आद्यास्तिस्त्वभङ्गः अन्त्येनासत्त्वेन च युगपदवाच्य इति 'स्यादस्ति चावक्तव्यम्' इत्यस्यार्थः । अन्त्यश्चाद्येन भङ्गेन च युगपदवाच्य इति 'स्यान्नास्ति चावक्तव्यम्' इत्यस्यार्थः । 'स्यादस्ति नास्ति' इत्ययं भङ्गः एकैकेन सह युगपदवाच्य इति 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यम्' इत्यस्यार्थः । २. 'सत्ताद्य' इति पाठान्तरम्

१
एकान्तनित्यतादौ च स्याद्वाचं योजयामीहे ।
स्यादस्ति नित्यमित्यादिमनेकान्तं ततोऽवसम् ॥४३॥

पक्षाः सद्वाद्यसद्वादिसदसद्वादिनां क्रमात् ।
अनिर्वाच्यसदाद्युक्तपूर्वानिर्वाच्यवादिनाम् ॥
निर(स? स्थ)न्ते (सप्त)मङ्गीनयेनात्र स उच्यते ॥४४॥

३
विमतं वस्तुवनेकान्तं प्रमेयत्वान्नसिद्ध्यत् ।
इत्यादिनानुमावेनाप्यनेकान्तिकता स्थिता ॥४५॥

४
छान्तावन्यस्मृतिबाधो युक्तो तत्सदस्त्वतः ।
सदसत्ख्यातिरेषातो दृष्टान्तोऽत्रैव चेष्ट्यते ॥४६॥

सम्मतं सर्वविकोऽहं कतु सप्तमे स्वर्गं वजेत् कर्मणिः
केशोल्लुञ्छनपिञ्छधारणमुर्ध्वं हस्तादिभिर्नास्थितम् ।
कृत्स्नं वस्तुननुसन्निधानजन्यतोऽप्यत्र त्वमेकान्तिकं
मुक्तः प्राप्त्यति चे सद्योऽर्थगमनं कर्मणिजं चेष्ट्यते ॥४७॥

मन्मते भेद इकाव्यकत्रावर्तकमुद्रसतकुलम् ।
वेदाद्यप्रामाण्यं योगीदीनां न धर्मता चेति ॥४८॥

- १ 'नित्यत्वैकत्वादि' च । २. 'योजयन्' 'वि' 'इति' च 'वाक्यमिह' ।
३. विमतं सर्वं वस्तु वनेकान्तं प्रमेयत्वान्नसिद्ध्यत् । हेरम्बवत् सामर्थ्यमित्येव
इत्यादिः बाधिसंशयः । ४. सदसद्वतः - वनेकान्ततया 'इदं रजतं' 'ये
रजतम्' इति प्रतीतिबाधो सम्भवतः । सत्त्वात् प्रतीतिः असत्त्वात् बाधित्वेनैव ।

नायं पक्षो युक्त एकत्र तावत् सत्त्वासत्त्वे नोपपन्ने विरोधात् ।

^१ ते धर्मो किं वस्तुमोऽयं स्वरूपं नास्तिऽन्यत्वेऽन्येधर्मप्रसङ्गात् । ॥४९॥

^३ नान्योऽन्यत्वेऽन्यत्वरूपप्रकाशत् तस्ते युक्ते देसकमसादिभेदात् ।

तद्यत् प्रोक्तं न प्रवृत्तिनिवृत्तिश्चैकान्तत्वे स्याद्वितीदं निरस्तिम् ॥५०॥

^४ देशे क्वापि क्वापि काले च सत्त्वाद् व्यापारोऽत्रवान्ययोः स्यान्नवृत्तिः ।

^५ युष्मत्पक्षे सप्त चैते पदार्था एतत्त्वस्तत्त्वेकदेशेति न स्यात् ॥५१॥

स्याद्वादोऽयं तेषु सप्तस्वपि स्यात् तेनैतेषां नैव निर्धारणं स्यात् ।

वस्तुत्वात् स्यात् किञ्च निर्धारणेऽपि स्याद्वादस्तत्कर्तृमानादिके च ॥

एतान्यातः सन्ति नो. वेत्यमन्दे सन्देहे स्यान्नैव निर्धारणेषाम् ।

तद्वैधुर्ये नोपदेशो गुरुणां शिष्याणां चानिर्णायान्न प्रवृत्तिः ॥५३॥

नित्यत्वादेरप्यनेकान्ततोक्ता तज्जीवादेर्नित्यता स्यान्न वेति ।

^६ सिद्धेस्तेषु वस्तुमोक्षोदाहश्च स्याद्वा नो. वेत्याकुलत्वाच्च नोभौ ॥५४॥

१. ते. सत्त्वासत्त्वे । वस्तुत्वमायां सत्त्वस्य सत्त्वद्वयवामसत्त्वस्य वानुवृत्तिप्रसङ्गात् उभयोऽपि वस्तुत्वमत्वात् । २. 'प्यस्य सत्त्वप्र' इत्यपि पाठान्तरम् । (?)

३. सर्वदा एकस्मिन् वस्तुनि द्वयप्रसङ्गात् वस्तुत्वं सत्त्वासत्त्वे । ४. अत्रैव-
एस्मिन् देशे यस्मिन् काले च वटादिवस्तु न वर्तते एस्मिन् देशे तस्मिन् काले च ।

५. सप्त पदार्थाः— जीवाजीवासवसंवरनिजैरन्ध्रमोक्षाः । ६. उभौ— मोक्षादि
जीवादौ ।

स्याद्वादोऽयं मानमेवोभयात्मा किं वाद्यश्चेत् सोऽपसिद्धान्त एव ।
 द्वितीयके केन सिद्धान्तसिद्धिः प्रामाण्याच्चेद् वैपरीत्यान्न च स्यात् ॥५५॥

२
 प्रत्यक्षाद्यैः सर्वभावा गृहीता एकान्तास्तत्तैर्विरुद्धानुमा ते ।

३
 एकान्ताश्चेत् त्वत्पदार्थाश्च हेतोश्चानैकान्त्यं स्यान्न चेदप्रवृत्तिः ॥५६॥

४
 दृष्टान्तेऽस्मिन् यो नृसिंहाविरुक्तस्तस्यापि स्यात् साध्यवैकल्यदोषः ।
 नारैः संहैश्चाङ्गभेदैरुपेतो जन्तुः सोऽपीत्यस्य चैकान्ततेति ॥५७॥

५
 आत्मानं कथयन्ति नास्तिकधियो लोकायताद्या अपुः

केचित् तं पुनरिन्द्रियाण्यथ पुनः प्राणान् वदन्त्याहंताः ।

बुद्धा बुद्धिमुशन्ति(ता मम ? तेऽवपि) पुनर्बाह्यार्थमाध्यक्षतः

सिद्धं क(श्च)न कश्चिदप्यनुमितेः सिद्धं तमेवाब्रवीत् ॥५८॥

१. उभयात्मा— स्यादस्ति मानं, स्यान्नास्ति मानम्, इति रूपम्. मानामानरूपकम् ।

२. प्रत्यक्षेण यावतां भावानामुपसम्पन्नः तावतामेकान्तमेव (नियतमेव) रूपमुपसङ्गते नानिषत्तम् । अतोऽध्यक्षबाधः । ३. त्वत्पदार्थानां नित्यसिद्धानामाहृतसम्पन्नानां पदार्थानामवैकान्ततापत्तिः । हेतोः प्रमेयत्वस्थानेकान्त्यं. तस्मादप्रवृत्तिः अनुमानस्य ।

४. नृसिंहो नाम नराण्ययवैः सिंहावयवैश्च सम्भूयारण्यः कश्चिदवयवो । तस्यैक-
 रूपत्वात् द्वैरूप्यम् इति साध्यवैकल्यम् । ५. प्रधानतया चत्वारो बीजाः
 साध्यमिकयोवाचारसोऽन्तिकवैभाषिकभेदात् । तत्र वैभाषिकमते बाह्यार्थः
 प्रत्यक्षतः सिद्धः सोऽन्तिकमते अनुमितेः सिद्धः ।

१

कश्चित् तामिह केवलां कथितवानद्वैतवादी परः

शून्यां तामपि कश्चिदाह तदिमे चत्वार एषां मतम् ।

यत् सत् तत् क्षणिकं मनोमयमिदं, नास्तीश्वरः कश्चन

प्रामाण्यं निगमस्य नास्ति, यदतः कार्या न(या)गादयः ॥५९॥

२

प्रत्यक्षं हि प्रमाणं न तु पुनरपरं भूतसंयोगतश्चिद

देहस्त्वात्मा स्वभावः सुखमसुखमतो नास्ति धर्मस्तदर्थः ।

मोक्षः प्राणाख्यवायोरपगम इह भोगो हि तस्मादुपास्यो

बिद्वद्भिर्(दुन्ध ? दण्ड)नी(त्यादिभि ? त्ये)न्द्रियमपि च

परापेक्षया प्राण आत्मा ॥६०॥

कर्ता धर्मस्य भोक्ता वपुषि परिमितो ज्ञानतो बन्धमो(क्षो ? क्षो)

कादाचित्कस्वभा(वो ? वो)न भवति सुख(दे ? दो)धर्म आत्मानुगासी।

धर्मोऽहंसेव येषां क्षपणकगुरवो वेदबाह्याश्च तेऽपि

ॐ * * * * * ॥६१॥

भूरीद आत्मानं चिदचिद्भिदोरिति कथयन्त्येव लोकायताद्याः (?)

देहो नात्मा जडो ने भयमिह प्राहुर्हि वंशेषिका (?)

मन्यन्ते पुनराश्रया...तममुं नैयायिकाः केचन

प्राहुः के(श ? च)न कर्मभाजमनिशं प्राभाकर(१)स्ते पुन-

स्ते(भरगा ?)खलु कर्मभिश्च तमिति प्रायोऽत्र भेदः स्मृतः(?) ॥६२॥

१. अद्वैतवादी परः— योगाचारः । तन्मते केवला बुद्धिरेवास्ति । शून्यां तामपि-
तामपि बुद्धिर्गपि शून्यां कश्चित् माध्यमिक आह । माध्यमिकस्य मते शून्यमेवैकं
तत्त्वं विद्यते नान्यत् कश्चित् ॥ २. चित् चेतन्यम् ।

सांख्याः सप्रकृतिं सृजन्तमखिलं चात्मानमाहुः परं

प्रोचुः पाशुपताः सदाशिवममुं श्रीवासुदेवं पुनः ।

प्रद्युम्नं त्वनिष्कृष्टं चरपरे ते(च ? चै)व सङ्ख्येयं^१

* * * * * ॥६३॥

कर्मद्रव्यगुणा विशेषसमवायी (च ? चापि) सामान्यमि-

त्येतत्षट्कपदार्थजातमवदन्यायी स(त् ?)वैशेषिकः ।

द्रव्यान्तर्गतं एव जीवपरतामिन्द्रोऽयमत्मा तत्-

स्तज्जानादिह मुक्तिरत्र सुलभा साधर्म्यबंधमर्थतः ॥६४॥

*प्रत्यक्षं त्वनुमानमागम इह त्रीयेव मानानि...

श्रोतं कर्म हि कार्यमीश्वरकृतत्वादेव मानं श्रुतेः ।

जीवानां कृतकर्मणां स फलदो नान्ये तु जीवादेवः

* * * * * ॥६५॥

हित्वा काम्यनिषिद्ध ... -- ... मतकं

य(नु ?)त्तत् कर्म हि कुर्वतामनुदिनं शुध्येत धीर्यत्ततः ।

प्रारब्धावधि कर्मभोगविरतौ मोक्षः शिलासन्निभः

पक्षेऽयं गदितः प्रभाकरगुरोश्चात्मा विभुश्च ध्रुवः ॥६६॥

विभुर्विभिन्नः प्रतिदेहमात्मा जडो भजन् कर्मफलानि भुङ्क्ते ।

* * * * * ॥६७॥

१. अक्षरे रामानुजीयः ।

* 'भासवंज्ञश्च सांख्यास्तितयम्' (मानमैयोदयः P. ४) इति दिनाः ताकिर्ज्ञ-
न्यतमस्य भासवंज्ञस्य मतमिदं स्यात् ।

भक्तावाञ्छितदो(?)वकाति करणाप्यवेऽस्य मुक्ति शिला(?)

* * * * *

नित्यानन्दानुभूतिर्भवति नहि शिलासंनिभा मुक्तिरेषा ।

को वा वेदप्रणीतं विधिर्वादिह विधायेश्वरस्य प्रसादा-

न्मूर्च्छामिच्छेद्विशिद्धहह विरसतामात्मनोऽन्यत्समानम् ॥६८॥

शास्त्रं प्रायोऽत्र भे(दंस्त?दस्त्व)यमिह तु पुनः षोडश स्युःपदार्थाः॥६९॥

* * * * *

* * * * *

गोरूपेण यथावगम्य गवयस्तेनोपमानाह्वयं

मानं चापि चतुर्थमि(ष्य? च्छ)ति पदार्थास्ते प्रमाणादयः(ः)॥७०॥

१

द्वेष्टव वैशेषिकनामकं च नैयायिकं चेति हि तर्कशास्त्रम् ।

* द्विमानभाष्यं कृष्णान् कर्णवद्वस्तुप्रसाधं परमक्षपादः ॥७१॥

(वैशेषिकमतम्)

प्रत्यक्षमनुमितिर्द्वयोश्च मानं कदाचन वक्तृमय एव हि लिङ्गभूतः ।

वैशेषिकस्य कुक्ष्यात् तु निमित्त एव ईशस्य कुक्ष्यनुमिते विषयः प्रमाणम्

॥७२॥

१. 'द्वेष्ट' B. २. कर्णवद्वस्तु 'कृष्ण' B

* द्विमानं प्रत्यक्षानुमानरूपम् ।

६ वेदवाक्यप्रयोगेनैव कुक्ष्यादयः प्रमाणादयस्तेनैव नुमिते सति तस्मिन् वेदवाक्ये प्रमाणादयमित्यर्थः ।

अत्र बलु द्रव्यगुणौ कर्म च जातिविशेषसमवायो ।

इति षड् भावपदार्थाः सप्तममिच्छत्यसावभावमपि ॥७३॥

द्रव्यं गुणाश्रयं स्यात् क्षितिजलतेजःसमीरगगनानि ।

कालदिगात्ममनांसित्येवं द्रव्याणि नवविधान्येव ॥७४॥

क्षित्याद्याश्चत्वारो नित्यैरणुभिः कृता अनित्याश्च ।

गगनादयोऽत्र नित्या विभवश्च मनस्तु गतिम(द)गुरूपम् ॥७५॥

पृथिवी मृत्पाषाणद्रुमघटरत्नादिरूपिणी विविधा ।

घृततैलक्षीरादिश्चाग्निविनाश्यत्वहेतुतः पृथिवी ॥७६॥

सरिदर्णवहिमकरकप्रमुखेर्भेदैश्च वारि भूरिदिधम् ।

तेजश्च सूर्यताराविद्युद्दहनाविभेदतो विविधम् ॥७७॥

कलघोतसीसलोहास्तेजांस्येवाग्निनाशयताभावात् ।

वायुः प्रणादिभिदः परमाणुकृतास्त्वमी पृथिव्याद्याः ॥७८॥

गगानाद्यास्त्विह नित्यास्तेष्वणुरूपं मनोऽपरे विभवः ।

अत्र चतुर्शितिधा गुणा मतास्तेषु चाष्ट भूतगुणाः ॥७९॥

रूपरसगन्धशब्दस्पर्शस्नेहद्रवत्वगुरुताख्याः ।

सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्मा अधर्मबुद्धी च ॥८०॥

१. 'स्तादिरू' इत्यप्यादर्शे । (A) २. 'वि विविधम्' A. ३. 'सूर' B.

आत्मगुणा अष्ट; ततः सामान्यगुणाः परस्वमपरस्वम् ।

योगविभागपृथक्ताः संख्या परिमाणमपि च संस्कारः ॥८१॥

*नैत्यमृते धरणिगुणास्तेजोन्वयरूपपाकजाः सर्वे ।

१

आकुञ्चनप्रसारणमुत्क्षेपणमत्र खल्वपक्षेपः ॥८२॥

गमनमिति पञ्चधा स्यात् कर्म; भ्रमणादिकं च गतिरेव ।

द्रव्यगुणकर्मवृत्तिर्द्रव्येष्वेकत्वधःकरी जातिः ॥८३॥

सा द्विविधा परजातिः सत्ता गोत्वादिरपरजातिः स्यात् ।

भेदकरहितेषु पुनः परमाणुष्वपि च मुक्तजीवेषु ॥८४॥

अन्योन्यपृथक्त्वार्थं विशेषनामा पदार्थ आद्रियते ।

गुणजातिकर्मणां यो द्रव्यैः संबन्ध एष समवायः ॥८५॥

नास्तीति बुद्धिबोध्यस्त्वभाव इत्थं पदार्थनिर्णीतिः ।

एवं पदार्थतत्त्वे ज्ञाते संसारदोषमवगच्छन् ॥८६॥

आत्मस्वन्तर्भूतं शिवमेकं भजति विश्वकर्तारम् ।

तदनुग्रहाद् विरक्तः सुखेष्वपि स्फीतदुःखमिश्रेषु ॥८७॥

(नैयायिकमतम्)

आत्मगुणोच्छेदमयीं मुक्तिं पाषाणवत् स्थितिं लभते ।

तदिदं मतं न हृद्यं कथं हि शाब्दं प्रमाणमपनोद्यम् ॥८८॥

१. 'व' B.

* इदं चिन्त्यं नैत्यस्यापि पाकवत्त्वात् ।

अमातेऽर्थे तु कथं तद्विषया वक्तुमुद्विग्नमेया ।

उपमानमपि च मोक्षं मोक्षेदृशो नय इत्युपाकृत्यं ॥८९॥

विपिनगतेन मोक्षेदृशं पश्यन् गवयोऽवमित्यर्थेति दृढम् ।

तस्माच्चतुष्टयमाप्नोति ब्राह्मेति न्यायस्तस्मिन्नेव दृष्टे ॥ ९०॥

षोडशपदार्थबीजादेव च निःश्रेयसाप्तिरिति चेत् ।

विदिता हि षट्पदार्थो नास्ति कदाचिद् हि याति संग्रहेण ॥९१॥

जल्पाद्यैस्तान् जित्वा मानाद्यैर्निजमतस्थितिः कार्या ।

मानप्रमेयसंशयफलदृष्टान्तास्तथैव सिद्धान्तः ॥९२॥

अवयवतर्कविनिर्णयवादा जल्पस्ततो वितण्डा च ।

हेत्वाभासाश्छलमपि जातिविभेदाश्च ^१ निग्रहस्थानम् ॥९३॥

एवं द्व्यष्टपदार्थाः केसोऽस्मात्पीककृततया नाम् ।

परमाणुसृष्टताद्यं चास्मिन् कणप्रक्षवत् प्रेक्ष्यम् ॥९४॥

षोडशवस्तुषु चैषु प्रमेयबोधः प्रधानममृतादये ।

आत्मशरीराकार्या बुद्धिश्च अन्यैः प्रवृत्तिदोषो च ॥९५॥

प्रेत्योद्भवफलदुःखान्यपथर्षो द्वादश प्रमेयानि ।

एषां तत्त्वविवेकाद् भ्रमादिनाशेन ^२ विषयवैराग्यात् ॥९६॥

१. 'विग्र' B. २. 'विरहितः शिवाचं नास्तमलः' इत्यपि पाठः—A, B.

मोक्षेच्छुः स्वात्मानं जीवमनुध्याय सम्यगाकलयन् ।
शिवभजनलब्धयोगात् पूर्वार्जितसुकृतदुष्कृते पश्यन् ॥९७॥

१
योगकृतैर्बहुदेहैस्ते संक्षिप्यानुभूय संक्षपयन् ।
*सुखदुःखदेहहीनो मुक्तः स्वस्थः शिलावदेवास्ते ॥९८॥

(निरीश्वरसांख्यमतम्)

इदमपि मतं न रम्यं वेदस्य हि नेश्वरो भवेत् कर्ता ।
उपदेष्टेवास्य स्यात् सर्वज्ञः किं स विस्मरेद् वेदान्
तेन हि नित्यान् वेदान् प्रामाण्यं च स्वतो जगुः सांख्याः ।
परमाणुजसृष्टेश्च श्रुतिबाधात् प्रकृतिसृष्टिमेवाहुः ॥९००॥
प्रकृतिः स्वयमेवासौ महदादिजगन्मयी हि परिणमते ।
कपिलपतञ्जलिरचितं निरीश्वरं सेश्वरं च सांख्यं स्यात् ॥९०१॥
तत्राद्ये स्वयमेव प्रकृतिर्जगदात्मना हि परिणमते ।
२
असतः शशशृङ्गादिवदनुद्भवाद् व्यक्तिरेव सृष्टिः स्यात् ॥९०२॥
प्रकृतेर्महानमुष्मात् त्रिगुणैस्त्र्यंशो भवेदहङ्कारः ।
सत्त्वांशात् तस्य मनो राजसभागाद् दशेन्द्रियाणि स्युः ॥९०३॥

१. ते सुकृतदुष्कृते । २. तिले पूर्वं स्थितस्य तैलस्य यथा निष्पीडनेन प्रकाशः
(व्यक्तिः) तथा सृष्टिरपि प्राक् तत्कारणे सूक्ष्मरूपेण स्थितस्य प्रकाश एव ।

* 'एकविंशतिप्रभेददुःखोच्छेदो मोक्ष इति तादिकाः कीर्तयन्ति । देहः, बहिन्द्रियाणि,
बन्ध विषयाः, बन्ध दुःखाः, सुखं, दुःखं चेत्येकविंशतिप्रभेदं दुःखमाचक्षते'
(भाषभेयोदयः—P. ८७)

तामसभागान्छन्दः स्पर्शो रूपं रसश्च गन्धोऽपि ।

१ तैरेव भूतसूक्ष्मैः कृतानि विद्यदाविषञ्चभूतानि ॥१०४॥

एतानि प्रकृतिमुखान्यत्र चतुर्विंशतिर्हि तत्त्वानि ।

अक्षानुमानशब्दैस्त्रिभिः प्रमाणैस्तु तानि विज्ञाय ॥१०५॥

*तेभ्यः पुरुषस्य पुनर्विवेकबोधेन मुक्तिरेतेषाम् ।

२ बन्धक एव तु यागो हिंसायोगेन नरकमिश्रश्च ॥१०६॥

ये तु ध्यानजपाद्या निवृत्तिधर्मास्त एव मोक्षाङ्गम् ।

महदाख्याया बुद्धेः सुखदुःखाद्या गुणा न पुरुषस्य ॥१०७॥

प्रकृतिवियोगात् तेषां विगमो मोक्षः शिलावदत्रापि ।

इति हि निरीश्वरसारव्यं सृष्टावतेश्वरस्य नाश्रयणात् ॥१०८॥

(शेश्वरसांख्यमतम्)

शेश्वरसांख्ये तु पुनः प्रकृतिः सृजतीश्वरेक्षणक्षुभिता ।

३ अहदादयोऽत्र तुल्या ईशयुतं पञ्चविंशकं तत्त्वम् ॥१०९॥

१. तैरेव-बन्धादिभिरेव । २. 'योगो' B.

* 'प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानात् पुरुषस्य स्वरूपावस्थानं मोक्ष इति सांख्याः'
(मानमेवादय P. 88)

§ पुरुषप्रकृतिमहवहङ्कारमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्विज्ञानाग्राह्यादपायूपस्थमग्नस्पर्श-
रूपरसगन्धाकाशवायुबलित्तिलकभूमिषु पञ्चविंशति तत्त्वेषु पुरुषमपह्नायेदमुक्तिः ।

‡ पुरुषः परः पुरुष, इति भेदे शेश्वरसांख्यानो तत्त्वानि षड्विंशतिः ।

न पुनर्विबोधमा^१(त्रा मु? त्रान्मु)क्तिः समलस्य सम्यगस्फुरणात् ।
अष्टाङ्गात् त्विह योगाद् विमलस्याश्वात्मदर्शनान्मोक्षः ॥११०॥

चर्ज्यत्यागोऽत्र यमो हरिभजनादिव्रतं तु नियमः स्यात् ।
पद्याद्यासनमाहुः प्राणायामांस्तु रेचकादींस्त्रीन् ॥१११॥

प्रत्याहारः स्वात् स्वात् समनस्केन्द्रियनिवर्तनं विषयात् ।

मूलाधारप्रभृती^२ धारणमनिलस्य धारणामाहुः ॥११२॥

ईश्वरचिन्ता ध्यानं तत्रैव मनोलयः समाधिः स्यात् ।

विद्याविद्यारूपं द्विविधं योगस्य फलमिति प्राहुः ॥११३॥

भक्तिविरागज्ञानं विद्यात्मकमन्यदणिममहिमादि ।

शेश्वरसांख्ये ऽप्यस्मिन् बहवो जीवाः शिलानिभो मोक्षः^{*} ॥११४॥

(प्राभाकरमीमांसादर्शनम्)

मीमांसको न सहते यागादौ दुरितवादिनः सांख्यान् ।

यागे हिंसां शंसन् विधिरेव हि तन्निषेधमपहरते ॥११५॥

कार्यं^३ प्रवर्तकं स्याद् व्युत्पत्तिश्च प्रवृत्तिदृष्टयेव ।

प्राभाकरस्य पक्षे तस्मात् कार्यार्थतैव सकलगिराम् ॥११६॥

१. 'मात्र मु' B. २. 'णमा' A. ३. 'स्याद्युत्पत्ति' A.

* शेश्वरस्य तत्त्वज्ञानसहकृतो योगो मुक्तिहेतुः इतरस्य योगसहितं तत्त्वज्ञानं मुक्तिहेतुः ।

वेदे तु स्वर्गेच्छोयगिऽस्मिन् क्षयिण कार्यधीविरहात् ।

^१ याग्नेहापूर्वं कार्यमिति स्यान्निरुद्धो हि मुख्योऽर्थः ॥११७॥

एवं विधिवाक्यमयं शास्त्रं मानं हि वेद एवास्ति ।

पुरुषगिरस्त्वनुवादा वक्तृज्ञानानुमानसिद्धेऽर्थे ॥११८॥

अनुभूतिस्त्विह मानं, स्मृत्यातिरिक्ता च संविदनुभूतिः ।

नहि कुहुचिद् भ्रान्तिमतिर्भेदाग्रह एव शुक्तिरजतादौ ॥११९॥

^२ ज्ञानं स्वयंप्रकाशं विषयात्मस्वात्मभानतस्त्रिपुटम् ।

अर्थापत्त्या सार्धं प्राहुः पञ्चैव तु प्रमाणानि ॥१२०॥

नाभावोऽस्ति पदार्थो विषयहतेः का नु तत्प्रमाणकथा ।

द्रव्यगुणकर्मसंख्या जातिः समवायशक्तिसादृश्यम् ॥१२१॥

अष्टौ सन्ति पदार्था इष्टा ^{*} न तु विप्रतादिका जातिः ।

ईकार्यार्थ एव वेदो मानं न तु सिद्धवस्तुनि क्वापि ॥१२२॥

१. 'यागाद्यतिरिक्तं यत् स्थायि च कार्यं लिङ्गादिवाक्योऽर्थः' इत्यपि पाठः A.

२. 'ज्ञानं यथार्थमखिलं' इत्यपि पाठः A, B. विषयात्मस्वात्मेत्यत्र स्वात्मस्पर्शं ज्ञानार्थकम् ।

§ इदं रजतमित्यत्रेवमित्यगूहीतविशेषं शुक्तिशकलं गृह्यते । रजतमिति च रजसमात्रं स्मर्यते । तयोश्च भेदाग्रहात् पुरोर्वर्तिन रजतायिनः प्रवृत्तिः, न तु शुक्तिशकलस्य रजतत्वेन भानमस्ति' । (मानमेयोदयः P. २)

* जातिबोधस्य पूर्वकारावमर्शनियतत्वात् तदभावेन सत्त्वशब्दत्वशास्त्राणां त्वादीनामभाव इति भावः । ‡ कार्ये कृतिसीध्ये यागादाथैव वेदः प्रमाणम् ।

तेनार्थवादमन्त्रा विधिशेषा एव नो निर्वर्त्यपराः ।

* आत्मज्ञेयत्वविधेः शेषत्वात् स्वांशहानिरूपनिषदाम् ॥१२३॥

† विहितकर्मकारी मुक्तिं पाप्मनिषत् स्थितिं लभते ।

नेच्छति चेन्नेच्छतुं तां स्वर्गादिसुखे तु कर्मजे रमताम् ॥१२४॥

(कुमारिलमतम्)

सिद्धेऽपि चार्थे भवति प्रमाणं

शब्दोऽयमित्याह कुमारिलायः ।

तेनार्थवादोपनिषत्प्रपञ्चोऽ-

प्यबाधितेऽर्थे भवति प्रमाणम् ॥१२५॥

इष्टाभ्युपायत्वधिया प्रवर्तते

तदेव सर्वत्र सिद्धं दृश्यते ।

यजेतशब्दाद् यजिरिष्टसाधनं

स्मिन्निष्ठैरिष्टोरिति हि प्रतीयते ॥१२६॥

१: 'प्रतीयते' B.

† नो निर्वर्त्यपराः स्वांशं तात्पर्यैरहिताः ।

* जीकार्यमात्मनो ज्ञेयत्वं विधीयते 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः' इत्यादिना । तत्र प्राप्तिस्थितौ नमुत्पादयन्त्यः उपनिषदः कृतार्था भवन्ति । तस्मात् तासां स्वार्थं मुख्यं तात्पर्यं नास्ति । अतस्तेषामात्मज्ञेयत्वविधेः शेषत्वम् (अङ्गत्वम्) एव ।

† सुखसुखादिविशेषगुणविलये सति आत्मनः स्वरूपावस्थानं मोक्ष इति प्राप्ताकराः (मो-P: ६६)

ततश्च तस्माद्वनतोपपत्तये

कल्प्यं त्वपूर्वं न सिद्धं बोध्यते ।

क्रियोद्भवा शक्तिरपूर्वमुच्यते

फलोदयान्तं वसतीयमात्मनि । १२७॥

* २
अज्ञाततत्त्वबोधः प्रमाणमस्मिन् अमादि चाभिमतम् ।

§ इदमिह रजतमितीत्यं तादात्म्यधियान्यथाग्रहाश्रयणात् ॥ १२८॥

अस्ति प्राकट्याख्यो धर्मो ज्ञानोद्भवो हि विषयेषु ।

‡
ज्ञानं तेनानुमितं न मानसं, न स्वयंप्रकाशं वा ॥ १२९॥

१. 'लिङ्गेव' B. २. 'मादिर' B

* प्रमाणं प्रमात्मकं ज्ञानं, तस्यापि प्राकट्यरूपप्रमां प्रति कारणत्वात् । प्रमाशब्देन लक्षणया तत्कार्यभूतस्य प्राकट्यस्यापि प्रतिपादनात् तस्यापि प्रमात्वम् । 'तस्मादज्ञाततत्त्वार्थज्ञानसाधनमेव नः । प्रमाणमिति निर्णोतम्' (मा-P. ४)

§ 'तत्सज्ज्ञानस्य स्वविषय एव प्रवृत्तिकरत्वनियमाद् रजतज्ञानस्यापीदं विषयत्वाभावे तत्र प्रवृत्तिर्न सिध्येत्, तथैवमेव रजतमिति सामानाधिकरण्यं तयोरमेव प्रतीतिं विना न सिध्येदित्यादिविशा निराकरणीयम् ।' (मा - P. ३)

‡ तेन प्राकट्येनानुमितम् । 'घटः प्रकाशते' 'घटो भाति' 'प्रकटो घटः' इत्यादयो व्यवहाराः प्राकट्यसाधकाः । एते व्यवहाराः स्वोपपादाय प्रकाशविशिष्टमेवार्थ-मवकल्पयन्ति । तत्र विशेषगुणभूतः प्रकाशपदार्थः प्राकट्यमित्युच्यते ॥ ज्ञानं मानसप्रत्यक्षमिति तार्किकाः । तन्निरासमाह-न मानसमिति । न मनोजन्यप्रत्यक्ष-विषयमित्यर्थः ॥ ज्ञानं स्वयंप्रकाशं न ज्ञानान्तरप्रकाशयमिति प्रमाकरः श्रीशङ्करभ । तन्निरासमाह - न स्वयंप्रकाशं वेति । आत्मस्वविषयेतत्त्रितयविषयकं न भवतीत्यर्थः । ज्ञातृज्ञानज्ञेयत्रितयविषयकं न भवतीति यावत् ।

वस्त्वस्त्यभावसंज्ञं नास्तीति धियो हि नापरं शरणम् ।

‡ तत्पुनरभावमानात् प्रमीयते तेन षट् प्रमाणानि ॥१३०॥

द्रव्यगुणकर्मजातीर्भावपदार्थास्तु चतुर एवाहुः ।

तादात्म्यं हि गुणादेः संबन्धस्तेन नास्ति समवायः ॥१३१॥

सादृश्यमित्यभीष्टो योगो बह्वयवादिजातीनाम् ।

द्रव्याण्येकादश तु क्षित्याद्या नव च शब्दतमसो च ॥१३२॥

प्रत्यक्षाणि दशापि द्रव्याण्यनुमेयमत्र मन एव ।

तिमिरं चाद्यचतुष्कं परमाणुकृतं परे तु षड् विभवः ॥१३३॥

विभुषु च मनआत्मानो ह्यमिता दिक्कालगगनमेकैकम् ।

षडधिकचत्वारिंशद् वर्णाः शब्दाः पृथङ् न दीर्घाद्याः ॥१३४॥

** अजसंयोगोऽस्ति मिथः सर्वविभूनां निरन्तरान्तत्वात् ।

विहितहृतकर्मरूपो धर्माधर्मो रवश्च नैव गुणाः ॥१३५॥

१. 'नवएव' B.

‡ अभावमानादभावाख्यप्रमाणात् ।

† षट् प्रमाणानि प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दार्थापत्यभावाख्यानि । अभावोऽनुपलब्धिः प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दं चोपमितिस्तथा । अर्थापत्तिरभावश्च, षट् प्रमाणानि सादृश्याम् ॥ (मा ब. P. 4)

* चतुर एवेत्यनेन विशेषसमवाययोर्निरासः । प्रभाकरमते सादृश्यस्य पृथक् पदार्थत्वं, भाट्टमते तस्य न तथात्वम् । किन्तु बह्वयवादिजातीनां योग एव सादृश्यम् । अभावः पञ्चमः पदार्थः इति पञ्च पदार्था साट्टाभिज्ञताः ।

** अजसंयोगो नित्यसंयोगः ।

अत्र चतुर्द्रव्यगुणौ कर्म च जातिविशेषसमवायी ।

इति षड् भावपदार्थाः सप्तममिच्छत्यसावभावमपि ॥७३॥

द्रव्यं गुणाश्रयं स्यात् क्षितिजलतेजःसमीरगगनानि ।

कालदिगात्ममनांसीत्येवं द्रव्याणि नवविधान्येव ॥७४॥

क्षित्याद्याश्चत्वारो नित्यैरणुभिः कृता अनित्याश्च ।

गगनादयोऽत्र नित्या विभवश्च मनस्तु गतिम(द)गुरूपम् ॥७५॥

पृथिवी मृत्पाषाणद्रुमघटरत्नादिरूपिणी विविधा ।

घृततैलक्षीरादिश्चाग्निविनाश्यत्वहेतुतः पृथिवी ॥७६॥

सरिदर्णवहिमकरकप्रमुखैर्भेदश्च वारि भूरिविधम् ।

तेजश्च सूर्यताराविद्युद्बहनादिभेदतो विविधम् ॥७७॥

कलघौतसीसलोहास्तेजांस्येवाग्निनाशयताभावात् ।

वायुः प्रणादिभिदः परमाणुकृतास्त्वमी पृथिव्याद्याः ॥७८॥

गगानाद्यास्त्विह नित्यास्तेष्वणुरूपं मनोऽपरे विभवः ।

अत्र चतुर्शितिधा गुणा मतास्तेषु चाष्ट भूतगुणाः ॥७९॥

रूपरसगन्धशब्दस्पर्शस्नेहद्रवत्वगुरुताख्याः ।

सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्मा अधर्मबुद्धी च ॥८०॥

१. 'स्फाद्रि' इत्यप्यादर्शः । (A) २. 'वि विविधम्' A. ३. 'सूय' B.

आत्मगुणा अष्ट; ततः सामान्यगुणाः परस्वमपरस्वम् ।

योगविभागपृथक्ताः संख्या परिमाणमपि च संस्कारः ॥८१॥

*नैत्यमृते धरणिगुणास्तेजोन्वयरूपपाकजाः सर्वे ।

आकुञ्चनप्रसारणमुत्क्षेपणमत्र खल्वपक्षेपः ॥८२॥

गमनमिति पञ्चधा स्यात् कर्म; भ्रमणादिकं च गतिरेव ।

द्रव्यगुणकर्मवृत्तिर्द्रव्येष्वेकत्वधःकरी जातिः ॥८३॥

सा द्विविधा परजातिः सत्ता गोत्वादिरपरजातिः स्यात् ।

भेदकरहितेषु पुनः परमाणुष्वपि च मुक्तजीवेषु ॥८४॥

अन्योन्यपृथक्त्वार्थं विशेषनामा पदार्थ आद्रियते ।

गुणजातिकर्मणां यो द्रव्यैः संबन्ध एष समवायः ॥८५॥

नास्तीति बुद्धिबोध्यस्त्वभाव इत्थं पदार्थनिर्णोतिः ।

एवं पदार्थतत्त्वे ज्ञाते संसारबोधमवगच्छन् ॥८६॥

आत्मस्वन्तर्भूतं शिवमेकं भजति विश्वकर्तारम् ।

तदनुग्रहाद् विरक्तः सुखेष्वपि स्फीतदुःखमिश्रेषु ॥८७॥

(नैयायिकमतम्)

आत्मगुणोच्छेदमयीं मुक्तिं पाषाणवत् स्थितिं लभते ।

तद्विदं मतं न हृद्यं कथं हि शाब्दं प्रमाणमपनोद्यम् ॥८८॥

१. 'व' B.

* इदं चिन्त्यं नैत्यस्यापि पाकवत्वात् ।

अज्ञातेऽर्थे तु कथं तद्विषया वक्तुमुदिरनुमेया ।

उपमानमपि च मोक्षं मोक्षेदृशो नयय इत्युपाकृत्यं ॥८९॥

विपिनगत्तो मोक्षं दर्शयं पश्यन् गवयोऽहमित्यर्थेति दृढम् ।

तस्माच्चतुर्ग्रामाणी ग्रामादिति न्यायस्तस्मिन्नुक्तम् ॥९०॥

षोडशपदार्थबीजादेव च निःश्रेयसाधिरिति वाच्यम् ।

विदिता हि षट्पदार्थो नास्ति कवाक्यैर्हि याति संग्रहेण ॥९१॥

जल्पाद्यैस्तान् जित्वा मानाद्यैर्निजमतस्थितिः कार्या ।

मानप्रमेयसंशयफलदृष्टान्तास्तथैव सिद्धास्तः ॥९२॥

अवयवतर्कविनिर्णयवादा जल्पस्ततो वितण्डा च ।

हेत्वाभासाशुलमपि जातिविभेदाश्च निग्रहस्थानम् ॥९३॥

एवं द्व्यष्टपदार्थाः केचिद्व्याप्तीकृततत्रा मानम् ।

परमाणुसृष्टताद्यं चास्मिन् कणप्रभवत् प्रेक्ष्यम् ॥९४॥

षोडशवस्तुषु चैषु प्रमेयबोधः प्रधानममृताप्ये ।

आत्मशरीराकार्या बुद्धिश्च क्लेशः प्रवृत्तिदोषो च ॥९५॥

प्रेत्योद्भवफलदुःखान्यपवर्गो द्वादश प्रमेयानि ।

एषां तत्त्वविवेकाद् अमादिनाशेन विषयवैराग्यात् ॥९६॥

१. 'विग्र' B. २. 'विरहितः शिवाचं नास्तमलः' इत्यपि पाठः—A, B.

मोक्षेच्छुः स्वात्मानं जीवमनुध्याय सम्यगाकलयन् ।
शिवभजनलब्धयोगात् पूर्वार्जितसुकृतदुष्कृते पश्यन् ॥९७॥

^१
योगकृतेर्बहुदेहैस्ते संक्षिप्यानुभूय संक्षपयन् ।
*सुखदुःखदेहहीनो मुक्तः स्वस्थः शिलावदेवास्ते ॥९८॥

(निरीश्वरसांख्यमतम्)

इदमपि मतं न रम्यं वेदस्य हि नेश्वरो भवेत् कर्ता ।
उपदेष्टेवास्य स्यात् सर्वज्ञः किं स विस्मरेद् वेदान्
तेन हि नित्यान् वेदान् प्रामाण्यं च स्वतो जगुः सांख्याः ।
परमाणुजसृष्टेश्च श्रुतिबाधात् प्रकृतिसृष्टिमेवाहुः ॥९००॥
प्रकृतिः स्वयमेवासौ महदादिजगन्मयी हि परिणमते ।
कपिलपतञ्जलिरचितं निरीश्वरं सेश्वरं च सांख्यं स्यात् ॥९०१॥
तत्राद्ये स्वयमेव प्रकृतिर्जगदात्मना हि परिणमते ।
^२
असतः शशशृङ्गादिवदनुद्भवाद् व्यक्तिरेव सृष्टिः स्यात् ॥९०२॥
प्रकृतेर्महानमुष्मात् त्रिगुणैस्त्रयंशो भवेदहङ्कारः ।
सत्त्वांशात् तस्य मनो राजसभागाद् दशेन्द्रियाणि स्युः ॥९०३॥

१. ते सुकृतदुष्कृते । २. तिले पूर्वं स्थितस्य तैलस्य यथा निष्पीडनेन प्रकाशः
(व्यक्तिः) तथा सृष्टिरपि प्राक् तत्कारणे सूक्ष्मरूपेण स्थितस्य प्रकाश एव ।

* 'एकविंशतिप्रभेददुःखोच्छेदो मोक्ष इति तात्त्विकाः कीर्तयन्ति । देहः, इन्द्रियाणि,
वत् विषयाः, पद् बुद्ध्याः, सुखं, दुःखं चेत्येकविंशतिप्रभेदं दुःखमाचक्षते'
(भाषभेयोदयः—P. ८७)

तामसभागाच्छब्दः स्पर्शो रूपं रसश्च गन्धोऽपि ।

^१ तैरेव भूतसूक्ष्मैः कृतानि विद्यदादिपञ्चभूतानि ॥१०४॥

§ एतानि प्रकृतिमुखान्यत्र चतुर्विंशतिर्हि तत्त्वानि ।

अक्षानुमानशब्देस्त्रिभिः प्रमाणैस्तु तानि विज्ञाय ॥१०५॥

* तेभ्यः पुरुषस्य पुनर्विवेकबोधेन मुक्तिरेतेषाम् ।

^२ बन्धक एव तु यागो हिंसायोगेन नरकमिभश्च ॥१०६॥

ये तु ध्यानजपाद्या निवृत्तिधर्मास्त एव मोक्षाङ्गम् ।

महवाख्याया बुद्धेः सुखदुःखाद्या गुणा न पुरुषस्य ॥१०७॥

प्रकृतिवियोगात् तेषां विगमो मोक्षः शिलावदत्रापि ।

इति हि निरीश्वरसारव्यं सृष्टावत्रेश्वरस्य नाश्रयणात् ॥१०८॥

(शेश्वरसांख्यमतम्)

शेश्वरसांख्ये तु पुनः प्रकृतिः सृजतीश्वरेक्षणक्षुभिता ।

^३ अहदादयोऽत्र तुल्या ईशयुतं पञ्चविंशकं तत्त्वम् ॥१०९॥

१. तैरेव-बन्धादिभिर्देव । २. 'कोनो' B.

* 'प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानात् पुरुषस्य स्वरूपावस्थानं मोक्ष इति सांख्या.'
(मानमेवोदय P. 88)

§ पुरुषप्रकृतिमहवहक्कारमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्शानिपादपायूपस्थशब्दस्पर्श-
रूपरसगन्धाकाशवायुवह्निसन्धिलभूमिषु पञ्चविंशति तत्त्वेषु पुरुषमपह्नायेदमुक्तिः ।

‡ पुरुषः, परः पुरुष, इति भेदे शेश्वरसांख्यानां तत्त्वानि षड्विंशतिः ।

न पुनर्विबोधमा(त्रा मु? त्रान्मु)क्तिः समलस्य सम्यगस्फुरणात् ।
अष्टाङ्गात् त्विह योगाद् विमलस्याश्वात्मदर्शनान्मोक्षः ॥११०॥

वर्ज्यत्यागोऽत्र यमो हरिभजनादिव्रतं तु नियमः स्यात् ।
पद्याद्यासनमाहुः प्राणायामांस्तु रेचकादींस्त्रीन् ॥१११॥

प्रत्याहारः स्वात् स्वात् समनस्केन्द्रियनिवर्तनं विषयात् ।

मूलाधारप्रभृतौ धारणमनिलस्य धारणामाहुः ॥११२॥

ईश्वरचिन्ता ध्यानं तत्रैव मनोलयः समाधिः स्यात् ।
विद्याविद्यारूपं द्विविधं योगस्य फलमिति प्राहुः ॥११३॥

भक्तिविरागज्ञानं विद्यात्मकमन्यदणिममहिमादि ।

शेखरसांख्ये ऽप्यस्मिन् बहवो जीवाः शिलानिभो मोक्षः ॥११४॥

(प्राभाकरमीमांसादर्शनम्)

मीमांसको न सहते यागादौ दुरितवादिनः सांख्यान ।
यागे हिंसां शंसन् विधिरेव हि तन्निषेधमपहरते ॥११५॥

कार्यं प्रवर्तकं स्याद् व्युत्पत्तिश्च प्रवृत्तिदृष्ट्यैव ।
प्राभाकरस्य पक्षे तस्मात् कार्यार्थतैव सकलगिराम् ॥११६॥

१. 'मात्र मु' B. २. 'णमा' A. ३. 'स्याद्युत्पत्ति' A.

* शेखरस्य तत्त्वज्ञानसहकृतो योगो मुक्तिहेतुः इतरस्य योगसहितं तत्त्वज्ञानं मुक्तिहेतुः ।

वेदे तु स्वर्गेच्छोयोगेऽस्मिन् क्षयिण कार्यधीविरहात् ।

१
यागेनेहापूर्वं कार्यमिति स्यान्निरुद्धो हि मुख्योऽर्थः ॥११७॥

एवं विधिवाक्यमयं शास्त्रं मानं हि वेद एवास्ति ।

पुरुषगिरस्त्वनुवादा वक्तृज्ञानानुमानसिद्धेऽर्थे ॥११८॥

अनुभूतिस्त्विह मानं, स्मृत्यातिरिक्ता च संविदनुभूतिः ।

नहि कुहचिद् भ्रान्तिमतिर्भेदाग्रह एव शुक्तिरजतादौ ॥११९॥

२
ज्ञानं स्वयंप्रकाशं विषयात्मस्वात्मभानतस्त्रिपुटम् ।

अर्थापत्त्या सार्धं प्राहुः पञ्चैव तु प्रमाणानि ॥१२०॥

नाभावोऽस्ति पदार्थो विषयहृतेः का तु तत्प्रमाणकथा ।

द्रव्यगुणकर्मसंख्या जातिः समवायशक्तिसादृश्यम् ॥१२१॥

अष्टौ सन्ति पदार्था इष्टा न तु विप्रतादिका जातिः ।

कार्यार्थ एव वेदो मानं न तु सिद्धवस्तुनि क्वापि ॥१२२॥

१. 'यागाद्यतिरिक्तं यत् स्थायि च कार्यं लिङादिवाक्योऽर्थः' इत्यपि पाठः A.

२. 'ज्ञानं यथार्थमखिलं' इत्यपि पाठः A, B. विषयात्मस्वात्मैत्यत्र स्वात्मपरं ज्ञानार्थकम् ।

§ इदं रजतमित्यत्रेवमित्यगूहीतविशेषं शुक्तिशकलं गृह्यते । रजतमिति च रजतमात्रं स्मर्यते । तयोश्च भेदाग्रहात् पुरोर्वर्तिनि रजतार्थिनः प्रवृत्तिः, न तु शुक्तिशकलस्य रजतत्वेन भानमस्ति' । (मानमेयोदयः P. २)

* जातिबोधस्य पूर्वकारावमर्शनियतत्वात् तदभावेन सत्त्वशब्दत्वशास्त्रिणादीनामभावं इति भावः । ‡ कार्यं कृतिसौध्ये यागादावैव वेदः प्रमाणम् ।

ततश्च तत्साधनतोपपत्तये

कल्प्यं त्वपूर्वं न लिङ्गं बोध्यते ।

क्रियोद्भवा शक्तिरपूर्वमुच्यते

फलोदयान्तं वसतीयमात्मनि । १२७॥

* २
अज्ञाततत्त्वबोधः प्रमाणमस्मिन् भ्रमादि चाभिमतम् ।

ईदमिह रजतमितीत्यं तादात्म्यधियान्यथाग्रहाश्रयणात् ॥ १२८॥

अस्ति प्राकट्याख्यो धर्मो ज्ञानोद्भवो हि विषयेषु ।

£
ज्ञानं तेनानुमितं न मानसं, न स्वयंप्रकाशं वा ॥ १२९॥

१. 'लिङ्गे' B. २. 'मादिर' B

* प्रमाणं प्रमात्मकं ज्ञानं, तस्यापि प्राकट्यरूपप्रमां प्रति कारणत्वात् । प्रमाशब्देन लक्षणया तत्कार्यभूतस्य प्राकट्यस्यापि प्रतिपादनात् तस्यापि प्रमात्वम् । 'तस्मादज्ञाततत्त्वार्थज्ञानसाधनमेव नः । प्रमाणमिति निर्णीतम्' (मा-P. ४)

§ 'तत्तज्ज्ञानस्य स्वविषय एव प्रवृत्तिकरत्वनियमाद् रजतज्ञानस्यापीदंविषयत्वाभावे तत्र प्रवृत्तिर्न सिध्येत्, तच्चेदमेव रजतमिति सामानाधिकरण्यं तयोरभेदप्रतीतिं विना न सिध्येदित्यादिदिशा निराकरणीयम् ।' (मा - P. ३)

£ तेन प्राकट्येनानुमितम् । 'घटः प्रकाशते' 'घटो भाति' 'प्रकटो घटः' इत्यादयो व्यवहाराः प्राकट्यसाधकाः । एते व्यवहाराः स्वोपपादाय प्रकाशविशिष्टमेवार्थ-मवकल्पयन्ति । तत्र विशेषगुणभूतः प्रकाशपदार्थः प्राकट्यमित्युच्यते ॥ ज्ञानं मानसप्रत्यक्षमिति तार्किकाः । तन्निरासमाह—न मानसमिति । न मनोजन्यप्रत्यक्ष-विषयमित्यर्थः ॥ ज्ञानं स्वयंप्रकाशं न ज्ञानान्तरप्रकाशमिति प्रमाकरः श्रीशङ्करश्च । तन्निरासमाह—न स्वयंप्रकाशं वेति । आत्मस्वविषयैतत्त्रितयविषयकं न भवतीत्यर्थः । ज्ञातृज्ञानज्ञेयत्रितयविषयकं न भवतीति यावत् ।

वस्त्वस्त्यभावसंज्ञं नास्तीति धियो हि नापरं शरणम् ।

‡ तत्पुनरभावमानात् प्रमीयते तेन षट् प्रमाणानि ॥१३०॥

द्रव्यगुणकर्मजातीभावपदार्थास्तु चतुर एवाहुः ।

तादात्म्यं हि गुणादेः संबन्धस्तेन नास्ति समवायः ॥१३१॥

सादृश्यमित्यभीष्टो योगो बह्वयवादिजातीनाम् ।

द्रव्याण्येकादश तु क्षित्याद्या नव च शब्दतमसो च ॥१३२॥

प्रत्यक्षाणि दशापि द्रव्याण्यनुमेयमत्र मन एव ।

तिमिरं चाद्यचतुष्कं परमाणुकृतं परे तु षड् विभवः ॥१३३॥

विभुषु च मनआत्मानो ह्यमिता दिक्कालगगनमेकैकम् ।

षडधिकचत्वारिंशद् वर्णाः शब्दाः पृथङ् न दीर्घाद्याः ॥१३४॥

** अजसंयोगोऽस्ति मिथः सर्वविभूनां निरन्तरान्वत्वात् ।

विहितहतकर्मरूपो धर्माधर्मौ रवश्च नैव गुणाः ॥१३५॥

१. 'नवएव' B.

‡ अभावमानादभावाख्यप्रमाणात् ।

† षट् प्रमाणानि प्रत्यक्षानुमानोपमानसम्भार्यापत्यभावाख्यानि । अभावोऽनुपलब्धिः प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दं चोपमितिस्तथा । अर्थापत्तिरभावश्च, षट् प्रमाणानि सादृश्याम् ॥ (मा ब. P. 4)

* चतुर एवेत्यनेन विशेषसमवाययोर्निरासः । प्रभाकरमते सादृश्यस्य पृथक् पदार्थत्वं, भाट्टमते तस्य न तथात्वम् । किन्तु बह्वयवादिजातीनां योय एव सादृश्यम् । अभावः पञ्चमः पदार्थः इति पञ्च पदार्था भाट्टाभिमतः ।

** अजसंयोगो नित्यसंयोगः ।

शक्तिप्राप्तये द्वे गुणोऽविहेत्येष तर्कतो भेदः ।

॥ संस्कारगुरुत्वशक्तिज्ञानोनगुणाश्च कर्म चाध्यक्षम् ॥१३६॥

१ कुलबोधसहकृताक्षणा वेद्यं हि विप्रताविजातिरिति ।

२ जातिष्वपि सत्ता स्यात् तस्यां सत्ता तु नामैवस्थानात् ॥१३७॥

३ आत्मगुणोऽप्यानन्दो नित्योऽसौ व्यज्यते पुनर्मुक्तौ ।

४ काम्यनिषिद्धाश्चरणान्नैमित्तिकनित्ययोस्तथाचरणात् ॥१३८॥

आत्मगतत्त्वज्ञानादजितभोगाच्च जायते मोक्षः ।

५ तत्र च नित्यानन्दं मनसैवात्मावमनुभवन्नास्ते ॥१३९॥

१. 'घहेतुनाक्षणा' B. २. 'तस्यां स' B. ३. 'परं मुक्तै' B.
४. 'साम्य' B. ५. 'त्मानमनु' B

॥ संस्कारगुरुत्वशक्तिज्ञानातिरिक्तगुणाः प्रत्यक्षाः, कर्म च प्रत्यक्षम् ।

१ ब्राह्मणकुलोत्पन्नत्वबोधसहकृतेन चक्षुषा विप्रताविजातिगृह्यत इत्यर्थः ।

नैयायिका प्रव्यगुणकर्मस्वेव सत्तां स्वीकुर्वन्ति जाटास्तु जातिष्वपि तामप्युपगच्छन्ति ।

॥ दुःखात्यन्तसमुच्छेदे सति प्राणाः मवर्तिनः ।

अनिन्दस्थानुमूर्तिस्तु मुक्तिरस्तीति कुमादित्तेः ॥ (भा. P. P.)

निषिद्धकाम्यकर्मैभ्यः सम्बन्धं ध्यावृत्तचेतसः ।

नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तप्रध्वस्तबुद्धेतिः ॥

मुखबुद्ध्यानुमूर्तिभ्यां क्षीणप्रारब्धकर्मणः ।

मुक्तिरस्य ब्रह्मचर्येणैव शमद्वेष्टादिभिः ॥

कुर्वाणस्याः समीचीनं वेदान्तोक्तैर्न वर्तते नैव ।

मुक्तिः सम्पद्यते सद्यो नित्यानन्दप्रकाशिनी ॥ (भा. P. P. ८६, ८९)

भाट्टप्रामाण्योरेष विशेषः समं त्विदं ज्ञेयम् ।

स्वत एव प्रामाण्यं सर्वज्ञो नाम नास्ति कश्चिदपि ॥१४०॥

नित्याः खलु वर्णमयाः शब्दा अपि पक्षपदार्थसम्बन्धाः ।

वाक्यमपि वेदरूपं कर्तुरभावेन नित्यमेवाहुः ॥१४१॥

नैव हि सृष्टिप्रलयाबनुमितिसिद्धस्तु नेश्वरोऽप्यस्ति ।

वेदे स्वतःप्रमाणे तत्सिद्धस्त्वोद्देशोऽत्र मत एव ॥१४२॥

विधिवाक्यैरेवंकथं भजन्ति मन्त्रार्थवाचनामानि ।

स्मृत्यादिकमार्थबजो मूल्यमनाद्यानुमानतो मानम् ॥१४३॥

धर्मे प्रमाणचिन्ता तेयं प्रथमे प्रपञ्चिताध्याये ।

^१ भेदोऽङ्गता प्रयुक्तिः क्रमोऽधिकारोऽतिदेशसामान्यम् ॥१४४॥

१. 'वेदो' B.

* इदं स्वत एव इत्यादिवक्ष्यमाणम् ।

** प्रथमेऽध्याये— द्वावन्ताराभ्यामन्तरात्तस्य पूर्वमीमांसादर्शनस्य प्रथमेऽध्याये इत्यर्थः । प्रथमाध्याये धर्मं वैकथ्यं प्रामाण्यं प्रत्यक्षादीनां चाप्रामाण्यं प्रसाधितम् । द्वितीये शब्दान्तराभ्यामन्तरात्तस्यानुष्णक्रियानामधेयैः पङ्क्तिः प्रमाणैः कर्मभेदो रक्षितः । तृतीये अङ्गत्वबोधकविधिनिरूपणम् । चतुर्थे आमिक्षादिरूपप्रधान-कर्मणां अध्ययनयनादिरूपानामप्रधानकर्मप्रमुक्तत्वम् एवं वत्सापाकरणादिरूपा, प्रधानकर्मप्रमुक्तत्वं शास्त्राच्छेदादिरूपकर्मणां च निरूपितम् । पञ्चमे अङ्गप्रधान-योरनुष्ठाने श्रुत्यर्थपाठादिना क्रमो निरूपितः । षष्ठे कर्मणामाधिकारी क इति निरूपितम् । सप्तमे प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्येति सामान्यातिदेशः । अष्टमे पशुयागानां सर्वेषामग्नीवोमीयः प्रकृतिः, तदङ्गानि विकृतिपशुयागेषु कर्तव्यानी

तस्य विशेषश्चेत्ते बाधस्तन्त्रं प्रसङ्ग इत्यर्थः ।

इया चैव देवतासावदृश्येत्येव सा न फलदात्री ॥

कर्मादृष्टादेव तु फलसिद्धिरिहेति पूर्वमीमांसा ॥१४५॥

***निर्माय शालाशान्दास्ते हे शास्त्राणि सन्निभम् ।**

भवद्विषयिणीभावं सवद्भिः क्रियतांतराम् ॥१४६॥

कोलम्बे नागहुतभृग्घोनेन्दुग्निकृते समे ।

स्वक्षेत्रं संसरत्यर्के सम्यगालेखितं त्विदम् ॥१४७॥

त्यादिजिज्ञासातिदेशो निरूपितः । कवये ऊहः । भगवताम् देवतादिभूतं-

ख्यानां वाचका ये शब्दास्तेषां प्रयोगविशेषे सन्दर्भानुसारेण परिवर्तनग्रहः । यथा

आग्नेये प्रकृतौ 'अग्नये सुमं विरिजामि' इति विज्ञानः विज्ञानं, विज्ञानी विज्ञान्याने

‘अग्नये’ इत्यस्य स्थाने ‘सूर्याय’ इत्युच्यते । दशमे बाधनिरूपणम् । तद्यथा-प्राजादित्यान्

सतं कृष्णलान् निर्बपेष्टित्वादी कृष्णलादीनां श्रीहृत्कारमुष्णदीनां मिथश्च तेषामवह-

वनप्राप्तौ विनुष्यक्यद्वाराभ्यावाहबहुननबाधः । एकावसे तन्त्रं निरूपितम् ।

सङ्कदनुष्ठानिनः बहुनामुपकारात्मिकं तन्त्रम् । तद्यथा-आग्नयाष्टिहोमपातः पुराहितैः

एतावद्गमनं तन्त्रेणानुष्ठानमित्युच्यते । वाङ्मोक्षद्वारे प्रसङ्गोपकारमिति निश्च-

एवं कृतम् । तथा लोके ब्राह्मणे विद्वत्पुत्रे भूयो आश्रोति विद्वत्पुत्रे भवति

विद्यमानं तुल्यं भवति तदा विद्वान्भक्त्या प्रयोजः एवं योगोत्तरेण अनुकामस्य

सुपां प्रथमते 'वसुधैवकुतम्' प्रथमेन 'यदिदमेवैव पशुकार्थम्' इति वाक्येन विहिते

पशुकर्मस्य यद्वैष्णवयनं तद् वैष्णवमस्ति वाग्यार्यमुपकरादि । स वै प्रसङ्गः ॥

ॐ इतन्मते आनुपूर्वोविशिष्टेन्द्रादिशक्तानामेव देवतात्मन् तेषां चावेदज्ञत्वात्
कर्मफलप्राप्त्यर्थं किन्तु कर्मकन्यातुष्टयेव फलकारकम् इत्यर्थः ॥

* १४६, १४७ तमौ श्लोको A ग्रन्थे न स्तः । B ग्रन्थेऽपि ग्रन्थद्वयान्वितसूत्रक-
रेखानन्तरमेव ।

३ एतद्वनन्तरं 'संस्तरत्यक्तं सम्भक्तं कलिः' इति च दृश्यते । ग्रन्थपरिसमाप्तिकलि-
दिनसूचकोऽयम् ॥

NOTE

There are three versions of the Gajēndramokṣaprabandha. In the present publication, the version found in the 'Prabandaratnamālīka' a compilation of Sri. Mēlputhūr Bhattathiri's Prabandhas is given, as the first and the other two are included as the I and II appendices. The materials used for the I version is the book Prabandharatnamālīka, published by B. Kesava Pillai, (1083. Idavam 31 marked ௩) and the palm-leaf codex No. 15525 ௩. of this Library. Manuscript No. 154 E. has been used for the preparation of the II version and the Mss. No. MC. 612. g, for the III version all belonging to this institution.

गजेन्द्रमोक्षप्रबन्धः

पृथ्वीपालाननस्रा(न)तुलितमाहिमा वरमाजो विजित्य

श्रीमान् सामाद्युपायैर्जलनिधिवसनामात्मसात्कृत्य पृथ्वीम् ।

भुक्त्वा भोगानशेषांश्चिरमभिलषितान् भूक्तसङ्गश्च पाण्डये-

ष्विन्द्रद्युम्नाभिधानो (नरपति)रभवन्मग्नचेता मुकुन्दे ॥१॥

१
नयबिनयनिधानं सत्त्ववन्तं तनूजं

विगतविषयरागः सोऽभ्यषिञ्चत् स्वराज्ये ।

हरिचरणनिषेवातत्परा नाद्रियन्ते

सरसिजवसतेरप्यास्पदं किन्तु राज्यम् ॥२॥

सोऽयं त्यक्तविषोपमानविषयो मालेयमालाकुलं

शैलं भासुरमावसन् हि मलयं भूपो बितेने तपः ।

जम्भीरेण च कुम्भयोनिमृनिना शप्तः स्वसम्भावना—

वैष्णव्यादयश्चास्तद्वैद्य-गमितः सम्भ्रान्तधीः कुम्भिताम् ॥३॥*

१. 'विनयनयवि' कः २. 'विसेये' कः

* सोऽप्यत्रौ निजदारदारकसुहृत्सङ्घैरसङ्ख्यैः समं

रुप्यायःकनकामिरामशिखरे रेमे त्रिकूटे चिरम् ।

विष्वक्विष्टुरितोऽधिरुढकलशार्धोराशिधीधीशतः-

राघोतामलवप्रदीप्रनवरत्नद्योतिताशान्तरे ॥

इतः परं कैवल्यमविमियमिदं दृश्यते खण्ठाढे।

मुनीन्द्रशापेन गजेन्द्रतामसा-

वावाप्य धूमेक्षि कृतं विन्नेक्षिः ।

सहैव तस्मिन् विचरन् महागिरौ

निनाय कलिं कृचिरं करेभुविः ॥४॥

अथ कदाचिदतिबहलमदञ्जलप्रक्षाल्यमानं पृथुलगण्डस्थलाभ्युपेपरिभ्रमदधमरानिकरस-
ङ्कारमुच्चरितस्वैरिदं मण्डलं । मितान्तनिशितदन्तकुन्तोच्चगण्डविदेसितगण्डशैलपिण्डप्र-
रद्विष्णुनिष्पन्निकरविद्योतितविकटकटकप्रदेशः । अस्तिदुःसहमदगन्धमात्रोपलम्भ्यतेतपस्वयित-
प्रतिगणहरिशरभसादौलादिर्वाजितात्मसमीपः । मदनशरविसरदविरलमदनबहनसदनायमान-
मानसो मदभरधूर्णमानलोचनमरीचिनिचयपरिहसितमधुवर्णार्णोहकेसरसवर्णपूर्णपुरुविन्दु-
कर्णकटककरः । परिमाणमिदं सत्यस्य, परिणाम इवाञ्जनशैलस्य, प्रत्यक्षस्वरूपमिदं
मदावलेपस्य, अनुपमकटोऽप्यरियन्तविकटः, अनेकवशांनुयातोऽपि स्ववशः, अनुत्तमप्रतिमानोऽपि
अप्रतिमानः, कासार इव उल्लसत्स्पर्शकविभूषणः, वदाम्य इव अक्षयरेतप्रवृत्तवानो,
रावणराक्षसगण इव प्रहस्तकुम्भकर्णमहापाश्र्वातिकायभयङ्करो, वामन इव करकलितवान-
सलिलो, विन्धविहितविक्रमो धनञ्जय इव कर्णताडनरतः, सवारकोऽपि तरुणां विदारकः,
सदावनरतोऽपि गणानाम् अंबवरतः, क्वचिच्छ्व लकुञ्चमङ्गनिचयसल्लकीपञ्चस्तल्लक्ष्मि-
च्छाद्यपदार्थैर्वल्लभाभिः समं सञ्चरिष्यमहामहमनुबोधुवन्, क्वचिच्छ्व निशिततरनिजदन्तकुन्त-
सन्ताडितहिन्तालैर्मणिपूनेपुष्पांगप्रमुञ्चकुम्भस्थिरतरस्थिरारोहनिर्बहप्रस्तरंगेशैरौलवन्द्यैश्च -
नरवानुयायिबृंहितकण्ठिषीकसैरिभसरभेतरेभ्यः स्मृत्पुङ्गवलोकोनसीतनिजकलमकरेभुव-
पर्यवनसमासक्तचित्ततया गणसमीप एव सञ्चरन् स करिवरः शशिकरविशदकलशजलधि-
कल्लोलैर्ललासत्समोऽस्मान्मनसोऽप्यभिनिमेषेन वारिवेष्टितकटकप्रदेशेन वा । अतुल्यमयस्तुल्यत-
स्तुरासुरनिकरमन्थपरिकल्पितमहोरगपाशपरिणद्धमन्दरमहाक्षलनुलावलस्ये यक्षगण्डर्वविद्या-
ञ्जरकिञ्जरचारभाप्सरोगणाधिष्ठितविविधैर्कर्णैरित्येवमर्भागगणैरैतत्प्रतीतिमिदं यैव गणपित-
कण्ठोरवकण्ठारवमुच्चरितकटकप्रदेशे । इत्युपतचमरचक्रुणोममृगुक्तालमृगादिनानारण्यमृग-
सङ्कुलानतद्रोण्यालङ्कृते । सत्सरसत्सतामहिन्मल्लमलप्रियमल्लमलसवञ्चुलादिवि-
विधतरुनिकरपरिवृतामरारामसरःसरिदं कलसरमनोहरे । अतुल्यमयस्तुल्यत-
विविधमणिमयबहुशिखरभास्वराभापुके । किङ्कुलुन्मदीमन्निहारकसमुच्चितैरिव विभिः
सौवरेकस सङ्गतैरिव महामेदकैलासाञ्जनमिदं । सप्तमस्य सप्तमसिद्धिं । मितस्यद्विरिव

मिमुत्तिभिः, सकलसुरतेष्वमर्षैः कुम्भस्युत्पत्त्याः कलमवेरधंसिद्धयैः मिमिः मिचरैः मिचुड
इति यथार्चनानघेये गिरौ करिकलमकरेणुगणपरिवृतः चरन्निपातचलाप्यजापलं सचरन्
चोरतरनिवादातपसन्तप्यः तत्रैव कुत्रचिद् भगवतो वरुणस्य उद्यानमृतुमदभिधान-
मभिजगाम ।

यस्मिन् सर्वतुयोगाद् सकलविट्पिनः सर्वदा सर्वपुण्यै-

नंघ्राः कम्प्रेः फलीचैर्ललितकिसलबैः सन्ति सन्तसावस्तान्यै ।

तस्मिन्नप्युन्नतोऽसावर्णोपिहिततैनुः छायेयी पादपीनो-

माच्छीर्म्मूर्च्छौ निवेधातपगरिमकृतम्लानिरम्लानवानैः ॥५॥

उद्याने तत्र हेमाम्बुहृपरिमलं सान्द्रमादाय वान्तं

वातं जिघ्रन् विदूरान्मदभरकलुषाघूणिताक्षः क्षणेन ।

उद्यत्तृष्णैः सतृष्णैः सह करिकलभेर्धेनुकाभिश्च देवै-

नाकुण्टो दक्षिणेन स्वयमिव तरसा प्राद्रवद्युथनाथः ॥६॥

यद् रजैः पारिजाताद्यमरसरुग्णैस्तीरजैर्नालिकेर-

द्राक्षेक्षुप्लक्षरम्भाक्रमकुरवैकैः सल्लकीमिस्तथान्यैः ।

नित्यर्तुत्वादवार्ताखिलनिजविभवैः स्वर्णसौगन्धिकाब्जा-

धामिदीर्घासिन्धु यद् विलसितसलिलं यदसौ विजग्मन् ॥७॥

केयवैव विगाह्य तत्र करिणीवन्दः सहापीय च

स्वच्छं क्षारं यच्चच्छामप्लुततनुवीथं तथाप्लाव्य च ।

कुम्भस्युत्पत्त्याः कलमवेरधंसिद्धयैः मिमिः मिचरैः मिचुड

स्तस्या हन्त गतव्यधी गजपतिदीध निशरवीस च ॥८॥

तत्काले जगृहे हठाद् दृढतरं ग्राहेण धीरेण स
श्येनस्फोटशिताग्रदन्तनिकरक्षुष्णाप्रपादं बली ।

आकृष्योत्तरितुं तमाशु यतते स्मोत्पन्नतोव्ययः

फीत्कारध्वनिपूरिताण्डकुहरं गन्तुं न चालं ततः ॥९॥

नक्रोऽप्युप्रपराक्रमो ह्यतिबलं व्याकृष्य नागाधिपं

तोयाभ्यन्तरमानिनीषुरमुचक्षास्याग्रगवं बली ।

बिक्रन्दन्तमलं गजेन्द्रमुदके दीक्षयाकुलं श्याकुला

भीतास्तत्रसुरात्तवत्सकलभा दीनाः करिष्यश्चिरम् ॥१०॥

अपरे बलिनो महगजास्तमथोत्तारयितुं कृतोद्यमाः ।

अपि न प्रबभूवुरीश्वरे विपरीते विफलाः सुहृच्छमाः ॥११॥

तोयस्यान्तर्बहिरथ तयोः कर्षतोर्नेतुमेवं

भूयोभूयः पृथुलबलयोर्नक्रमातङ्गपत्योः ।

दिव्याब्दानां परिणतमभूद् दैवगत्या सहस्रं

दृष्ट्वा देवा विधिविलसितं मेनिरे तद् विचित्रम् ॥१२॥

अहीयत गजेन्द्रस्य बलं काननचारिणः ।

जले जलौकसस्तस्य व्यवर्धत दिने दिने ॥१३॥

ततः प्रतिक्षणं प्रक्षीणमनोबलीजस्तु मातङ्गपतेरात्मबिक्रीक्षोपायविषयबहुविध-
चिन्तासन्तानेन वा पूर्वजन्माभ्यासेन वा भक्तजनोद्धारणनिपुणचरणारविन्दस्य कृष्णकरस्य
श्रीनारायणस्यानुग्राहेण वा हृदयोदयगिरी ज्ञानविवाकरे समुविते विनष्टः सपदि मोहान्धकारः
बहिरुद्रादिविबुधज्योतीषि अविपृथक्त्वेन सम्यङ् न प्रचकाशिते व्यंरसीत् संसृतिरात्रिर्व्यं-
रोचत मोक्षदिवसावतारः विकसितं च मानससरोरुहम् । तत्संस्मरन्तस्मिन्कृमिर्बज्रं जगद्
जगत्स्वरूपमेवेत्यवधारयतः संसारस्यासारतां निश्चिन्तानस्य जिजीविषारहितस्य मुमुक्षोः
पूर्वजन्मा (भ्य)स्तमेव जप्यं जपतो ब्रह्मादिस्तम्बान्तं जगद्विस्तमपि परब्रह्मतया निर्बिभेक्षुः
(कल्प)यतस्तुवतस्तस्य तथाविधातिमुपनम्यार्ताभ्युपपत्तिदीक्षितो हरिः सत्वरं पुरतः
आचिरासीत् ।

मस्त्यरूप कमठाकृते वरचराहवेह भरेतिह हे

शस्यवामनतनो भृगूद्वह रघुप्रवीर बल कंसहन् ।

वस्यभूतजननिग्रहाय धृतकल्किवेष भगवन् कृते-

रस्य सर्वमपि संकटं त्वमिह पद्मनाभ विरलीकुरु ॥१४॥

आक्रन्दं नक्रभीतद्विरद्वरमुखेद्गीर्णमाकर्ण्य तूष्णं

सौपर्णे स्वर्णवर्णे गरुति कृतपदः पूर्णकम्प्यशशिः ।

कल्पान्ताकाभिचक्राद्यभिलसितभुजश्चारुध्रुवाक्षशोभो

भास्वत्पीताम्बरोऽयाम्बुवसदशरुचिः प्रादुरासीत् स देवः ॥१५॥

दृष्ट्वा तस्य तथाविधं स भगवाम् दुःखं दयावारिधि-

स्ताश्चर्वात् क्षिप्रमयावतीर्थ सरतः सग्राहमुद्धृत्य तम् ।

पश्यत्यम्बरसीम्नि दिव्यनिबद्धे चक्रेण नक्राकणं

भित्त्वामोचयदीडितः शुभकसो वर्धद्विरिन्द्रविहङ्गि ॥१६॥

विष्णोश्चक्रविपाटितः स झटिति त्यक्त्वात्मनो नक्रतां

क्रूरां देवतशतव्याघ्रव निष्ठां सग्राह्यं (?) विष्णोः तनुम् ।

हृहः पूर्ववदिन्द्रपार्श्ववगन्तुं नायन् हरेर्विक्रमं

होहोत्यम्बरवारिभिः सक्तुक्तं दृष्टः स गजवर्षाद् ॥१७॥

इति स भगवानुप्राप्तकामं गवैन्द्रमकल्मषं

सर्ववि विरहय्यात्मं वत्सा तवात्मसत्पताम् ।

गदडमधिरुद्रावेमासा विमलभर्ता च

स्फुरन्ममगाद् वैकुण्ठाख्यं विभुः परमाद्भुतम् ॥१८॥

द्विपेन्द्रमोक्षनामाद्यं द्विपेन्द्रोऽपि विनिर्दिष्टम् ।
प्रबन्धमर्वादि माप्य सुप्रबन्धमस्तस्य ॥१९॥

इति गणितप्रदीपः समाप्तः ।

II VERSION

गणितप्रदीपप्रबन्धः

उत्तुङ्गमस्तकविराजितराजबालं
मत्तद्विपेन्द्रवरपूरुषशीर्षमूर्ति ।

प्रबन्धमस्तस्य विनिर्दिष्टम् ॥२०॥

इति गणितप्रदीपः समाप्तः ॥२१॥

चतुर्भुजं शङ्खचक्रवर्णाभीष्टादिभित्तम् ।

नीलमेघवर्णं बालं सुकुम्भं शङ्खं भजे ॥२२॥

अस्ति श्रीमातुः श्रीरामस्तिष्ठन्महिम्नमूर्तिस्तद्विनिर्दिष्टम् ॥२३॥

सुप्रबन्धमस्तस्य विनिर्दिष्टम् ॥२४॥

औषत्थं योजनानामयुक्तमुत्तुङ्गम् ॥२५॥

प्रबन्धमस्तस्य विनिर्दिष्टम् ॥२६॥

योऽयं पादतलालसन्तुष्टः ॥२७॥

जालः शङ्खचक्रवर्णाभीष्टादिभित्तम् ॥२८॥

यस्मिन् दिव्यजनेन्दुसुन्दरमुत्तुङ्गम् ॥२९॥

प्रबन्धमस्तस्य विनिर्दिष्टम् ॥३०॥

अस्ति हि समस्तगुणालयस्य सहीतलोकभूषणस्य महीधरस्मात्प्र कुञ्चन तानुसीमनि
 भगवतो वरस्य सर्वकालसञ्जायमानसरमसविकसवभिनवसुमनोजालप्रसृमरबहल-
 परिमलकन्दलीसमाकुप्यमाणः सरसतरसरम्बकम्बुजसाम्राज्यस्य सीमन्तस्थितिकृतावेमवि-
 वसीकृताशयः मुहुर्मुहुर्नुबोभूयमानमधुरिमाधरीकृतामृतमकरन्दसपोतिमेदुरसम्मदाकुलनिज-
 कृदुम्बिनीजनाश्रितसप्तज्जारसञ्चारमाचरिहः चञ्चलोकसञ्चार्यरतिविलसङ्कृतैः, इतस्ततो
 बलमानपयमात्रेभ्यस्तवेभ्यस्तत्त्वैः, अन्तर्गतमूर्च्छितप्रसङ्गपुरितज्जोमलमुकुलजालकं
 निबिरोसरोमहर्षमिवाभिप्रतीतिभिः तुङ्गतरतवटिपकोटिसन्ताडितसञ्चारदम्बुकम्बनिष्य-
 न्वितशोकरनिकरैरुलसितधर्मजलविन्दुभिरिव समलङ्कृताभिः स्मरसरशकलितामिर्बभिता-
 भिरिव लताभिरिशिलकुलस्तम्बजालैः, परिमलकम्बुजसङ्घितसरसङ्घः सरसस्वभर्तृकप्रबुध-
 हृदयैरशेषविशामण्डलेभ्यः समागमैः सरसतरकलकलरबमुच्चरितहरिदन्तरैः तित्तिरिशुकपिक-
 प्रमुखैरसंख्यैर्विकिरनिकरैरुपशोभितशिखरदेशैः, मन्दारपारिजातपाटलाशोकचम्पकचूतप्रियो-
 लपनसाम्राज्यलोकपुष्पनालिकेरङ्गमूरजीमूरप्रमुककातालतमालासप्तमङ्गुलिरेण्डोदुम्बरभ्रम-
 रदृशिशपञ्चनपिबुम्बकोविदारसरलदेवदायद्वालोदुम्बाम्बुबदयंकाभयामलकविल्वकपि-
 त्वजम्बीरमल्लातकप्रमुखैरनेकैरनोकैः सर्वतः संबोभूयमानभूरिशोभं, कोर(न?)निकर-
 तुण्डकोटिपरिषिद्धितपरिणतडाडिमुवल्सरीकलरसार्द्रकृतान्तरभाणैः निरन्तरनिर्गलवनल्प-
 तरपुष्परेणुसुरमिलैः विरहिजनविरचितविविधकुसुमपल्लवपर्यङ्कसङ्घपरिभासुरैः ताम्बूल-
 बल्लरीसमीरुङ्गपुगसन्धोहसन्धेदीप्यमानपर्यन्तैः लक्ष्मीविहारमन्दिरैरिव मनाहरैर्लतामण्डपैर्वि-
 भास्यमानं, प्रणयभाराकुलाभिः प्रणयिनीभिः सह संकोडमानैः सिद्धविद्याधरमुखैरशेषैरपि
 देवविशेषैराकीर्णसकलभार्गं, स्वचिद्विभ्रमन्दिरमिवाशोकसुमनोगणाश्रितं, कुत्रचित्
 पातालमिव विराजमाननागसङ्घं, कुहचन दशकण्ठपुरमिव पलाशगणसङ्कुलं, स्वचनं
 युधिष्ठिरनगरमिवार्जुनबीजस्थीयं, स्वचिद्विभ्रमण्डलमिव तद्वद्विरिजपरिभासुरं, कुत्रचिद्
 दाशरथिकराम्बुजमिव बाणासनदशनीयं, स्वचित् समरभूतलमिव शिलोमुखसमावृतं,
 कुत्रचिद्वनञ्जयलावण्यमिव माधवीमनोहरं, कुहचन कामिनीबदनमिव तिलकोल्लासितं,
 कुत्रचन नारायणशरीरस्थितं दशभक्तकन्दर्पसुन्दरं, स्वचनं केवलसकलपद्मसममिव बीलकण्ठ-
 निवासभूतं, निरतिशयानन्दसन्धासिद्धयः निविलज्जनमनोविरामभारासुखप्रबुधभाम् ।

उद्यानेऽस्मिन् मृदुगमजगत्प्राणवेल्सत्प्रफुल्ल-
 स्वर्णस्मिजप्रकरविसरद्भूरिसौरभ्यभारि ।

सम्प्राप्त्यदि मधुरसैरमञ्जुरिभिरचञ्चलीकै-

रञ्जकैश्च विलसन्ति सरः किञ्चनालं विशालम् ॥५॥

कूजद्विः कलनिस्वनं विसलतामास्त्राय हृष्टैः सवा

यस्मिन् सारसहंसमुखविहगद्वन्द्वैरं रम्यते ।

कल्हारोत्पलपङ्कजादिरजसां जालेरलं भासुरं

यद्वार्यन्मुसदा विसारकमञ्जरीनां गणैश्चञ्चलम् ॥६॥

यद्विस्तालतमालतामकुतमालाघ्रातकाञ्च दिशि-

नित्योत्कुलतलसत्प्रसूनफलजातोत्वासिमिस्तीरजैः ।

श भां भूतिरां बहुगगणैरामोदिनीं यत्तटी-

मेत्य स्वीयबध्भिः सत सुखं विद्याध्रसिद्धयः ॥७॥

तत्र च कदाचन तस्य शिलोच्चयस्य वनावनीनिकेतनः कश्चन वनवारणवरो
महामहीधरप्रतिमोदप्रविग्रहः समग्रानपि मृगप्रामान् निजावलोकनमात्रेण विनासयन्
अनवरतनिष्यन्दमानवानवारिपङ्क्तिगण्डमण्डलीकण्डूतिक्तिसञ्चूणितसालमण्डलः स्वकीय-
रक्षतमाग्राणजातमोतिवसाद् दूरविद्रुतपूण्डरीकवधः स्वयं निबाधतापप्रतप्तः सलिलागर्भ
गवेद्यन् करेणुभिः परिवृतः कलमानुवृतः परविन्यासगरिममरेण तं गिरिवरं परितः
प्रकम्पयन् मङ्गलानुबन्धमधुरमङ्कारतन्वारिभ्रमरपटलीप्रदीप्तोद्गीनविराजमानकदप्रदेशो
मन्दरान्तस्य सरोवरस्योपकण्ठमुद्भोक्त ।

तस्मिन् विगाह्य सस्ते सरसि प्रमोदात्

तोयं सुधामधुरमार्गलमाविपाय ।

आसि(ञ्चय? चय) काञ्चमपि पुष्करसंभूतभिद्रुः

सन्तापशान्तमयभाष महागजेन्द्रः ॥८॥

कलमान् करिणीश्च पाययन् निजशृङ्गापयसा च सेचयन् ।

स्वयमप्यधिकं पयः पिबन् चिरमस्मिन् विजहार स द्विपः ॥९॥

करिवरमिति तं विहारलोलं नियतिवशात् सरसीपयस्सु यत्तम् ।
प्रतिपदमच्चिराद् गृहीतवान् कोऽप्यमितबलोऽपराक्रमोऽथ नक्रः ॥१०॥

ग्राहेण कृष्यमाणोऽसौ बलीयानपि वारणः ।

न शशाक तटं गन्तुं तदा दैवशयमाप्तवान् ॥११॥

करेणवश्चक्रुशुरित्थमुच्चैः

स्वयूथनाथं प्रसमीक्ष्य खिन्नम् ।

पाणिग्रहास्तैः कलभैः सहैता-

स्तीरं समारोपयितुं न शेकुः ॥१२॥

अनन्तरमित्यमेव बद्धरोषं युध्यतोरन्योन्यं यथाबलं विकर्षतोः परमरोषपरुषान्तरङ्ग-
योर्नियुद्धविस्मापितसिद्धविद्याधरमुख्यदेवविशेषयोरक्षीणयोरनयोर्वन्तिनक्रयोर्वत्सरसाहस्रकेऽ-
तिक्रान्ते कालबलात् प्रक्षीणसकलकरणबलस्य तस्य करिवरस्य पूर्वजन्मसमाजितमहितपुण्य-
“पुरपरिपाकात् कथमहमात्मप्रभावेनामुतो विधातृपाशरूपाद् ग्राहाबात्मानं मोचयितुं
पारयेयं, कथं वा इमाः करिष्यः कलभाश्च मां विमोचयितुं समर्था भवेयुः, यद्भूयेन
यद्भुजासनसङ्क्रन्दनप्रमुखाः समस्तदिगीशा अप्यन्ये च सर्वे यदाज्ञारूपां निजनिजपुरमुद्रहन्ति
तमशेषलोकैकनाथमीश्वरमृतेऽन्यः कश्चन मदीयानिमां पीडामुन्मूलयितुं न प्रभुः, अतोऽहममु-
मेव भक्तवत्सलं भगवन्तं शरणं भजामी”ति मतिस्तपनीपद्यते स्म ।

निश्चित्य बुद्धेयवमसौ महात्मा करी परं भक्तिभरावनम्रः ।

त्रैलोक्यनाथस्य महत्त्वमन्तःसमाकलय्येत्यममुं समस्तौत् ॥१३॥

यद्रूपानवबोधतो जगदिदं विश्वं हि सञ्जायते

यज्ज्ञानाच्च विलीयते सकरणं रज्ज्वामिवाशीविषः ।

यस्माज्जातमिदं यदेव सकलं चैतद् यदस्मात् परं

तस्मै सत्यमुखात्मकाय महसे कुर्वे नमस्यामहम् ॥१४॥

यो व्याशुनवानो वसुधावि सर्वं निष्कल्पतिक्म्य दशोच्चरं पदम् ।
सहस्रमूर्ध्ने पुरुषाय भूयसे तस्मै नमोऽनन्तदृग्द्विधाहूये ॥१५॥

लघुं विश्वमशेषमेतद्वितुं संहर्तुमात्मीयया
शक्त्या यश्च गुणत्रयीमयमुपावत्ते शरीरत्रयम् ।
तस्मै निर्गुणरूपिणे त्रिजगतामीशाय निर्विक्रिय-
व्यापाराय निरीश्वराय करुणाधाम्ने नमस्कुर्महे ॥१६॥

अतिक्रान्ते काले लयमुपगते विश्वभुवनेऽ-
प्यविद्यां भूतेषु क्रमश उपयातेष्वथ निजे ।
प्रलीनायामस्यामविलयि भवो यच्च परमं
प्रपद्ये सत्यं तच्छरणमहमाद्यन्तरहितम् ॥१७॥

निष्प्रान्तिस्थविवेकिनः शमरता मुक्ता विमुक्ति परा-
मिच्छन्तो मुनयः समेत्य विपिनं भीमं तपः कुर्वते ।
यद्बोधाय यमादिपूतहृदयाः सोऽयं त्रयीदुर्गमो
देवः सम्प्रति सम्भवेन्मम गतिः सर्वकहेतुः परः ॥१८॥

ततश्चैवं केबलात्मन्यात्मनि परमपुरुषे भक्तिमाराद् बहुप्रकारमुदीरितैः स्तुतिरवंरा-
ज्यति तस्मिन् महागजे करुणाकरनामा स भगवान् भक्तसन्तापसम्बर्शनदयस्तुहयः
सहस्रैव तत्परित्राणमावधातुं भक्तिभारमनन्यकन्धरं धराधरप्रतिमाकृतिं प्रभानिन्दितकाञ्चनं
महाहिभूषणं महानुभावं भगवदाज्ञकप्रतीक्षं छन्दोमयं तं पतिराजं गच्छमधिरुह्य
सिद्धविद्याधरकिमराविदिव्यजनैरनवरतमनेकविधप्रस्तुतस्तुतिकोलाहलैरञ्जिता अपि दिशा
वर्द्धिताः कुर्वाणैः सनन्दाविभक्तवृन्दैरन्यैरपि धन्यैः शतमगुप्रमुखैरञ्जितविशालोच्चरैरैवंप्र
पार्श्वद्वैः परीतः तत्सरः परिसरमुपसरन् मकुटकटककुण्डलवल्लयकोस्तुभवनमालादिनानाभूषणै-
रतितरां परिभासुरशरीरजरीषिकन्दलः तस्य पतत्रिराजस्य कण्ठलमतिमुत्तरमसङ्कुर्वाणः
चरणश्रितजनेषु निरन्तरनिरिस्वरकरुणामयामृतक्षरीनिष्पन्दनिर्भरसमाहितदृगन्तदेसः
सकलसज्जनोपद्रवगवितदुर्जनविगर्वीकरणालंकीर्णोऽयम् अविरतप्रसृमरमहःप्रसरदुर्दशं सुदर्श-
नाभिधानं निजायुधवरं करतलेनोद्ग्रहन् मण्डहासकन्दलीविचनीकस्थमानवदनारविन्दोऽयं
पुरतः प्रभुपङ्कीत् ।

दृष्ट्वा देवं तदेवं गरुडगलगतं पुष्करे पुष्कराक्षं
 मोदादुत्तिष्ठत्य सोऽयं सपदि करिब्रह्मरः पुष्करं पुष्कराक्षम् ।
 विष्णो विश्वैकबन्धो जय जय करुणावास तुभ्यं नमस्ते
 दीनं त्वत्पादपाथोरुहशरणमिमं पाहि मामित्यवाधीत् ॥१९॥

एवं वीक्ष्य तदा तमुद्यदनुकम्पाद्र्रक्षणः स प्रभुः
 पक्षीन्द्रादवतीर्य मङ्क्षु सरसः सप्राहमुत्तारयन् ।
 चक्रेणार्कसमप्रमेण बलयन् नक्रास्यमश्रान्ति(तः? हः)
 कुम्भीन्द्रं तममूमुचद् व्यसनतः पश्यत्सु देवादिषु ॥२०॥

तदा ब्रह्मेशाद्या बबूषुरमराः पुष्पविसरं
 प्रशंसन्तश्चित्रं चरितमजितस्येतदनिशम् ।
 निनादो वाद्यानामजनि दिवि देवेषु कतिचि-
 ज्जगुः केचिन्मोदान्ननृतुरपरे तत्र नुनुवुः ॥२१॥

मुक्तो नक्रः सपदि स तदा देवलाख्यस्य शापा-
 द्रूहसंज्ञः समजनि च गन्धर्वराड्द्रुताङ्गः ।
 स्तुत्वा देवं तमथ नितरां भक्तिभारावनम्रो
 नत्वा भूयस्तदनुमतिमन्वासदत् स्वीयलोकम् ॥२२॥

इन्द्रद्युम्न इतीरितो नरपतिः पूर्वं पुनस्तादृशं
 नागेन्द्रत्वमगस्त्यशापबलतः संप्राप्य यो जातवान् ।
 चित्रं चित्रमयं तदा त्रिजगतां नाथस्य कारुण्यत-
 स्तत्सारूप्यमवाप पीतवसनश्रीवत्सकाद्यङ्कितः ॥२३॥

संप्राप्तवाह नमयामिति पार्श्वदत्तं
 मां त्वां चरित्रमिदमप्यधि मद्विभूतीः ।
 तथ्याश्च यः स्मरति पूतमनाः प्रभाते
 मुक्तो नविण्यति वृद्धं निखिलसत्त्वमीवात् ॥२४॥

लोकानुग्रहरूपिणीं गिरमिमामुच्छायं तस्मिन् क्षणे
 प्रथमाय स्वदरं गभीरम्भरानानन्दयन् स प्रभुः ।
 आरूढो गरुडस्य कण्ठममुना सारूप्यभावा समं
 प्रायात् स्वं पदमिन्द्रमुख्यदिविजैरुद्गीतसत्कर्मकः ॥२५॥
 इत्थं भक्तिवधूतमानसेन मया प्रभो ।
 प्रणीतं चरितं देव तावकं तत् प्रसीद मे ॥२६॥

III VERSION

इन्द्रद्युम्न इति त्रिलोकविदितः पाण्ड्याधिराजः पुरा
 पुत्रे राज्यभरं निधाय मलये तन्जंस्तपो दुश्चरम् ।
 आतिथ्याकरणादगस्त्यमुनिना शप्तः समाधिस्थितो
 दुग्धाम्भोनिधिमध्यभाजि गजतामापत् त्रिकूटाचले ॥३॥

तदनु चायम् अतनुमदमदनुरोधवीतबाधचेताः वासनानुगत्या नित्यानुबद्ध-
 हरिध्यानशक्तिः अनुरक्तानेकहस्तिनीपरिवारितः दूरतो निरस्तसमस्तसत्त्वजातः यूथमा-
 पालयन् देवालयदन्तिनामपि स्पृहणीयचरितः परितस्त्रिकूटाचलम् अतिपेशलदलबह्वपरि-
 मळतालतमालहिस्तालरसालनाळिकेरपूगवण्डपुङ्केक्षुरम्भाकळमकुल्लसल्लकीपनससरळैलादि-
 विपिनविहरण विनोदाविदितगळितबहुकालः कदाचिद् ऊष्मळप्रीष्मतापासहिष्णून् गणान्
 प्राचेतसं सरोवरं प्रणीय पानीयपानविहरणमृणाळाहरणाम्यवहारविभिः वीतखेदान् विधाय
 अतिचिरं स्वैरलीलामाकलय देवलोकगाथकेन हूहनामकेन देबलमुनिशापप्राहितप्राहाकृतिना
 नृहीतचरणो विमोचनासमर्थेषु विहितभयबंहितसंहिताकाण्डप्रलथघनघटास्तनितशङ्कातङ्कि-
 तारोषजन्तुजालेषु यूथेषु तूर्णोत्तीर्णेषु देशदशाविशेषवशात् विशालबलविक्रमोपक्रमोदघ्रेण समं
 ग्राहपतिना संग्रामकेलिभिः कमपि समयं गमयन् अमयममिमितानुवर्तौनि निर्धूतकुहरपाशांसि
 इतरयादांसि, रमयन् अनामयपिथुनेरपि समाभासनजजनंसविलासनयन्बलनौ अवशं वशायूषं
 क्रमेण वत्सरसहस्रावसाने मत्सरिणां मवं शमपितुं दमयितुं च मनः विहिताध्यवसितो नियतो
 प्रभावात् इभाधिराजः परा*

* इतः परं न दृश्यते

उडुजातकोदयः

मिश्रप्रकरणम् । २०

गणेशवाणीविधिविष्णुशङ्करा-
निनेन्दुभोमज्ञगुरुशनशशनीन् ।
प्रणम्य पाताचचग्रहाश्च सद्गणा-
नुदाहृष्याम्युडुजातकोदयम् ॥१॥
विज्ञाय जन्मनि खगल्यतिमृक्षेहीरा-
ब्रह्मकाणभांशमसमाशेकं दिक्प्रयोगितम् ।
जन्मायुषोरधिपयोस्तु शुभाशुभैस्ति-
संपद्विपत् सततमेकैः कालैः विचित्रैः ॥२॥
विचिन्त्य पक्षावितिथित्रिके बलं
दिने समोत्कृष्टलघूद्वर्जं वदेत् ।
दिनेशजन्मेशसुहृत्समारिभिः
सुदीर्घमध्यमत्वमेव जीयते मृणाम् ॥३॥
संपूर्णपूर्णचरणोनदलांश्चि-
पादार्यमन्वपरिहीनमितीदृशम् ।
मत्स्यचतुर्गुणमिजमित्रसमारिणीच-
क्षेत्रादिमोहयसंहितैः फलमत्र खटैः ॥४॥

१ शङ्करादि २ कालम् ३ दिने ४ बलं ५ फलं ६ मृणाम् ७ मित्रसमारिणीच ८ फलम् ९ मृणाम् १० फलम्

तनु नय^१ तनि जाया स्तुत्य धन्या सदा^२ सा^३

नर इति विदुरब्धान् बह्विप्रवोडपानाम् ।

रविशशिकुजनागस्वर्गसंपूजिताक-

प्रभवविधुकेतूक्षाधिपानां ग्रहाणाम् ॥१३॥

उडूध्वनाडीभिरुडुप्रभोदशां

निहत्य नीतेन हताः समाः क्वकाः ।

पुनः^४ प्रियेणापि नगेन बध्मिस्त

भवन्ति मासा दिवसा यथाक्रमम् ॥१४॥

इष्टक्षब्दगणादहस्कृततनोरुध्वोडुसंवत्सरे-

रभ्यस्ताद् दिवसीकृतेरथ हरेभगारिभभीमतेः ।

लब्धास्ते दिवसाः शुभमहासावकेभ्यस्तस्ते

नीताः^५ स्युर्धडिका भवन्ति गणकस्तस्मै

वसन्ति ॥१५॥

१. तनु-क; तनि-ड, च. २. स्तीका-ग. ३. पुनर-ग.

४. ति च समाः स्युर्ध्व-ग. ५. केतुस्वर्गसंपूजिताकम् ॥ च.

६. प्रियेणेन न क, न. ७. One sloka extra appears in च.

स्वदशत्रिगुणं विद्यात् स्वदशात्परिवर्तके ।

त्रिंशद् भाजिते मासे मासाद् द्वादशवत्सरे ॥ च. ।

८. सा वा घ-ग.

स्वसमहृतनिजायुःपिण्डतो निजमायुः
 कलमय निजमायुस्तद् भवेत् केवलम् ।
 विशति खगबरो यस्तस्य संवत्सरध्नात्
 पुनरपि निरयाप्तं यत्तदस्यान्तराम्युः ॥१६॥

^१
 इति मिश्रप्रकरणम् ।

रविदशाप्रकरणम्

अथ तरणिदशायां क्रौर्ध्वमूपाब्जबुद्धे-
 र्धनमनलचतुष्पात्पीडनं नेत्रतापः ।
 उदरवशनरोगः पुत्रद्वारार्तिरुच्चै-
 र्गुरुजनविरहः स्याद् मृत्युमाप्सोऽर्थहानिः ॥१७॥

^२ रिपुक्षयो ^३ गवशमनो धनागमः
^४ कृषिक्रिया गृहकरणं सुहृद्युतिः ।
 क्षयानिलप्रतिहृतिरकंदायकं
 शशी यदा विशति भवेत्पुष्पताम् ॥१८॥

^५ महीभृतो भवति भयं धनक्षयतो
 रजागमः पदविरहोऽरिपीडनम् ।
 व्रणोद्बुधो विविधजनैर्विरोधिता

^६
 कुजो यदापहरति सूर्यदायकम् ॥१९॥

१. This line is dropped in Ms. Ms. ends here. २. यो व्याधिशमो
 व-न, घ, ङ. ३. गमो-ग, घ. ४. गृहक्रिया कृषिक-ग, घ. ५. घृता
 व-व. ६. वा हृति च सू-व.

रिपूक्षयो घनहृतिरङ्गमुक्षुज्जि

विषाद्भयं विषयविमूढता पुनः ।

शिरोदृशोरधिकशरीरे देहिना-

महो भवेदहिमकरायुराहते ॥४॥

रिपूक्षयो विविधघनाप्तिरन्ध्रं

सुरार्चनं द्विजगुरुबन्धुपूजयम् ।

श्रवश्चमो भवति च श्चक्षुरोक्त

गिरांपतो प्रविशति गोपतिर्वंशाम् ॥५॥

^२
घनाहृतिः सुतक्षिप्तः स्त्रियो यथा

^३
रिपूक्षयथा भवति परिच्छदच्युतिः ।

^४ ^५
मलिष्ठता पवनकफप्रपीडनं

शनैश्चरे सवितृदशान्तरं गते ॥६॥

विचर्चिका पिटकसकुष्ठकामिला

^६
विकत्थनं कटिजठरप्रपीडनम् ।

महीक्षयस्त्रिगदभवो भवेत्तस्य

^७
विधोः सुतश्चरति यदाकं बत्सरम् ॥७॥

१. राहरेत् ॥ क. २. नाहृतिः क, घ. ३. गुह्य-घ. ४. लिप्ता-क, घ, ङ.

५. ता भवति क-घ. ६. कर्तनं-क. ७. सुते हृति चैरक्षयकम् ॥ घ.

सुहृदघः स्वजनकुटुम्बविग्रहो
रिपोर्मयं धनहरणं पदच्युतिः ।

^१
गुरोर्गवश्चरणशिरोरगुच्चकैः
शिखी यदा विशति दशां विभेत्स्वेतिः ॥१॥

^{२ ३}
शिरोरुजा जठरगलाक्षिपीडनं
^४
कृषिक्रियागृहघनधान्यविच्युतिः ।

सुतस्त्रियोरसुखमतीव देहिनां
भृगोः सुते हरति रवेरथावकम् ॥९॥

^५
इति रविदशाप्रकरणम्

चन्द्रदशाप्रकरणम्

शिशिरकरदशायां मन्त्रदेवहृजोर्वी-
पतिजनितविभूतिः स्त्रीघनक्षेत्रसिद्धिः ।
कुसुमवसनभूषा गन्धनानारसाप्ति-

^६
भवति बलविरोधोऽर्थक्षयो चातरोचः ॥१॥

^७
पित्तवह्निरधिरोद्भूवा रुजा
क्लेशदुःखरिपुचोरपीडनम् ।

१. अरगुच्चकैस्तदा-ग. २. रगुवाक्षि-क. ३. गवातिपी-ख. ४. गृह-
क्रियापशु घ-क. ५. This line is dropped in ख. ६. रोचः स्वका-क.

७. रस्त्रियजनितविभूतिर्गुणवपनो

पुसुलेत्तमसमापनो भवेद् ।

मातुरिष्टफलमंगनासुखं

त्वां दशां विशति शीतदीधितौ ॥ This sloka appears extra in ख:

१
चित्तवानविहतिर्भवेत् कुजे
शीतदीधितिदशान्तरं गते ॥२॥

तीव्ररोषरिपुबुद्धिबन्धुहृ-
२
मास्तानिकफातिजं भयम् ।
३
अक्षपानजनितज्वरादय-
श्चन्द्रवत्सरबिहारकेऽप्यहो ॥३॥

वानधर्मनिरतिः सुखोदयो
वस्त्रभूषणसुहृत्सुतागमः ।
राजसत्कृतिरतीव जायते
कैरवप्रियवयोहरे मुरौ ॥४॥

४
नैकरोगविहतिः सुहृद्धन-
स्त्रीरजा व्यसनसंभवो महान् ।

५
प्राणहानिरथवा भवेच्छनी

६
मारबन्धुवयसोऽन्तरं गते ॥५॥

-
१. तमान-ख, ग. २. निभयं च विग्रहः । ग; निभयातिरूपमवेत् । ख;
निभयातिरूपमवेत् । घ. ३. ज्वरोद-ग. ४. हृत्सुत-घ. ५. वेन्मृदी-ख, ग, घ.
६. तार-घ.

१ २ ३
 सर्वतो धनरथाश्वगोकुल-
 ४
 प्राप्तिराभरणसौख्यसम्भवः
 ५
 चित्तबोध इति जायते विधो-
 ६ ७
 रायुषि प्रविशते यदा बुधः ॥६॥

८
 चित्तचञ्चलमथार्थविच्युति-
 ९
 बन्धुहानिरपि तोयजं भयम् ।
 दासभृत्यहतिरस्ति देहिनां
 १०
 केतुके हरति चन्द्रदायकम् ॥७॥

तोययानवसुभूषणाङ्गना-
 विक्रयक्रयकृषिक्रियादयः ।
 ११
 पुत्रमित्रपशुधान्यसंयुति-
 श्चन्द्रदायहरणोन्मुखे भृगौ ॥८॥

राजमाननमतीव शूरता
 रोगशान्तिररिपक्षविच्युतिः ।
 पित्तवातरुग्निने गते तदा
 स्याच्छशाङ्कुपरिवत्सरान्तरम् ॥९॥

१२
 इति चन्द्रदशाप्रकरणम् ।

-
१. दा-घ. २. गजान्ध-घ. ३. सं-ग. ४. स्पदः-ग, घ.
 ५. पित्तबाध-क, ख. ६. पुरस्तरगते-घ. ७. धे-घ. ८. मनर्थ-क,
 ख, ग. ९. मृनाशमथ तो-क, १०. ति चान्द्रमन्वकम् ॥ ग, घ.
 ११. त्रघनधा-घ. १२. This line is dropped in ख.

लोकानुग्रहरूपिणीं गिरमिमामुच्चार्य तस्मिन् क्षणे
 प्रध्माय स्ववरं गमीरममरानानन्दयन् स प्रभुः ।
 आरूढो गरुडस्य कण्ठममुना सारूप्यभाजा समं
 प्रायात् स्वं पदमिन्द्रमुख्यदिविजैरुद्गीतसत्कर्मकः ॥२५॥

इत्थं भक्तिवधूतमानसेन मया प्रभो ।
 प्रणीतं चरितं देव तावकं तत् प्रसीद मे ॥२६॥

III VERSION

इन्द्रद्युम्न इति त्रिलोकविदितः पाण्ड्याधिराजः पुरा
 पुत्रे राज्यभरं निधाय मलये तन्वंस्तपो दुश्चरम् ।
 आतिथ्याकरणादगस्त्यमुनिना शप्तः समाधिस्थितो
 दुग्धाम्भोनिधिमध्यभाजि गजतामापत् त्रिकूटाचले ॥१॥

तदनु चायम् अतनुमदमदनानुरोधवीतबाधचेताः वासानुगत्या नित्यानुबद्ध-
 हरिध्यानशक्तिः अनुरक्तानेकहस्तिनीपरिवारितः दूरतो निरस्तसमस्तसत्त्वजातः यूथमा-
 पालयन् देवालयदन्तिनामपि स्पृहणीयचरितः परितस्त्रिकूटाचलम् अतिपेशलदलबहुलपरि-
 मलतालतमालहिन्तालरसालनाळिकेरपुगवण्डपुंड्रेभूरम्भाकळमफुल्लसल्लकीपनससरळेलादि-
 विपिनविहरण विनोवाविवितगळितबहुकालः कदाचिद् ऊष्मळप्रीष्मतापासहिष्णून् गणान्
 प्राचेतसं सरोवरं प्रणीय पानीयपानविहरणमृणाळाहरणाभ्यवहारादिभिः बीतखेदान् विधाय
 अतिचिरं स्वैरलीलामाकलय देवलोकगायकेन हूहनामकेन देवलमुनिशापप्राहितप्राहाकुतिना
 गृहीतचरणो विमोचनासमर्थेषु विहितभयबंहितसंहिताकाण्डप्रळयघनघटास्तनितशङ्कातङ्क-
 तारोषजन्तुजातेषु यूथेषु तूष्णींतीर्णेषु देशदशाविशेषवशात् विशालबलविक्रमोपक्रमोदघ्रेण समं
 ग्राह्यपतिना संप्रामकेलिभिः कमपि समयं गमयन् घ्नमयन्नभिमतानुवर्तानि निर्धूतकुहरपाषांसि
 इतरयादांसि, रमयन् अनामयपिशुनेरपि समाश्वासनजजनैसविलासनयन्वलनौ अवशं वशायूथं
 क्रमेण वत्सरसहस्रावसाने मत्सरिणां मवं शमयितुं दमयितुं च मनः विहिताध्यवसितैर्नियतेः
 प्रभावात् इभाधिराजः परा*

* इतःपरं न दृश्यते

मिश्रप्रकरणम् । १२ ।

गणेशवाणीविधिविष्णुशंकरा-

निनेन्द्रभौमज्ञगुरुशनश्शनीन् . ४

प्रणम्य पाताञ्जलग्रहांश्च सद्गणा—

नुदाह्रिष्याम्युडुजातकोदयम् ॥१॥

विज्ञाय जन्मनि खगस्थितिर्मन्त्रैर्हारां-

द्वेवकाणमांशमसमांशकंदिकर्तव्येति ।

जन्नायुषोरधिपयोः शुभाशुभंतिः

संपद्विपत् सततवेदः कालि विजयार्थ ॥२॥

२ विचिन्त्य पक्षादितिथित्रिके बलं

४ विने समोत्कृष्टलघुर्ज वदेत् ।

दिनेशजन्मेशसूहृत्समारिभिः

सुदीर्घमध्याल्परकालवितं । मृणाम् ॥३॥

संपूर्णपूर्णचरणोनदलांशविधि-

पादार्धमन्दपरिहोनमितीदसूक्ष्मम् ।

अत्युच्चतुल्यनिजमित्रसमाधिनीच-

क्षेत्रादिमोहयसहितैः फलमत्र खटैः ॥४॥

१. वास्तविकता २. काल ३. दिने ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

४ कलं ग ह ५ न-पादेः ॥ क च

आत्मचित्तधृतिवाक्मुखक्रिया—

कामदुःखपरिमौढ्यमूर्च्छनाः । ।

^१ भास्करादिखगसद्वलाधलै—

^३ स्तच्छुभाशुभयुति समादिशेत् ॥५॥

^४ पितृजननितनूजसोदराख्य—

^५ प्रियतरुणीपतिभृत्यदासनाथाः ।

^७ रविशशिगुरुभूजसौम्यकाव्य—

द्युमणितनूजभुजङ्गकेतवोऽमी ॥६॥

वदतु मरणयोगं स्वाभिः शककाले

गुलिकभवनवत्पुर्वा दशायां विनाशम् ।

जनननिधनपत्योः क्रूरयोः क्रूरदृष्टि—

^८ र्यदि भवति युतिर्यद्यष्टषष्ठस्थयोर्वा ॥७॥

उद्यद्दृगाणपतिराशिगते सुरेङ्गणे

तस्य त्रिकोणमपि गच्छति वा विनाशम् ।

^{१०} रश्मिर्त्रिभागपतिमन्दिरगेऽथ मन्धे

^{१२} प्राप्ते त्रिकोणमथवास्य वदेद्विनाशम् ॥८॥

१. भास्वदादि-ग, ख; भास्वरादि-ङ. २. बला-क बलं त-ग, ख; बलात् त-ङ.
३. स्तैःशुभा-क. ४. त्र्योदशोदराख्यवात्री-ङ. ५. सुतत-ङ. ६. जोधरघृ-ङ;
जीपरिघृ-ग, ख. ७. शिफुजसौम्यजीवकाष्ट-ङ. ८. व्रजति युतिगतियं-क, ख, ङ.
९. ति तयोर्ब-ग. १०. The lines beginning with रश्मि and प्राप्ते are
dropped in ख. ११. गे ख म-ग. १२. वदन्ति श्रुत्यम् ॥ क.

शशाङ्कुसंयुक्तदृगाणपूर्वतः

^१
खरत्रिभागेशगृहं गतेऽथवा ।

त्रिकोणगे वा मरणं शरीरिणां

^२
शशिन्यथ स्यात् तनुरन्ध्ररिःफगे ॥९॥

अष्टमाधिपतियुङ्मवांशक-

^३
प्राणनाथभवनाश्रिते रथो ।

प्राणहानिरथवा त्रिकोणगे

^४
तस्य जन्ममदरिःफगेऽथवा ॥१०॥

^५
रन्ध्रत्रिभागपतिघातुकृतोऽत्र रोग-

स्तस्याधिपत्युरथवा प्रवदन्ति केचित् ।

^६ ^७
अग्न्यम्बुशस्त्रकृततप्तमथामयक्षुत्-

^८
तृड्व्याधितापजनितोऽर्कमुद्यग्रहाणाम् ॥११॥

^९ ^{१०}
यवा शुभः क्रूरवशान्तरं गत-

स्तर्ध्वा भवेत् क्लेशमरातिपीडनम् ।

^{११}
मृतिस्तु जन्माष्टसरिःफगेऽशुभे

^{१२}
तदायुरन्तरचरितैऽखिले ग्रहे ॥१२॥

-
१. ते सनी । च. २. नुरिःकरग्रगे ॥ क. ३. स्थानना-च. ४. हरन्ध्ररिः
फगे ॥ च. ५. This sloka is missing in च. ६. तक्ञ्चरकाप्तवानक्षुत्-ग, च.
७. महाम-च, क. ८. धिरित्यपि दिनेश्वरपूर्वकाणाम् ॥ ग, च; धिमोह-क.
९. शुभे कू-च. १०. गते-च. ११. गेऽशुभ-ग, क. १२. ग्रहायु ग, क.

तनु नय^१ सिनि जाया स्तुत्य धन्या^२ सौ^३ सा

नर इति विदुरब्दान् बलिपूर्वोडुपानाम् ।

रविशशिकुजनागस्वर्गसंपूजितार्क-

प्रभवविधुकेतूक्षाधिपानां ग्रहाणाम् ॥१३॥

उद्धृध्वनाडीभिरुडुप्रभोर्दशां

निहत्य नीतेन हताः समाः इवः ।

पुनः^६ प्रियेणापि नगेन बभित्त

भवन्ति मासा दिवसा यथाक्रमम् ॥१४॥

इष्टक्षब्दगणादहस्कृततनोरुध्वोडुसंवत्सर-

रभ्यस्ताद् दिवसीकृतेरथ हरेष्वागारिभभमितेः ।

लब्धास्ते दिवसाः पुनर्मासस्तत्रोन्मत्तमास्तस्ते

नीताः स्युर्घडिका भवन्ति तत्रैवस्तमेव

वसन्ति ॥१५॥

१. तनु-क; सनि-क. २. स्तीका-ग. ३. सुनर-ग.

४. ति च समाः स्युर्बलि-ग. ५. केतुस्वर्गसंपूजितार्क ॥ च.

६. प्रियेणेन न क. ग. ७. One sloka extra appears in च.

स्ववशात्त्रिगुणं विद्यात् स्ववशात्परिवर्तके ।

त्रिंशद् भाजिते मासे मासाद् द्वयवत्सरे ॥ च. ।

८. सा का घ-ग.

स्वसमहृतनिजायुःपिण्डतो निजमायुस्तद् भवेत्
 कलमय निजमायुस्तद् भवेत् निजमायुस्तद्
 विशति जगद्वरो यस्तस्य संवत्सरध्नात्
 पुनरपि निरयाप्तं यस्तदस्यान्तरायुः ॥१६॥

^१
 इति मिश्रप्रकरणम् ।

रविदशाप्रकरणम्

अथ तरणिदशायां कौर्मन्पाण्डुदे-
 र्धनमनलचतुष्पात्पीडनं नेत्रतापः ।
 उदरदशनरोगः पुत्रद्वारातिरुच्यै-
 गुणजनबिरहः स्याद् मृत्युममृतोऽर्यहानिः ॥१॥

^२ रिपुक्षयो ^३ गदशमनो धनागमः
^४ कृषिक्रिया गृहकरणं सुहृद्युतिः ।
 क्षयानिलप्रतिहृतिरकंदायकं
 शशी यदा विशति भवेद्दुष्कृताम् ॥२॥

^५ महीभृतो भवति भयं धनच्युती
 रक्षागमः पदबिरहोऽरिपीडनम् ।
 व्रजोद्भूतो विविधजनैर्विरोधिता

^६
 कुजो यदापहरति सूर्यदायकम् ॥३॥

१. This line is dropped in Ms. Ms. ends here. २. यो व्याधिशमो
 व-ग, घ, ङ. ३. गमो-ग, घ. ४. गृहक्रिया कृषिक-ग, घ. ५. मृतां
 व-व. ६. वा हृति व स-व.

रिपुक्षयो घनाहृतिरङ्गमुद्रमणी

विषाद्भूयं विषवीविभूतता पुनः ।

शिरोदृशोरधिकरुगेव देहिना-

महौ भवेदहिमकरायुराहृते ॥४॥

रिपुक्षयो विविधघनाप्तिरन्वहं

सुरार्चनं द्विजगुरुबन्धुपूजनम् ।

ध्रुवधमो भवति च अक्षरोगल

गिरांपतौ प्रविशति गोपतीर्दशाम् ॥५॥

^२
घनाहृतिः सुतक्षिणः सिद्धयो रज्जा

^३
रिपुक्षयो भवति परिच्छिद्यः ।

^४ ^५
मलिष्ठता पवनकफप्रपीडनं

शनैश्चरे सवितृदशान्तरं गते ॥६॥

विचर्चिका पिटकसकुष्ठकामिला

^६
विकत्थनं कटिजठरप्रपीडनम् ।

महीक्षयस्त्रिगदभवो भवेत्तस्य

^७
विधोः सुतश्चरति यदाकर्णत्सरम् ॥७॥

१. राहरेत् ॥ क. २. नाहृतिः क, घ. ३. गुदव्य-घ. ४. सिद्धता-क, घ, ङ.

५. ता भवति क-घ. ६. कर्तनं-क. ७. सुते हृति चौराजकम् ॥ घ.

सुहृद्वधः स्वजनकुटुम्बविग्रहो
रिपोर्भयं घनहरणं पदच्युतिः ।

^१
गुरोर्गन्धर्वचरणशिरोरुगुच्छकैः
शिखी यदा विशति दशां विभस्वतिः ॥१॥

^{२ ३}
शिरोरुजा जठरगलाक्षिपीडनं
^४
कृषिक्रियागृहघनधान्यविष्युतिः ।

सुतस्त्रियोरसुखमतीव देहिनां
भृगोः सुते हरति रवेरथाब्दकम् ॥९॥

^५
इति रविदशाप्रकरणम्

चन्द्रदशाप्रकरणम्

शिशिरकरदशायां मन्त्रदेवहृजोर्वी-
पतिजनितविभूतिः स्त्रीघनक्षेत्रसिद्धिः ।
कुसुमवसनभूषा गन्धनानारसाप्ति-

^६
भवंति बलविरोधोऽर्थक्षयो चातरोषः ॥१॥

^७
पितवह्निरधिरोद्ध्वा रुजा
क्लेशदुःखरिपुचोरपीडनम् ।

१. गरुगुच्छकैस्तदा-ग. २. रगुदाक्षि-क. ३. गदातिपी-घ. ४. गृह-
क्रियापशु घ-क. ५. This line is dropped in क. ६. रोषः स्वज्ञ-क.

७. रक्षिप्रजापितरमसीशुभममो

पुत्रुलेसमममामो भवेद् ।

मातुरिष्टफलमंगनासुखं

त्वां दशां विशति शीतवीधितौ ॥ This sloka appears extra in क:

१
वित्तवानविहतिर्भवेत् कुजे
शीतदीधितिदशान्तरं गते ॥२॥

तीव्ररोषरिपुमुद्विबन्धु-
२
मारुताशनिकफातिजं भयम् ।
३
अन्नपानजनितज्वरादय-
श्चन्द्रवत्सरविहारकेऽप्यहो ॥३॥

दानधर्मनिरतिः सुखोदयो
वस्त्रभूषणसुहृत्सुतागमः ।
राजसत्कृतिरतीव जायते
कैरवप्रियवयोहरे मुरौ ॥४॥

४
नेकरोगविहतिः सुहृद्धन-
स्त्रीरजा व्यसनसंभवो महान् ।

५
प्राणहानिरथवा भवेच्छनौ
६
मारबन्धुवयसोऽन्तरं गते ॥५॥

१. समान-ख, ग. २. निभवं च विग्रहः । ग; निभयातिरूपभवेत् । ख;
निभयातिरूपभवेत् । घ. ३. ज्वरोद-ग. ४. हृत्सुत-घ. ५. वेन्मृदी-ख, ग, घ.
६. तार-घ.

१ २ ३
सर्वतो घनरथाश्वगोकुल—

४
प्राप्तिराभरणसौख्यसम्भवः

५
चित्तबोध इति जायते विधो-

६ ७
रायुषि प्रविशते यदा बुधः ॥६॥

८
चित्तचञ्चलमथार्थविच्युति—

९
बन्धुहानिरपि तोयजं भयम् ।

दासभृत्यहतिरस्ति देहिनां

१०
केतुके हरति चन्द्रदायकम् ॥७॥

तोययानवसुभूषणाङ्गना—

विक्रयक्रयकृषिक्रियादयः ।

११
पुत्रमित्रपशुधान्यसंयुति—
श्चन्द्रदायहरणोन्मुखे भृगौ ॥८॥

राजमाननमतीव शूरता

रोगशान्तिररिपक्षविच्युतिः ।

पित्तवातरुग्निने गते तदा

स्याच्छशाङ्कपरिवत्सरान्तरम् ॥९॥

१२

इति चन्द्रदशाप्रकरणम् ।

-
१. दा-घ. २. गजाश्व-घ. ३. सं-ग. ४. स्पदः-ग, घ.
५. पित्तबाध-क, ख. ६. पुरातरगते-घ. ७. धे-घ. ८. मनर्थ-क,
ख, ग. ९. धुनाशमथ तो-क, १०. ति चान्द्रमव्वकम् ॥ ग, घ.
११. ब्रधनधा-घ. १२. This line is dropped in ख.

कुजदशाप्रकरणम् ।

क्षितितनयदशायां क्षत्रवैरिप्रमर्द-
 प्रतिजनितविभूतिः स्यात् पशुक्षेत्रलाभः ।
 सहजतनयवैरं दुर्जनस्त्रीषु सक्ति-
 दहनरुधिरपित्तव्याधिरर्थोपहानिः ॥१॥

शस्त्राग्निचोररिपुभूपभयं विषातिः
 कुक्ष्यक्षिशोर्षजगदो गुरुबन्धुहानिः ।
 प्राणव्ययोऽथ यदि वा विपुल्यापदो वा
 वक्रायुरन्तरगते भुजगाधिनाथे ॥२॥

द्विजविबुधसमर्चा तीर्थपुण्यानुसेवा
 सततमतिथिपूजा पुत्रमित्राभिवृद्धिः ।
 श्रवणरुगतिमात्रं श्लेष्मरोगप्रपीडा
 भवति कुजदशान्तःसंगते वागधीशे ॥३॥

१. वैरीन्द्रम-ख. २. वनाशः । ख.

३. पित्तोष्णरुग्त्रणभयं सहजविभूतिं
 क्षत्रप्रभोवजनितार्थविभूतिसिद्धिः ।

जात्यग्निशस्त्रनृपचोरजनैर्विरोधो
 धात्रीमुतो हुरति चेच्छरवं स्वकीयम् ॥

This sloka appears extra in ms घ.

४. वक्रग-ख.

५. रोगोद्भवो

वा-घ.

उपर्युपरि विनाशः स्वात्मजस्त्रीगुरुणा

मगणितविपदन्तर्दुःखमर्योपह्वानिः ।

१
सुहृन्मरिभ्यो शीतिरुणानिलातिः

२
कुजजनितदशायामर्कजेऽन्तःप्रयाते ॥४॥

४
अरिभयमुचोरोपद्रवो वार्थह्वानिः

पशुतुरगगजानां विप्लवो धातुरेभः ।

५
नृपकृतपरिपीडा शूद्रचोरोद्भवो वा

विशति विधुतनूजे विश्वधात्रीसुतायुः ॥५॥

६
अशनिभयमकस्मादग्निशस्त्रप्रपीडा

विगमनमथ देशाद् वित्तनाशोऽथवा स्यात् ।

अपगमनमसुभ्यो योषितो वा विनाशं

७
प्रविशति यदि केतो क्रूरनेत्रायुरन्तः ॥६॥

८
युवतिजनविनाशो विप्रवासः स्वदेशा-

द्रसुहृतिरपि चोरैर्वामनेत्रोपरोधः ।

परिजनपरिह्वानिर्जायते मानवाना-

९
मपहरति यदायुर्भौमजं भार्गवेन्द्रः ॥७॥

-
१. परह-ग; असु-क. २. मरिभ्यो कुजवशा-घ. ३. जे तं प्र ध.
४. वास्वभावः ग, घ. ५. परिजनप-ग. ६. मपस्त्राराग्नि-ग, घ.
७. विशति यदिह के-ग. ८. युधिजनितविमार्गं वि-क, घ. ९. युष्मन्मो
भा-ग. घ.

नृपकृतपरिपूजा युद्धलब्धप्रभावः
 परिजनघनधान्यश्रीमदन्तःपुरं च ।
 अतिविलसितवृत्तिः साहसादाप्तलक्ष्मी-
 स्तिमिरभिदि कुजायुर्दायसंहारिणीति ॥८॥

विविधघनसुताप्तिविप्रयोगोऽरिबर्ग-
 र्वसनशयनभूषारत्नसम्पत्प्रसूतिः ।
 भवति गुरुजनार्तिगुल्मपित्तप्रपीडा
^१ धरणि^२ सुतदशान्तः संगते शीतरश्मौ ॥९॥

^३ इति कुजदशाप्रकरणम् ।

राहुदशाप्रकरणम् ।

असुरवरदशायामस्वभावोऽथवा स्या-
 दतिगहनगदातिः सूनूनार्योर्विनाशः ।
 विषभयमरिपीडा वीक्षणोऽर्धाङ्गरोगः
 सुहृदुदितविरोधो भूपतेर्द्वेषलाभः ॥१॥

विषाम्बुरुगदुष्टभुजङ्गदंशनं

^४ पराबलासंयुतिरिष्टविच्युतिः ।

अरिष्टवाग्दुष्टजनप्रपीडा

विधुन्तुदेनापहृते स्ववत्सरे ॥२॥

१. गितनयवर्षं शीतगो संप्रयाते ॥ ख; गिजवर्षान्तः सञ्चरत्येव चन्द्रे ॥ घ.

२. ते रात्रिनाथे ॥ ग. ३. This line is dropped in ख.

४. This sloka appears only in घ.

१
विषवर्णातिः कलहं सुहृज्जनै-

२
रहीन्द्रदायान्तरगे शिवाक्षरे ॥६॥

३
सुतस्य लब्धिः सुदृशां समागम-

४
स्तुरंगमातंगमहो समुद्भवः ।

कफानिलातिः स्वजनैर्विरोधिता

मवेद् भुजङ्गायुरपाहते भृंगी ॥७॥

अरिष्यथा स्यादतिपीडनं दृशो-

विषातिशस्त्राहतिरापदुद्गमः ।

५
जायासुतातिर्नृपतेर्महद्भयं

विलेशयायुष्यहिमांशुना हते ॥८॥

बधूबिनाशः कलहो मनोरञ्जा

कृषिक्रियावित्तपशुप्रजाक्षयः ।

६
सुहृद्विपत्तिः सलिलाद् भयं भवे-

द्विघो दशां हतंरि देवविजिह्वः ॥९॥

-
१. जनं प्राप्ति विमूढता दृशो च, घ. २. दायं वणिजोक्ति-क घ.
३. सुरस्वस-ग; कलत्रलब्धिः शयनोपनिषत्त-घ. ४. समागमः-घ.
५. जायासु-न, ङ; सुपाद् भयं च स्वजनैर्विरोधिता-क. ६. शीतमहद्भयं
वि-ग, घ.

नृपाग्निघोरास्त्रभयं शरीरिणां
 शरीरनासो यदि वा महारुजा ।
 पदधूमो हृन्मयनप्रपीडनं
 यदास्ति सर्पायुषि सञ्चरेत् कुजे ॥१०॥

इति राहुवशाप्रकरणम् ।

गुरुवशाप्रकरणम् ।

अमरगुरुवशायाम्स्वराश्वार्थसिद्धिः
 परिजनपरिवारप्रौढिरत्यर्थमानः ।
 सुखसुतसुहृदपतिः साधुवादास्तपूजा
 भवति गुरुवियोगः कर्णरोगः कफातिः ॥११॥
 वेश्याङ्गनामवकृतासवदोषसङ्गः
 सद्यर्मसौख्यसुमुह्यभ्रममशुप्रोक्ष ।

१. This line is dropped in ख. २. स्मरेणार्थ-ग, घ. ३. तपुकृतापतिः-
 व, घ. ४. ति बलविरहितः क-ग, घ. ५. शीघ्रगुणी वा-ग, घ.
 ६. The following sloka appears before this sloka.

सौभाग्यकान्तिमतिमानगुणाभयः स्यात्
 सत्युपसिद्धिरवनीपतिपूजनं च ।

संसारार्थसाधुवशाङ्गुतिरिति सिद्धिः

संसारार्थसाधुवशाङ्गुतिरिति स्वकीयम् ॥

अर्थव्ययोऽरिमयमक्षिजङ्क् सुतातिः

जैवीं दशां विशति देनकरे नराणाम् ॥२॥

स्त्रीद्युतमद्यमयहाव्यसनं विदोषैः

केचिद्वदन्त्यपि च केवलमङ्गनाप्तिः ।

देवद्विजार्चनसुतार्थसुखप्रयोगो

मीर्षाणपूजितदशाहति चन्द्रसूनी ॥३॥

शस्त्रव्रणं भवति भृत्यजनैर्विरोध-

रिक्तसव्यथा तनययोषिदुपद्रवश्च ।

प्राणच्युतिर्गुरुमुहज्जनविप्रमोक्तः

केतौ यदा विशति जीवदशा भवेद्वा ॥४॥

नानाविधार्थपशुधन्यपरिच्छदस्त्री-

पुत्राभयानशयनाम्बरभूषणाप्तिः ।

देवद्विजार्चनमुपासनतत्परश्च-

मायुर्यदा विशति जैवमन्त्रासुरेभ्यः ॥५॥

शत्रोर्जैयं क्षितिपमाननकीर्तिलाभः

स्वाच्छन्दता नरतुरङ्गमवाहनाक्षि-

श्रेष्ठ्यग्रहारपुंरराष्ट्रसमुत्थमभ्य-

दुच्चैस्तथ्यसहजायुरपाहृतेऽक ॥६॥

१. क्षियं सु-ग, घ. २. केचन अङ्गनाप्तिः केचन के सौर्व सु-ग

४. तौर्द्विजार्चनमुपासनतत्परश्च इति केतुः ॥ घ. इति तुरङ्गमवाहनाक्षि

१
योषिद्वहुत्वमरिनाशनमर्थलाभः
२
कृष्यर्थवस्तुपरस्मोषतकीर्तिलाभः ।
३
मन्त्रद्विजार्चनपरत्वमतीव पुंसां
सञ्जायते गुरुदशाहृति शर्वरीशे ॥७॥

बन्धूपतोषणमरिद्रजतोऽर्थलाभः
४
सुक्षेत्रसत्कृतिरिह प्रथितप्रभावः ।
५
ईषद्गुरूपहृतिरीक्षणसुक्षतिर्वा
क्षित्यात्मजे हरति बत्सरमार्यजातम् ॥८॥

बन्धूपतपतिरुमानसरुगदाति-
श्चोराद्भयं गरगदो जठरोद्भवो वा ।
राजेन्द्रपीडनमरिव्यसनं स्वनाशं
संपत्स्यते हरति सूरिदशां सुरारौ ॥९॥

६
इति गुरुदशाप्रकरणम् ।

मन्ददशाप्रकरणम् ।

रवितनयदशायां राष्ट्रवाटाग्रहार-
प्रतिजनितविभूतिः प्रेष्यवृद्धाङ्गनाप्तिः ।

-
१. शयनर्थ-ख; शमनर्थनास्तः-घ. २. This line is missing in ख;
कृष्यर्थ-ग. ३. सति-क. ४. सुक्षेत्र-ख. ५. दगुरुग्रह-घ.
६. This line is dropped in ख.

१
 पशुमहिषवृषाप्तिः पुत्रदारप्रपीडा
 २
 पवनकफगदातिः पादहस्ताङ्गतापः ॥१॥
 ३
 सुभगत्वमस्ति सुखिता वनिता
 नृपलालनं विजयमित्रयुतिः ।
 त्रिगदोद्भवः सहजपुत्ररुजा
 शनिदायहारिणि शशाङ्कसुते ॥२॥
 ४
 मरुदग्निपीडनमरिव्यसनं
 ५
 सुतदारविप्रहयुतिस्त्वथवा ।
 अशुभावलोकनमहेश्च भयं
 मृदुवत्सरापहति केतुपतौ ॥३॥
 सुहृदङ्गनातनयसौख्ययुतिः
 कृषितोययानजनिताथचयः ।
 शुभकीतिरुद्भवति देहभृतां
 ६
 यमदायहारिणि भृगोस्तनये ॥४॥

१. वधनाप्तिः ग, घ. २. ङ्गपातः ॥ ख, ग. ३. The following sloka appears extra in ms. घ.

कृषिवृद्धिभृत्यमहिषाभ्युदय-
 पवनामयो वृषलजातिधनम् ।
 स्थविराङ्गनाप्तिरलसत्वमखो

निजवत्सरात्तरगते रविजे ॥ सुभ-घ. ४. The sloka is dropped in
 ख. It is given in बुधदशाप्रकरणं by mistake. ५. तिः सततम् ।-घ.
 ६. शनिदा-घ.

मरणं तु वा रिपुभयं सततं
 गुरुवर्गम् जठरनेत्ररुजा
^१
 घनदारबिच्युतिरिह प्रभवेद्
 रविजायुराविशति तीव्रकरे ॥५१॥

^२
 अनिताहृतिर्मरणमेव नृणां
^३
 सुहृदां विपत्तिरतिरोगभयम् ।
 जलवातजं भयमतीव भवेद्
 रविजायुराविशति रात्रिकरे ॥६॥

स्वपदच्युतिः स्वजनविग्रहम्
 ज्वरबल्लिशस्त्रविषभीरथवा ।
 अरिवृद्धिरन्तरुगक्षिभयं
 त्विनजायुराविशति भूमिसुते ॥७॥

अपमार्गयानमसुभिर्विरहं
 स्वथवा प्रमेहगुरुगुल्मभयम् ।
^४
 ज्वरसुकृतिः सततमेव नृणा-

^५ ^६
 मसितान्तराविशति भोगिपती ॥८॥

-
१. नद्यान्यवि-घ. २. ताहृति-ग, घ. ३. ररिरो-घ. ४. रविक्ष-घ.
 ५. त्तरं वि-क. ६. देवगुरौ ॥-ग, घ.

अमरार्चनं द्विजगणामिरुद्धि-

गृहपुत्रदारविहतिस्तु भवेत् ।

धनधान्यवृद्धिरधिका हि नृणां

गतवत्यथाकिंवयसीन्दुगुरो ॥९॥

१ २

इति मन्ददशाप्रकरणम् ।

बुधदशाप्रकरणम् ।

शशितनयदशायाम् शश्वदाचार्यकधु-

द्विजजनितधनाप्तिः क्षेत्रगोधाजिलाभः ।

मनुभवसुरपूजा वित्तसंघातसिद्धिः

निपतति मरुदुष्णश्लेष्मरोगप्रपीडा ॥१॥

दुःखशोककलहाकुलत्वता

गात्रकम्पनमन्त्रिसंयुतिः ।

१. This line is dropped in ख. २. शविद-य, घ. ३. प्रियज-ग;
प्रतिज-घ. ४. तविभूतिः क्षे-ग, घ. ५. नुवरसु-ख. ६. संघोऽयवा-
न, घ. ७. रोगोद्भवो वा ॥ ८. The following sloka
appears extra in घ.

धर्ममार्गनिरतिविपश्चितां,

सङ्गमो विमलधीर्धनं द्विजात् ।

विद्यया बहुयशस्तुल्यं सदा

चन्द्रजे हरति कत्तरं त्यक्तम् ॥ दुःख-घ.

१ २
क्षेत्रधान्यवित्युतिर्यदा भवे-

३
चचन्द्रजन्मशरदागतः शिखी ॥२॥

देवविप्रगुरुपूजनक्रिया-

४
दानधर्मपरतासमागमः ।

वस्त्रभूषणसुहृद्युतिर्भवेद्

५
बोधनायुषि सिताहते सति ॥३॥

६
हेमविद्रुमतुरङ्गवारण-

प्राभृतं भवनमग्नयानयुक् ।

भूपतेरपि च पूजनं भवेद्

७
भानुमालिनि बुधाब्दकं गते ॥४॥

मस्तकव्यसनमक्षिपीडनं

८ ९
कुण्ठवद्रुबहुकण्डुपीडनम् ।

प्राणसंशययुतिर्नृणां भवेत्

१०
ज्ञायुराविशति शीतदीप्तिता ॥५॥

-
१. क्षेत्रधा-घ. २. वित्युति-घ. ३. Four lines beginning with this are dropped in ख. ४. मान-घ. ५. समाहते सिते-ख. ६. इततु-घ. ७. ब्रमाहते ॥ घ. ८. ण्डुवृषणम् । ग; र्जपी-घ. ९. The sloka which is missing in मन्ददशाप्रकरणम् is given here by mistake in ख. १०. युवं प्रवति-ख.

नृपकृतपरिपूजा युद्धलब्धप्रभावः
 परिजनघनधान्यश्रीमदन्तःपुरं च ।
 अतिविलसितवृत्तिः साहसादाप्तलक्ष्मी-
 स्तिमिरभिदि कुजायुर्दायसंहारिणीति ॥८॥

विविधधनसुताप्तिविप्रयोगोऽरिघर्गे-
 र्वसनशयनभूषारत्नसम्पत्प्रसूतिः ।
 भवति गुरुजनार्तिर्गुल्मपित्तप्रपीडा
 धरणि^१सुतदशान्तः संगते^२ शीतरश्मौ ॥९॥
 इति^३ कुजदशाप्रकरणम् ।

राहुदशाप्रकरणम् ।

असुरवरदशायामस्वभावोऽथवा स्या-
 दतिगहनगदार्तिः सूनुनार्योर्विनाशः ।
 विषभयमरिपीडा वीक्षणोऽर्धाङ्गारोगः
 सुहृदुदितविरोधो भूपतेर्द्वेषलाभः ॥१०॥

विषाम्बुरुदुष्टभुजङ्गदंशनं

पराबलासंयुतिरिष्टविच्युतिः ।

अरिष्टवाग्दुष्टजनप्रपीडा

विधुन्तुदेनापहृते स्ववत्सरे ॥११॥

१. गितनयवर्षं शीतगौ संप्रयाते ॥ छ; गिजवर्षान्तिः सञ्चरत्येव चन्द्रे ॥ घ.

२. ते रात्रिनाथे ॥ ग. ३. This line is dropped in छ.

४. This sloka appears only in घ.

सुखोपनीतिः सुरविप्रपूजने

विरोगता कामदृशां सन्मग्नः

सुपुण्यशास्त्रार्थविचारसम्भवः

सुरारिदायान्तरे बृहस्पती ॥३॥

समीरपित्तप्रगदः क्षतिस्तनू

तनूजयोषित्सहजंश्च विग्रहः ।

सुभृत्यनाशश्च पदच्युतिर्मवेत्

फणीन्द्रजायुः प्रविशत्यथार्कजे ॥४॥

सुतस्वलब्धिः स्वसुहृत्समागमो

मनोविनिव्रात्समतीव जायते ।

पटुक्रियाभाषणकौशलोदयो

भुजङ्गसंघस्तरहारिणीन्बुजे ॥५॥

ज्वराग्निशस्त्रारिभयं शिरोदजा

शरीरकम्पश्च सुहृद्गुणधरा ॥

१. सुखोपनीति-च. २. गकायः सुहृदो शि-च. ३. विवित्रजा-ग, घ.

४. सुभृत्यप्रतिदिः सुभृत्यः सन्मग्नो

५. प्रविशत्यथार्कजे तीक्ष्णभाषणे प्रविशति. ५. तस्य सिद्धिः च. ६. तसं

नृणां-ग, घ. ७. रिक्ततासुभोचनं-ग, घ. ८. स्वः स्वसु-च.

१
विषव्रणातिः कलहं सुहृज्जनै-

२
रहीन्द्रदायान्तरगे शिवागरे ॥३॥

३
सुतस्य लब्धिः सुदृशां समागम-

४
स्तुरंगमातंगमहोसमुद्भवः ।

कफानिलातिः स्वजनैर्विरोधिता

भवेद् भुजङ्गायुरपाहते भृंगी ॥७॥

अरिर्व्यथा स्यादतिपीडनं दृशो-

विषातिशस्त्राहतिरापकुद्वगमः ।

५
जायासुतातिर्नृपतेर्महद्भूय

विलेशयायुष्यहिमांशुना हते ॥८॥

बधूविनाशः कलहो मनोरुजा

कृषिक्रियावित्तपशुप्रजाक्षयः ।

६
सुहृद्विपत्तिः सलिलाद् भयं भवे-

द्विधौ दशां हर्तरि देवविद्विषः ॥९॥

१. कलं प्राप्ति विमूढता दृशो व, व.

२. दायं कश्चित्प्राप्ति-वृत्त व.

३. सुरस्वयं-ग; कलत्रलब्धिः शयनोपक्रमस्त-व.

४. समागमः-व.

५. जायासु-ग, व; नृपाद् भयं व स्वयमेव विद्विषः-व.

६. नृपाद् भयं व स्वयमेव विद्विषः-व.

वि-ग, व.

नृपाग्निचोरास्त्रभयं शरीरिणां
 शरीरनाशो यदि वा महारुजा ।
 पवन्नमो हृत्त्रयनप्रपीडनं
 यदास्ति सर्पायुषि सञ्चरेत् कुत्रे ॥१०॥

इति राहुदशाप्रकरणम् ।

गुरुदशाप्रकरणम् ।

अमरगुरुदशायामम्बरारधार्यतिष्ठिः
 परिजनपरिवारप्रौढिरत्यर्थमानः ।
 सुखसुतसुहृदाप्तिः साधुवादास्तपूजा
 भवति गुरुवियोगः कर्णरोगः कफातिः ॥११॥
 वेश्याङ्गनामदकृतासवदोषसङ्गः
 सद्धर्मसौख्यसुमुहुरभयमशुभोद्यमः ।

१. This line is dropped in *ख*. २. म्बरैर्गार्ध-*ग*, *घ*. ३. तसुकृताप्तिः-
ग, *घ*. ४. ति क्लृप्तिर्यः *ग*, *घ*. ५. शौचप्रदो वा-*ग*, *घ*.
 ६. The following sloka appears *अप* in *ख*, before this sloka.

सौभाग्यकान्तिमतिमानगुणाभयः स्यात्
 सत्युपतिष्ठिरवनीपतिपूजनं च ।

सौभाग्यकान्तिमतिमानगुणाभयः स्यात्

सत्युपतिष्ठिरवनीपतिपूजनं च ।

अर्थव्ययोऽरिभयमक्षिजङ्क् सुताप्तिः

जैवीं दशां विंशतिं दैनकरे नराणाम् ॥२॥

स्त्रीद्यूतमद्यज्ञमुहाव्यसनं विप्रोदः

केचिद्वदन्त्यपि च केवलमङ्गनाप्तिः ।

देवद्विजार्चनमुतार्थसुखप्रयोगो

मीर्वाणपूजितदशाहति चन्द्रसूनी ॥३॥

शस्त्रघ्नं भवति भृत्यजनैर्विरोध-

रिषसव्यथा तनययोषिदुपविवरच ।

प्राणच्युतिर्गुरुसुहृज्जनविप्रमोहः

केतो यदा विंशतिं जीवदशां भवेद्वा ॥४॥

नानाविधार्थपशुधन्यपरिच्छदस्त्री-

पुत्राभ्युपनिशयनाम्बरभूषणाप्तिः ।

देवद्विजार्चनमुपासनतत्परत्व-

मायुर्यदा विंशतिं जैवमन्त्रासुरेभ्यः ॥५॥

शत्रोर्जयं क्षितिपसाननकीर्तितानः

स्वयञ्चण्डता नरतुरङ्गमवाहनादिति ।

श्रेष्ठ्यग्रहारपुंरराष्ट्रसन्त्यसन्त्य-

दुर्चैस्तथ्यसहजायुरपाहतेऽक ॥६॥

१. निभयं सु-ग, घ. २. केचन अङ्गनाप्तिः केचन अङ्गनाप्तिः सु-ग

४. सौर्विजार्चनमुपाहृत्य स्वयं केतुः ॥ घ. देवद्विजार्चनमुपाहृत्य

१
योषिद्वहुत्वमरिनाशनमर्थलाभः
२
कृष्यर्थवस्तुपरम्प्राप्तकीर्तिलाभः ।
३
मन्त्रद्विजार्चनपरत्वमतीव पुंसां
सञ्जायते गुरुदशाहृति शर्वरीशे ॥७॥

बन्धूपतोषणमरिद्वजतोऽर्थलाभः
४
सुक्षेत्रसत्कृतिरिह प्रथितप्रभावः ।
५
ईषद्गुरूपहृतिरीक्षणसुक्षतिर्वा
क्षित्यात्मजे हरति वत्सरमार्यजातम् ॥८॥

बन्धूपतप्तिरुमानसरुगदार्ति-
श्चोराद्भयं गरगदो जठरोद्भवो वा ।
राजेन्द्रपीडनमरिव्यसनं स्वनाशं
संपत्स्यते हरति सूरिदशां सुरारौ ॥९॥

६
इति गुरुदशाप्रकरणम् ।

मन्ददशाप्रकरणम् ।

रवितनयदशायां राष्ट्रवाटाग्रहार-
प्रतिजनितविभूतिः प्रेष्यवृद्धाङ्गनाप्तिः ।

१. शयनर्थ-ख; शमनर्थनाशः-घ.

२. This line is missing in ख;

कृष्यर्थ-ग.

३. सति-क.

४. सुक्षेत्र-ख.

५. दगुरुग्रह-घ.

६. This line is dropped in ख.

नगरयूथपुरोद्वयपूजनं

प्रवरयोषिदवाप्तिरथास्ति च ।

विविधवित्तपरिच्छदसंप्रति-

दितिजपूजितदायगते शनौ ॥७॥

तनयसौरव्यधनागमसम्पदा ।

निचयलब्धिरतिप्रभूता यशः ।

पवनपित्तकर्फातिरथास्ति चे-

दसुरमन्त्रिदशाहति चन्द्रजे ॥८॥

तनयसौख्यबहिष्कृतिरतिजं

भयमतीव विनाशनमन्तरुक ।

भवति वारवधूजनसंयुतिः

शिखिनि यात्यलमोन्नतसौ दशाम् ॥९॥

इति भृगुदशाप्रकरणम्

॥१॥

१. अपीडनं-ग. २. तवत्तरगे श-घ. ३. नाशनस-ख, घ, च.
 ४. निचयलब्धिरतिप्रभूता यशः. ५. ससुरमन्त्रिदशाहति चन्द्रजे
 ends here. ६. भयमतीव विनाशनमन्तरुक. ७. ॥ शिखिनि यात्यलमोन्नतसौ दशाम्

१

दशापहारेषु फलं यदुक्तं

वर्णाधिकारानुगुणं वदन्तु ।

छिद्रासु सूक्ष्मेष्वपि तत्फलान्तिः

छायाङ्कुवार्ताश्रवणानि वा स्युः ॥

इति कथितमुडूनामायुरग्न्यादिकानां

फलमपि सदसद्यन्मिश्रितं च ग्रहाणाम् ।

युवतिषु फलमेतद्युक्तमप्यत्र वाच्यं

पतिषु वदति सर्वं जातिदेशानुरूपम् ॥

२

द्विजेन केनाप्युडुजातकोदयं

कृतं च वेणाटिकदेशजन्मना

त्रयाधिकश्लोकशतेन निर्मितं

हिताय तज्जातकसारवेदिनाम् ॥

सर्वोक्तं नृपतिविशो-

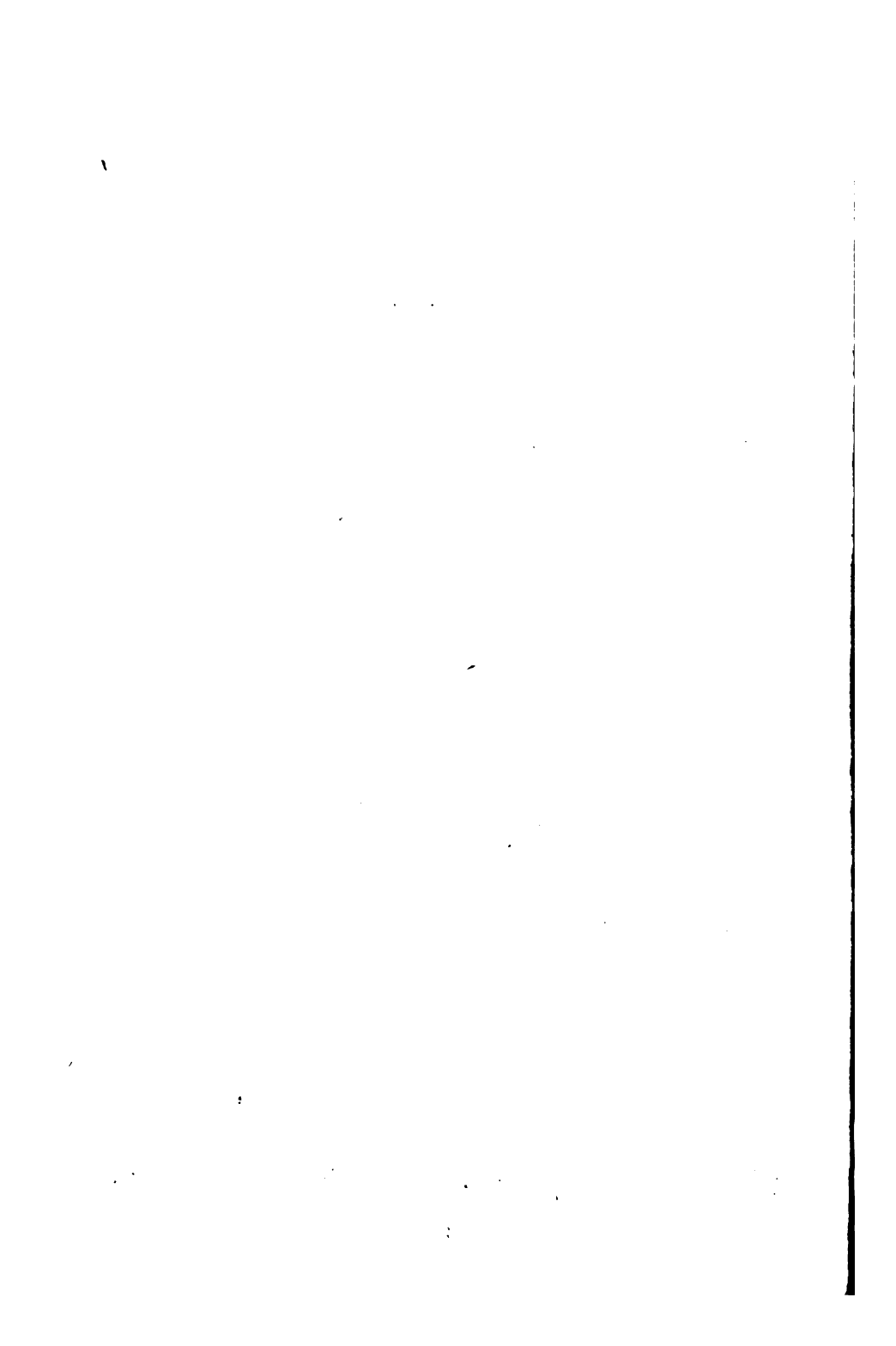
स्तदर्थफलमाह विप्रमुख्येषु ।

अन्येषु जन्तुषु गुणाः

पुरुषविशेषात् प्रबोद्धव्याः ॥

उडुजातकम् समाप्तम् ।

१. This sloka is dropped in—क. २. यम् । Ms.—क and ख end here.



कृत्यरत्नावली

रामचन्द्रविरचिता

नमस्कृत्य रमानाथं भट्टबिठ्ठलसूनुना ।

कृत्यरत्नावली रम्या रामचन्द्रेण रच्यते ॥

तत्र "तिथिकृत्ये तु कृष्णादि व्रते शुक्लादिभेद च" इति वचनात्
चैत्रकृष्णप्रतिपदमारभ्य तिथिकृत्यान्युच्यन्ते । तत्र चैत्रकृष्णप्रतिपदि
कृत्यविशेषः पञ्चपुराणे—

चैत्रे मासि महाबाहो ! पुण्या प्रतिपदा परा ।

तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥

न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाघयो व्याधयो नृप ! ।

भवन्ति कुरुशार्दूल ! तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥

Mss. utilised for this publication:— (1) Reg. no. 7448—क.

(2) „ 7264—ख.

(3) „ 6974—ग.

(4) „ 1716—घ.

First two folios of Ms. ग are missing and the work begins only from (नमो न) "मस्ते काष्ठाये कलाये" etc. in page No. 4. line 11.

1. तन्यते—ख. 2. बु—ख. 3. शुक्ल—क. 4. नृपशा—ख.

a. In Ms. घ the portion from "चैत्र" (Page No. 1) to "सर्वसिद्धि-प्रवर्तकः" (Page No. 8) is found missing. It has only the following line:— तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि संवत्सरारम्भविधिस्तत्र.

दिव्यनीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम् ।
गोमहिष्यादि यत्किञ्चित्तत्सर्वं भूषयेन्नृप ! ॥

तैलवस्त्रादिभिः सर्वास्तोरणाधस्ततो नयेत् ।
ब्राह्मणानां ततो भोज्यं कुर्वति कुलकुलोत्तम ! ॥

इति । अत्र प्रतिपदौदयिकी ग्राह्या “प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते
रवी” इति भविष्योत्तरादिति केचित् । होलिकादीपनाव्यवहितोत्तरदिनं
ग्राह्यमिति युक्तम् । अत एव वृद्धवसिष्ठेन पूर्वापि विहिता—

वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।
पूर्वविद्वेद कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥

इति । अत्र तैलाभ्यंगो नित्यः ।
वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।
तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ।

इति वृद्धवसिष्ठवचनात् ।
चैत्रकृष्णद्वादशी वैराजकल्पादिः ।

चैत्रकृष्णत्रयोदशी शतभिषायुता वारुणी । तत्र गङ्गास्नानं महाफलम् ।
तदुक्तं स्कान्दे—

वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णत्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥

इति । इयमेव शनिवारयोगे महावारुणी । शुभयोगयोगे महामहावारुणी
महाफला च । तथा च तत्रैव,

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी मता ।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥

-
1. कोटीप-ख. 2. सूर्योगे-ख. 3. स्मृ ख.

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।
महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुदरेत् ॥

इति । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां कृत्यविशेषः पुराणसमुच्चये-

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।
गंगायां च विशेषेण स न प्रेतोऽभिजायते ॥

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामङ्गारकदिनं यदि ।
पिशाचत्वं पुनर्न स्यात् गङ्गायां स्नानभोजनात् ॥

भोजनं जलपानम् । चैत्रामावास्या मन्वादिः । "फाल्गुनस्य त्वमावास्ये"ति
भात्स्यात् । अत्र फाल्गुनशब्दोऽमान्तमासाभिप्रायेण । स च श्राद्धे अपराह्णिकी
ग्राह्या, कृष्णपक्षगतत्वात् इति । तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि संवत्सरारम्भविधिः ।
तथा च कल्पतरौ ब्रह्मपुराणे—

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ।
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ॥

ततः प्रवृत्तो यो धर्मः पुत्रैः पूर्वतरैः कृतः ।
अद्यापि गूढः सुतरां कर्तव्योऽसौ प्रयत्नतः ।

तत्र कार्या महाशान्तिः सर्वकल्मषनाशिनी ।
सर्वोत्पातप्रशमनी कलिदुःखप्रणाशिनी ॥

आयुःप्रदा पुष्टिकरी धनसौभाग्यवर्धनी ।
मङ्गल्या च पवित्रा च लोकव्यसुखावहा ॥

यस्यामादौ च संपूज्यो ब्रह्मा लोकप्तिमहः ।
पादार्घ्यपुष्पधूपैश्च वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥

होमैक्युपचारैश्च तथा ब्राह्मणतर्पणः ।

तथा क्रमेण देवेभ्यः पूजा कार्या पृथक् पृथक् ॥

देवेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यः कालादिभ्यः ।

कृत्वोद्धारं नमस्कारैः कुशोदकतिलाक्षतैः ।

बुष्पधूपप्रदीपैश्च भोजनैश्च यथाक्रमम् ॥

नमस्कारैः कृत्वा ॐ ब्रह्मणे नमः इत्यादि,

मन्त्रैश्च पूजनार्थं तु चरुरूपं पचेत्ततः ।

ॐ नमो ब्रह्मणे तुभ्यं कालाय च महात्मने ।

नमस्तेऽस्तु निमेषाय त्रुटये च नमोऽस्तु ते ।

लवाय न नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु क्षणाय च ॥

नमो नमस्ते काष्ठायै कलायै चाथ सर्वदा ।

नाडिकायै सुषुम्नायै मुहूर्ताय नमो नमः ॥

नमो निशाभ्यः पुष्येभ्यो दिवसेभ्यश्च नित्यशः ।

षक्षाभ्यां चाथ मासेभ्य ऋतुभ्यः षड्भ्य एव च ॥

अयनाभ्यां च पञ्चभ्यो वत्सरेभ्यश्च सर्वदा ।

पञ्चभ्यो वत्सरेभ्यः—संवत्सरपरिवत्सरेदावत्सरेद्वत्सरेवत्सरेभ्यः ।

नमः कृतयुगादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च तथैव च ॥

अष्टाविंशतिसंख्येभ्यो नक्षत्रेभ्यो नमो नमः ।

अभिजिता सहाष्टाविंशतिसंख्यात्वम् ।

राशिभ्यः करणेभ्यश्च व्यतीपातेभ्य एव च ॥

1. स्तेभ्यः—ह. a. The line is omitted in ह. 2. नमो नमः—ह.

3. हय—ग.

प्रतिवर्षाधिपेभ्यश्च विज्ञानेभ्यो नमः सदा ।

नमोऽस्तु कुलनागेभ्यः सानुयानिभ्य एव च ॥

1
सानुयानिभ्यः—सारथिवरेभ्यः ।

नमश्चतुर्दशभ्यस्तु मनुष्यभ्य पुनः पुनः ।

नमः पुरन्दरेभ्यश्च तत्संख्येभ्यो नमो नमः ॥

2
तत्संख्येभ्यश्चतुर्दशसंख्येभ्यः ।

पञ्चाशते नमो नित्यं दशकन्याभ्य एव च ।

नमोऽदित्यं सुव्रतायै जयायै च सर्वदा ॥

कुशाश्राय नमस्तुभ्यं सर्वस्तिजनेभ्यो च ।

नमोऽस्तु बहुपुत्राय पत्नीभिः सहितार्यै च ॥

नमो बृहथे तथा ऋद्धयै निद्रायै धनदाय च ।

नलकूबरयक्षाय गुह्यकल्पजिने नमः ॥

नमोऽस्तु शंखपद्माभ्यां निधिभ्यामपि नित्यशः ।

भद्रकाल्यै नमोऽस्मिन् सुख्यै च नमो नमः ॥

वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्याभ्यामेभ्य एव च ।

नागयक्षसुपर्णेभ्यो नमोऽस्तु गरुडाय च ॥

अरुणाय नमस्तुभ्यं सप्तदीपेभ्य एव च ।

सप्तभ्यश्च समुद्रेभ्यः सागरेभ्यश्च सर्वदा ॥

1 तु-न a. This line is omitted in Ms. c.

b These lines are omitted in Ms. c.

उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च नमो हैरम्बनाय च ।

भद्राश्वकेतुमालाभ्यां नमः सर्वत्र सर्वदा ॥

इलावृताय च नमो हरिवर्षाय चैव हि ।

नमः किंपुरुषेभ्यश्च भारताय नमो नमः ॥

नमो भारतदेवेभ्यो नागेभ्यश्चाथ सर्वदा ।

पातालेभ्यश्च सप्तभ्यो नरकेभ्यो नमो नमः ॥

कालाग्निरुद्रशेषाभ्यां हरये क्रोडरूपिणे ।

सप्तभ्यस्त्वथ लोकेभ्यो महाभूतेभ्य एव च ॥

तमसे रजसे चैव नमः प्रकृत्य^१स्तथा ।

पुरुषायाभिमानाय नमोऽस्त्यव्यक्तमूर्तये ॥

हिमवत्पुरुषेभ्यश्च पर्वतेभ्यो नमः सदा ।

पुराणीभ्यश्च गंगाभ्यः सप्तभ्यश्च नमो नमः ॥

नमोऽस्त्वद्यतनीभ्यश्च सप्तभ्यश्चाथ सर्वदा ।

नमोऽस्तु पुष्करादिभ्यस्तीर्थेभ्यश्च पुनः पुनः ॥

निम्नगाभ्यो नमो विष्यं विस्तस्ताद्याभ्य एव च ॥

चतुर्दशभ्यो देवेभ्यो वीरणेभ्यो नमो नमः ॥

नमो धात्रे विधात्रे च नमो भूयो नमो नमः ।

नमोऽस्तु धन्वन्तरये शस्त्रास्त्राभ्यां नमः सदा ॥

१. सदा न.

२. ने ख.

३. नः सदा-ख.

४. वि ख.

५. नः

६. सदा-न.

७. नः सदा-न.

विनायककुमाराभ्यां विष्णोभ्यश्च नमः सदा ।

² शिखाय च विशाखाय वैष्णवाय च वै नमः ॥

नमः स्कन्दग्रहेभ्यश्च स्कन्दमातृभ्य एव च ।

ज्वराय रोगपतये भस्मप्रहरणाय च ॥

ऋषिभ्यो बालखिल्येभ्यः काश्यपाय नमः सदा ।

अगस्तये नारदाय व्यासादिभ्यो नमो नमः ॥

अप्सरोभ्यः सोमपेभ्यो देवेभ्यश्च तथा नमः ।

असोमपेभ्यश्च नमस्तुष्टिभ्यो नमः सदा ॥

आदित्येभ्यो नमो नित्यं द्वादशभ्यश्च सर्वशः ।

एकादशभ्यो रुद्रेभ्यः सगणेभ्यो नमो नमः ॥

दशभ्यो विश्वदेवेभ्यः पुण्येभ्यश्च नमः सदा ।

नमो वसुभ्यस्त्वष्टभ्यो नमो ज्येष्ठेभ्यश्च एव च ॥

द्वादशभ्यो भृगुभ्यश्च नमः सर्वज्ञ सर्वदा ।

दशभ्यस्त्वज्जिरेभ्यश्च तपस्विभ्यो नमो नमः ॥

नमो नासत्यदत्ताभ्यामश्विभ्यां नित्यमेव हि ।

साध्येभ्यो द्वादशभ्यश्च पुराणेभ्यो नमः सदा ॥

एकोनपञ्चाशद्भ्योऽथ मरुद्भ्यश्च नमः सदा ।

शिल्पाचार्याय देवाय नमस्ते विश्वकर्माणे ॥

१. विनायक-क. २. शिखाय च विशाखाय-ग. ३. नमः सदा-ग. ४. नमः
शिखाय च. ५. शिखाय च. ६. शिखाय च. ७. शिखाय च. ८. शिखाय च.

अष्टम्यो लोकपालेभ्यः सायुधेभ्यश्च सर्वदा ।

आयुधेभ्यो वाहनेभ्यो धर्मेभ्यश्च नमः सदा ॥

आसनेभ्यो दुदुभिभ्यो देवीभ्यश्च नमः सदा ।

दैत्यराक्षसगन्धर्वपिशाचेभ्यश्च नित्यम् ॥

पितृभ्यः सप्तभेदेभ्यः प्रेतेभ्यश्च नमः सदा ।

सुसूक्मेभ्यश्च देवेभ्यो भागवतेभ्य एव च ॥

नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने ।

अथ किं बहुनोक्तेन; मन्त्रेणानेन चार्चयेत् ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाग्निं देवानुद्दिश्य पूर्ववत् ।

अर्चः पुष्पैश्च दीपैश्च तस्मैर्गुण्यैश्च धूपनैः ॥

घनधान्यान्नविभर्षेद्वैश्वदेवाभिश्च सर्वदा ।

अथवा किं विस्तरेण, विप्रानेव देवतर्हि शिवा पूजयेदित्यर्थः ।

इतिहासपुराणाभ्यां प्रवक्तृश्च द्विजोत्तमान् ॥

इतिहासपुराणाभ्यां तत्पुस्तकद्वयानेनेत्यर्थः ।

कालज्ञानं देवदेवज्ञानं भृत्यान् सम्बन्धिवान्धवान् ।

अनेनैव तु मन्त्रेण स्वाहात्तेन पूयक् पूयक् ॥

1. द-घ. 2. दुदुभि-क, घ. 3. देवभ्य-क. 4. देवैर्गुण्यैश्च

5. घू-घ. a. This line is omitted in Mss. B and C. 6. धूपनैः

पुरतश्च-क; यस्मान् पुरतश्च-ग. b. This line is found only in C.

यविष्ठायाग्नये होमः कर्त्तव्यः सर्वतृप्तये ।
वेदवच्चाहुतिं दत्त्वा स्थाने प्राधानिके सति ॥

^a प्राधानिके स्थाने — प्रधानहोमारम्भे ।

वेदवत् — वेदेतिकर्त्तव्यतायुक्ताम् ।

आत्मशोभा ततः कार्या मङ्गलालम्भनं तथा ।
भोजयित्वा द्विजान् सर्वान् मुनीन् सम्बन्धिबान्धवान् ।

विशेषण तु भोक्तव्यं, कार्यश्चापि महोत्सवः ।
नवसंवत्सरारम्भे सर्वसिद्धिप्रवर्त्तकः ॥

² इति । तत्र प्रतिपदौदयिकी ग्राह्या ।

³ चैत्रमासे जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ।
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ॥

इति ब्रह्मपुराणात् । दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शं वा पूर्वैव,

⁴ वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।
तैलाभ्यंगमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

⁵ इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः । अस्य मलमासत्वे तत्रैव संवत्सरारम्भः । ^b तस्या
एव संवत्सराद्यतिथित्वात् । अत्र तैलाभ्यंगो नित्यः, “वत्सरादौ वसन्तादा” इति
वृद्धवसिष्ठवचनात् । अत्रैव नवरात्रारम्भः । अत्र मलमासपाते तु सत्कर्षः ।

1. हुत्वा-ग. 2. This line is found only in g. 3. अ-ग.

3. वे मासि-ख. 4. स्तादाविति वसि-क, ग; स्तादाविति वृद्धवसि-ख.

5. कृष्णपक्षे-क. 6. तत्त्व.....नवरात्रारम्भः :- omitted in g.

c. Omit.ed in क, ख and ग.

अत्र प्रपादानमुक्तं भविष्यपुराणे—

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे ।

² पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत् ॥

इति । तत्र मन्त्रः—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपदिता ।

अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः ॥

इति । तत्रैव,

अविचार्य ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ।

तथा, प्रपां दातुमशक्तेन विशेषात् धर्मलिप्सुना ।

प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।

ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।

तत्र मन्त्रः,

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः ॥

^a अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ।

प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ॥

इति । इयं श्वेतकल्पादिः । अत्र श्राद्धादि महाफलम् ।

^b इति त्रिशदमी कल्पा स्थितयः परमेष्ठिनः ।

आरंभतिथयस्तापु शुक्लाः पुण्यतमा मताः ॥

1. विष्णुपु—क. 2. व्याहे—क. ३. अनेन.....नापरचरितम् (P. 211)

Omitted in च.

b. This line is omitted in म.

तसु श्राद्धे कृते पुण्यमाकल्पस्यायि कल्पते ।

¹ इति पूर्वोदाहृतनागरखण्डात् ।

² चैत्रशुक्लतृतीयायामिश्वरयुतां गौरीमान्दोलयेत् संपूज्य । तथा च देवीपुराणे—

तृतीयायां यजेद् देवीं शङ्करेण समन्विताम् ।

कुंकुमाभक्ष्यैर्मणिवस्त्रमुगन्धकैः ॥

स्रग्गन्धधूपदीपैश्च ^{*} दमनेन विशेषतः ।

आन्दोलयेत्ततो वत्स ! शिवोमातुष्टये सदा ॥

रात्रौ जगरणं कार्यं प्रातर्देया च दक्षिणा ।

हेमवस्त्रान्नपानादि ताम्बूलानि स्रजस्तथा ॥

⁴ इति । मूर्तिस्वरूपमुक्तं देवीपुराणे—

⁵ सौवर्णीं तु उमा कार्या राजतः शङ्करस्तथा ।

चतुर्भुजस्तु देवेशोः द्विभुजा तु उमा भवेत् ॥

इति । इयं मुहूर्तमात्रापि परा कार्या गौरीदैवत्यत्वात् । इयं च मन्वादिः ।

⁷ शुक्लपक्षगतत्वात् कुतपपूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या । हेमाद्रिस्तु,

पूर्वाह्ने तु सदा ग्राह्या शुक्ला मनुयुगादयः ।

दैवकर्मणि पितृये च कृष्णो चैवापराह्निकः ॥

1. इति नागर-क, ख. 2. यां कृत्यं देवीपुष्पे-ग. 3. दे-ग.

4. चं दे-ख. 5. जे-क, घ. 6. तस्तु हरस्तथा-घ. 7. त्वात् पूर्वाह्न-घ.

अत्रात्.....प्राह्णेयम्—omitted in Mas. k and g. 7. त्वात् पूर्वाह्न-घ.

* a kind of flower.

इति गालववचनात् पौर्वाहिकी ग्राह्येत्याह । सा च श्राद्धे अपराह्णव्यापिनी
ग्राह्या, स्नानदानादावुत्तरा । अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—

कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु ।

हायनानां द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत् ॥

इति । अधिकमासेऽपीदं कर्त्तव्यम् “मन्वादिकं तैथिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि
च” इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः । अत्र पिण्डदानं नास्ति । तथा कालादर्शे,

विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु ।

विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥

इति । एतदकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं ऋग्विधाने—

त्वं भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् ।

मन्वादयो यदा न्यूनाः कुस्ते नैव वा यदि ॥

इति । एवं षण्णवतिश्राद्धान्यपि नित्यानि । तेषामयं संग्रहः—

१२ १४ ४ १२ १२ १६

अमामनुयुगक्रान्तिव्यतिपातमहालयाः

४ ४ ४ १४

अन्वष्टक्यं च पूर्वेषुः षण्णवत्योऽष्टकास्तथा ।

इयि । इयमेव चैतशुक्लतृतीया मत्स्यजयन्ती । चैत्रशुक्लपञ्चमीत्यन्ये । आषाढ-
शुक्लैकादशीत्यपरे । इयं च मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । तदुपासकानां च
नित्या । अन्येषां काम्या ।

१ सा च नावावसरा omitted in Ms. छ and घ. 1. मत्स्योपनिषद्-छ.

2. इयं चापिण्डकम्-ग. 3. तु-घ. b. तथा ... समाचरेत् omitted in Ms. ब. 4. Numbers are found only in Ms. क. 5. “इयमेव”

is omitted in Ms. छ and घ. 6. च तृती क, न.

चैत्रशुक्लपञ्चमी¹ कल्पादिः । अत्र स्नानादि महाफलम् । अस्यामेव
श्रीपूजोक्ता² हेमाद्रौ—

चैत्रशुक्लस्य पञ्चम्यां पूजायित्वा तथा श्रियम् ।
सकृदेवाप्नुयादेतत्फलं संवत्सरोद्भूयम् ॥

इति । चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः । तत्र भवानीयात्रोक्ता काशी-
खण्डे—

भवानीं वस्तु पश्येत् शुक्लाष्टम्यां³ मघी नरः ।
न जातु शोकं लभते सदानन्तमयो भवेत् ॥⁴

इति । अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं लैङ्गे—

अशोककालिकाभ्राष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न सै शोकमवाप्नुयुः ॥

पुनर्वसुयोधो नावश्यकः, किन्तु प्राशस्त्यातिशयार्थः ।

तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् ।
तस्मात् तिथिं प्रशंसन्ति न नक्षत्रं तिथिं विना ॥

इति ज्योतिःशास्त्रात्⁵ तथा तिथितत्त्वे स्कान्दे—

मीने मघौ शुक्लपक्षे⁶ अशोकपक्षे तथाष्टमी ।

पिबेदशोककलिकाः स्नायाल्लीहित्यवारिणि ॥⁷

1. म्यां श्रीपूजोक्ता—क, ग. 2. जा हे—ख, घ. 3. घोरं—द. 4. पुतो—ख.

5. तथा तिथितत्त्वे.....शोकपक्षे—omitted in Mss. ग and घ.

6. म्यां—क. 7. कां—ख.

इति मन्त्रेण व्रतं निवेद्याचम्य प्राणानीयम्य संकल्पं कुर्यात् । तत्र
संकल्पमन्त्रः—

उपोष्ये नवमीं त्वद्य धार्मिष्वष्टसु राघव ! ।

तेन प्रीतो भव त्वं भोः संसारात् दाहि मां हरे ! ॥

इति । ततः

कोमलाङ्गं विशालाक्षभिन्द्रमीलसमप्रभम् ।

दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् ।

पार्श्वे भरतशत्रुघ्नी तालवृन्तकरावुभौ ॥

अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकाक्षिणम् ।

इति ध्यात्वा रामप्रतिमासमीपे षट्कोणमध्ये कौसल्या दशरथं च पूजयेत् ।
षट्कोणेषु “शं हृदयाय नमः” इत्यादिरूपेण हृदयानि षट् । षट्कोण-
बाह्याष्टदलकमलमूलेषु हनूमन्तं सुग्रीवं भरतं विभीषणं लक्ष्मणं अङ्गदं
शत्रुघ्नं जाम्बवन्तं च, दलमध्येषु धृष्टि, जयन्तं, विजयं सुराष्ट्रं, राष्ट्रवर्धनं,
अकोपं, धर्मपालं, सुमन्तं च पूजयेत् । दलाग्रेषु पूर्वादिक्रमेण अष्टौ
लोकपालान्, तदग्रे व्रजं शक्तिं दण्डं खड्गं पाशमङ्कुशं गदां, शूलं चेति तेषां
आयुधानि च पूजयेत् । रामपूजार्था मूलमन्त्रः, इदं विष्णुरिति वा, ॐ
रामाय नमः इति नाममन्त्रो वा ।

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव नैऋतो वरुणोऽनिलः ।

कुवेर ईशो ब्रह्मादिदिक्पालाः स्नापयन्तु ते ॥

1. अथ संकल्पमन्त्रः—

2. तत्र मन्त्रः—

3. वा तस्मादेव च—

4. प्रपूजयेत्—

इति स्नाने मन्त्रः ।

रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत् ।

अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोज्स्तु ते ॥

इति कौसल्यापूजायाम् । ॐ नमो दशरथाय इति दशरथपूजायाम् ।
अन्येषां नाममन्त्राः ।

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ

लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि ।

निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मध्यादयोध्यारणे-

राविभूतमभूतपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः ॥

इति । मध्याह्ने जन्मभावना वाद्यादिवादनं च । पुष्पाञ्जलेः पूर्वं फलपुष्पाम्बु

अशोकरत्नतुलसीदलयुक्तं शंखं गृहीत्वार्घ्यं दद्यात् । तत्र मन्त्रः-

दशाननवधार्थयि धर्मसंस्थापनाय च ।

राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥

परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ।

गृह्णात्वर्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोज्ज्वलः ॥

इति । ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । रात्रौ जागरणं कृत्वा परदिने होमं

कृत्वा प्रतिमादानं कुर्यात् । प्रतिमादानमन्त्रस्तु,

-
1. मन्त्रेण स्नानम्-ख; स्नानमन्त्रः-ग. 2. पूजनम्-ख. 3. दिने-क.
4. कतु-ख. 5. स्तेन शंखेनार्घ्यं-ग. 6. ध्वं-ख. 7. रक्षणाय-घ.
8. गृह्णानार्घ्यं-ख. 9. तो मम-क, ग. 10. ततः....कुर्यात्-Omitted in घ.
10. नो दद्यात्-ग. 11. तत्र मन्त्रस्तु-क, ग; तत्र मन्त्रः-ख.

इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ।

चित्रवस्त्रयुगच्छत्रां रामाहं राघवाय ते ॥¹

श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः, । इति ।

ततो भूमिं दक्षिणां दद्यात् ।

इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् ।

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

²
इति वचनात् ।

³
चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।

आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥⁴

⁵
इति । चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः—

द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ।

बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्त्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥

इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । अत्र पारणाहर्विवक्षितम् ।

पारणाहेन लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् ।

तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥

⁶
इति तत्रैकोक्तेः । नित्यम् चेदम् ।

ॐ व्रतं मघी दोलां श्रावणे तन्तुपूजनम् ।

⁷
चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥

-
1. तुष्टये दास्ये प्रीतो न-घ. 2. इति । चै-ह, ख, घ. 3. श्रीरामायणं
त्रा-घ. 4. नः-घ. 5. वक्तव्यं रामार्चनचन्द्रिकायाम्-घ. 6. कोक्तेः-घ.
7. पतत्य-घ.

इति ¹पद्मपुराणात् । इदं ²शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।

उपाकर्मोत्सर्जनं च ³पवित्रं दमनार्पणम् ।

ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्त्तनम् ॥

कुर्याच्छुक्रस्य च ⁴गुरोर्मोहयेऽपीति विनिश्चयः ।

इति वृद्धगार्ग्यवचनात् ।

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् । तत्र पूर्वा ग्राह्या । अस्यामेव मदनपूजोक्ता कूर्मपुराणे—

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां ⁵मदनं चन्दनात्मकम् ।

कृत्वा संपूज्य यत्नेन वीजयेद् व्यजनेन च ॥

ततः संघुक्षितः कामः पुत्रपौत्रसमृद्धिदः ।

इति । इयमुदानकल्पादिः । चैत्रशुक्लचतुर्दशी ⁶दमनकारोपणे रात्रियोगिनी पूर्वा ग्राह्या ।

“मघोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी ।

सा रात्रिव्यापिनी ⁷ग्राह्या परा पूर्वाह्णगामिनी” ॥

इति बोधायनोक्तेः चैत्री पौर्णमासी सामान्यनिर्णयात्परैव । पौर्णमास्यां

⁹कृत्यविशेषो विष्णुस्मृतौ—“चैत्री चित्रायुता चेत् स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति” इति । तथा ब्राह्मे—

मन्दे चार्कं गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रकी ।

तत्राश्वमेधजं ¹⁰पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्भवेत् ॥

1. पापात्-घ. 2. तथा शु-ग. 3. त्रय-क, ग, घ. 4. पि च-ङ.

5. चैत्र..... कूर्मपुराणे-omitted in Mss. क. and ग. 6. चैत्र-ङ, ग.

7. ग्राह्या इति बोधायनवचनात्-क, ख, घ. 8. चैत्रपौर्णमास्यां

कृत्यविशेषो विष्णु-क; चैत्रीकृत्यं तु विष्णु-ग. 9. अत्र वि-घ.

10. दानादि-घ.

वायवीये—

संवत्सरकृत्तार्चायाः साफल्ययाखिलान् सुरान् ।

दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम् ॥

अत्र परा ग्राह्या । “सावित्रीव्रतमन्त्रेण अवतोऽमापूर्णमास्ये परे” इति दीपिकोक्तेः । इयं मन्वादिः । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषमाहु पुलस्त्यः—

चैत्रे कृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।

न प्रेतत्वमवाप्नोति गयायां तु विशेषतः ॥

इति । अत्र पूर्वा ग्राह्या कृष्णपक्षगतत्वात् ।

इति कृत्यरत्नावल्यां चैत्रकृत्यानि ॥

अथ वैशाखकृत्यम् ।

²
पाद्ये—

तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् ।

दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥

³
माघवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ।

अथ वैशाखस्नानं विष्णुस्मृतिपाद्ययोः—

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥

⁴
इति । अत्र सौरमास उक्तः । अन्यदपि पक्षद्वयमुक्तं पाद्ये—

⁵
मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ।

पञ्चदश्यां च भो वीर ! मेषसंक्रमणेऽपि वा ॥

1. चैत्रकृत्यानि—क, ग; चैत्रकृत्यम्—ख. 2. Omitted in Ms. ख. 3. कुर्वीत

ग. 4. पक्षान्तरं पाद्ये—ग. 5. स्यां विशेषतः—ख.

वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात् संकल्पपूर्वकम् ॥

इति । तत्र मन्त्रः—

वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः ।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ।
निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ॥
माघवे मेषगे भानी मुरारे ! मधुसूदन ! ।
प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् ॥

इति । तीर्थानामपरिज्ञाने तत्रैव—

यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः ! ।
तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥

अत्र त्रिकालं विष्णुपूजा कार्या अश्वत्थमूले जलदानं च इत्यादि
तत्रैवोक्तम् ।

अशक्तस्य व्यहं स्नानमुक्तं पाद्ये—

तयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां च दिनत्रयम् ।
अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥

प्रातःस्नातः सुनियतः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

इति । यदा तु वैशाखो मलमासस्तदा समाप्तिः शुद्धमासे पूर्णिमायां कार्या ।

1. कार्ये-क. 2. कुर्यात्-क. 3. च अ-न. 4. कर्तं प्रति पाद्ये-न.
5. स्नाने स्ना-क. 6. अस्य मलमासे समाप्तिः-न. 7. यदा वै-क.
8. ज्ञाने-न. 9. कर्तव्या-न.

तथा—

वैशाख्यां विधिवत् स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश ।

कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति । वैशाख^bकृष्णप्रतिपद् नारसिंहकल्पादिः । त्रयोदशी गौरीकल्पादिः ।

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षयतृतीया । इयं गौरीव्रते उत्तरा कार्या ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ! ।

अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् । गणो गणेशस्तेन लक्षणया तदेवत्या चतुर्थी² ।

द्वितीयया तु या विद्धा तृतीया न कर्त्तव्या ।

कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात ! धर्मकामार्थतत्परैः ॥

इति स्कन्दपुराणे द्वितीयाविद्वानिषेधान्च । निषेधप्रयोजकश्च अत्र द्वितीयावेधो³
न त्रिमुहूर्त्तात्मकः, किन्तु कलाकाष्ठादिरूपोऽपि । अत एव तृतीयापि

गौरीव्रते स्वल्पापि परा ग्राह्या । व्रतान्तरेषु त्रिमुहूर्त्तद्वितीयावेधेन त्याज्यत्वं,⁴

द्वितीयदिने त्रिमुहूर्त्ताया एव ग्राह्यत्वमित्यादि अन्यत्र मत्कृतो द्रष्टव्यम् ।⁵

यदा तु चतुर्थीयुता किञ्चिदपि न लभ्यते तदा गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्तालाभे च⁶
इतरव्रतेष्वपि द्वितीयाविद्धापि ग्राह्या,⁷

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।⁸

पूर्वविद्धापि कर्त्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ॥

a. तथा, वैशाख्यां ... नात्र संशयः इति—Omitted in क. b. From

“वैशाखकृष्ण” (P. 22) to “व्रतान्तरेषु लभेत” (P. 25)—Omitted in Ms. प.

1. परा-ग. 2. गणेशदेवत्या-ग. 3. कः कलाकाष्ठादिरूपोऽपि हेव-ग.

4. सि प्रा-क. 5. त्रयोदशी-क. 6. परत्रि-ग. 7. त्रयोदशी-ग. 8. चतुर्थी-क.

गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्तसंख्ये च व्रतान्तरे द्वितीया-ग. 9. चतुर्थी-क.

इति कृदवशिष्टवचनम् । इयं च ज्ञेतास्तुतिः । तत्र भासः नित्यं कास्यं च ।
 युगाद्यादित्युपक्रम्य,

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

इति विष्णुपुराणान्व । “युगादयः स्मृताः होताः पितॄणां तृप्तिहेतवः” इति
 मत्स्यपुराणान्व । इयं श्राद्धे अपसृष्टव्यापिनी ग्राह्या तस्यापराह्णकालत्वात् ।
 कालव्याप्तिशास्त्रस्य च सवपिभ्यम् बलवत्त्वात् । अत एव अमावास्या-
 श्राद्धनिर्णयमुक्तवोक्तं कालादर्थम्—

एवं मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः ।

महालयस्य पक्षस्य अष्टकानामपि स्मृतः ॥

इति । मनुः

द्वे शुक्ले द्वे तस्मा कृष्णे युगादी कृष्णो विदुः ।

शुक्ले पूर्वार्द्धे कृष्णे चैव परार्द्धे ॥

इति वचनं तद् द्वेधा विविक्तपूर्वास्तापराह्णस्तर्गतयोः कुतपपूर्वोत्तरार्द्धयोः
 शुक्लकृष्णभेदेनोपक्रमकालत्वव्यवस्थापकम् ।

शुक्लपक्षस्य पूर्वार्द्धे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।

कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रोहिर्णि तु न लघयेत् ॥

1. फलान्-ग. 2. म-ग. 3. यु.....स्य—omitted in g.

4. पिबेत्-ह, म. a. This line is omitted in g. 5. ग्राह्या-ग.

6. मन्वि. मन्वन्तरादीनां-क;

तदपि उपक्रमपरम्-घ.

तथा—

वैशाख्यां विधिवत् स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश ।

कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति । वैशाखकृष्णप्रतिपद् नारसिंहकल्पादिः । त्रयोदशी गौरीकल्पादिः ।

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षयतृतीया । इयं गौरीव्रते उत्तरा कार्या ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ! ।

अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥

इति ब्रह्मवेवर्तात् । गणो गणेशस्तेन लक्षणया तद्देवत्या चतुर्थी ।

द्वितीयया तु या त्रिधा तृतीया न कदाचन ।

कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात ! धर्मकामार्थतत्परैः ॥

इति स्कन्दपुराणे द्वितीयाविद्वानिषेधश्च । निषेधप्रयोजकश्च अत्र द्वितीयावेधो न त्रिमुहूर्त्तात्मकः, किन्तु कलाकाष्ठादिरूपोऽपि । अत एव तृतीयापि

गौरीव्रते स्वल्पापि परा ग्राह्या । व्रतान्तरेषु त्रिमुहूर्त्तद्वितीयावेधेन त्याज्यत्वं, द्वितीयदिने त्रिमुहूर्त्ताया एव ग्राह्यत्वमित्यादि अन्यत्र मत्कृतौ द्रष्टव्यम् ।

यदा तु चतुर्थीयुता किञ्चिदपि न लभ्यते तदा गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्ताभावे च इतरव्रतेष्वपि द्वितीयाविद्वानि ग्राह्या,

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।

पूर्वविद्वानपि कर्त्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ॥

a. तथा, वैशाख्यां .. नात्र संशयः इति—Omitted in क. b. From

“वैशाखकृष्ण” (P. 22) to “इत्यामन्तकसं लभेत्” (P. 25)—Omitted in Ms. क.

1. परा-ग. 2. गणेशदेवत्या-ग. 3. कः कलाकाष्ठादिरूपोऽपि हेव-ग.

4. द्वि ग्रा-क. 5. त्रिमुहूर्त्त-क, ख. 6. परदि-ग. 7. त्रयोदशी-ख.

गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्तसंस्थे च व्रतान्तरे द्वितीया-ग. 8. पूर्ववि-ख.

इति कृदवशिष्टवचनम् । इयं च ज्ञेतास्तुतिः । तत्र शब्दं नित्यं काशं च ।
युगाद्यादित्युपक्रम्य,

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

इति विष्णुपुराणाच्च । “युगादयः स्मृताः ह्येताः पितॄणां तृप्तिहेतवः” इति
मत्स्यपुराणाच्च । इयं श्रद्धा अपसृज्य व्यापिनी ग्राह्या, तस्यापराह्णकालत्वात् ।
कालव्याप्तिशास्त्रस्य च सबिषयम् बलवत्त्वात् । अत एव अमावास्या-
श्राद्धनिर्णयमुक्तवोक्तं शास्त्रादहम्—

एवं मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः ।

महालयस्य पक्षस्य अष्टकानामपि स्मृतः ॥

इति । मनुः

द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादी कृष्णो विदुः ।

शुक्ले पूर्वाह्निके सप्तमे कृष्णे चैव पराह्णिके ॥

इति वचनं तद् द्वेधा विविक्तपूर्वास्तापराह्णस्तर्गतयोः कुतपूर्वोत्तरार्द्धयोः
शुक्लकृष्णभेदेनोपक्रमकालत्वव्यवस्थापकम् ।

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।

कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रोहिर्णं तु न लेघयेत् ॥

1. फोको-ग. 2. म-ग. 3. यु.....स्य—omitted in g.

4. विचक्षण-ग. 5. ग्राह्या-ग. a. This line is omitted in g.

6. सप्तमे कृष्णे चैव पराह्णिके—क; This line is omitted in Ma. g.

तदपि उपक्रमपरम्—घ.

इति वायवीयवचनात् । यद्वा यदा शुक्लपक्षयता युगादितिथिः पूर्वदिने¹
 कुतपोत्तारार्धमेवारभ्य प्रवृत्ता उत्तरदिने वृद्ध्यापराह्णेऽपि किञ्चिद्वर्तते तदा
 संपूर्णापराह्णव्यापित्वेन² पूर्वदिनगताया एव ग्राह्यत्वे प्राप्ते तदबाधत्वेन
 कुतपपूर्वार्धरूपपूर्वाह्णव्यापिनी अल्पापराह्णस्पृशिन्यप्युत्तरा ग्राह्येति विधीयते ।
 न च तदापराह्णशास्त्रस्याप्यत्यन्तबाधः । अपराह्णेऽपि किञ्चित्तस्या विद्य-
 मानत्वात् । हेमाद्रेस्तु मन्वादिष्वप्ययं निर्णयः सम्मतः ,

या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः ।

स्नात्वा हुत्वा च जप्त्वा च दत्त्वानन्तफलं लभेत् ॥

इति । भारतोक्तस्नानादौ तृत्तरा । केचित्तु,

वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै ।

हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ इति गोभिलवचनात्,

पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः । इति नारदवचनाच्च
 आद्वेऽपि पूर्वाह्णव्यापिन्युत्तरा कार्येति वदन्ति, तत्कालादर्शादिविरुद्धमयुक्तं
 च “अपराह्णः पितृणाम्, अपराह्णे तु पेतृकम्, अपराह्णे पितृक्रिया”
 इति वचनैः अपराह्णकालत्वाभिधानात् ।

कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः ।

तया कर्माणि कुर्वन्ति ह्यसवृद्धी न कारणम् ॥

1. इति वचनात्-अ. 2. पूर्वत्वा एव प्राप्ती अल्पापराह्णव्यापिन्युत्तरा ग्राह्येति
 विधत्ताम्-ग. 3. स्यात्स्य-ग. 4. अव्यं-क. 5. इति वदन्ति केचि-ग.
 6. स्थिति-व. 7. त्योक्तेः-ग. 8. सः इति वाक्यात्-अ; सः
 तत्कालव्यापिनी तिथिरिति वाक्यात्-ग. a. The portion from “तत्कालव्यापिनी”
 to “असः” (Page 26) is omitted in Ms. अ.

इति वाक्यात् प्राप्तस्यापराह्णकालस्याबाधेनोपपत्ती बाधायोगात् आद्यवचनं
 त्वनाकरं पितृयतर्पणादिविषयं वा । साकरत्वेऽपि पितृद्देशेन क्रियमाण-
 तर्पणादिविषयं व्याख्येयम् । नारदवचनं तु “द्वे शुक्ले” इति वचनवदेव
 व्याख्येयम् । इदं च युगादिश्चाद्वक्तव्यं युगादिति श्रिमध्ये एव कर्तव्यम् ।

मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिती क्रिय ॥

²
 इति स्कन्दपुराणात् । भविष्ये—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तत्रैव च ।

गंगातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।

यवान् दद्याद् द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद् यवान् ॥

इति । अत्र दानविशेषो भविष्ये इमां प्रक्रम्य—

उदकुम्भात् सकतकान् सान्नान् सर्वरसैः सह ।

यवगोधूमचणकान् सक्तून् दध्योदनं तथा ॥

ग्रीष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते ।

इति । देवीपुराणे—

तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य च ।

उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते ॥ इति ।

मन्त्रस्तु, “एष धर्मवटो दत्तः” इति पूर्वमुक्तः । ³ पितृद्देशेनौदकुम्भदाने तु,

1. यमित्यन्यत्र विस्तरः । भविष्ये—व.

2. स्कान्धात्—ग.

3. पित्र्ये

इति मन्त्रेण व्रतं निवेद्याचम्य प्राणानायम्य संकल्पं कुर्यात् । तत्र²
संकल्पमन्त्रः—

उपोष्ये नवमीं त्वद्य धामैष्वष्टसु राघव ! ।

तेन प्रीतो भव त्वं भोः संसारात् त्राहि मां हरे ! ॥

इति । ततः

कोमलाङ्गं विशालाक्षभिन्द्रनीलसमप्रभम् ।

दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् ।

पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ ॥

अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकाक्षिणम् ।

इति ध्यात्वा रामप्रतिमासमीपे षट्कोणमध्ये कौसल्या दशरथं च पूजयेत् ।
षट्कोणेषु “शं हृदयाय नमः” इत्यादिरूपेण हृदयानि षट् । षट्कोण-
बाह्याष्टदलकमलदलमूलेषु हनूमन्तं सुग्रीवं भरतं विभीषणं लक्ष्मणं अङ्गदं
शत्रुघ्नं जाम्बवन्तं च, दलमध्येषु धृष्टि, जयन्तं, विजयं सुराष्ट्रं, राष्ट्रवर्धनं,
अकोपं, धर्मपालं, सुमन्तं च पूजयेत् । दलाग्रेषु पूर्वदिक्पदेण अष्टौ
लोकपालान्, तदग्रे वज्रं शक्तिं दण्डं खड्गं पाशमङ्कुशं गदां, शूलं चेति तेषां
आयुधानि च पूजयेत् । रामपूजार्था मूलमन्त्रः, इदं विष्णुरिति वा, ॐ
रामाय नमः इति नाममन्त्रो वा ।

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणोऽनिलः ।

कुबेर ईशो ब्रह्मादिदिक्पालाः स्नापयन्तु ते ॥

1. अ. संस्कृत-मन्त्रः.

2. तत्र मन्त्र-ग.

3. वा संनिवेद्य च-अ.

4. प्रपू-अ.

इति स्नाने मन्त्रः ।

रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत् ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोज्स्तु ते ॥

इति कौसल्यापूजायाम् । ॐ नमो दशरथाय इति दशरथपूजायाम् ।
अन्येषां नाममन्त्राः ।

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि ।
निदंघ्रुं निखिलाः पलाशसमिधो मध्यादयोध्वारणे-
राविर्भूतमभूतपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः ॥

इति । मध्याह्ने जन्मभावना बाद्यादिवादनं च । पुष्पाञ्जलेः पूर्वं फलपुष्पाम्बु
अशोकरत्नतुलसीदलयुक्तं शंखं गृहीत्वार्घ्यं दद्यात् । तत्र मन्त्रः-

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।
राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ।
गृह्णात्वार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोज्जघः ॥

इति । ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । रात्रौ जागरणं कृत्वा परदिने होमं
कृत्वा प्रतिमादानं कुर्यात् । प्रतिमादानमन्त्रस्तु,

-
1. मन्त्रेण स्नानम्-ख; स्नानमन्त्रः-ग. 2. पूजनम्-ख. 3. विने-क.
4. कतु-ख. 5. कतेन शब्देनार्घ्यं-ग. 6. र्घं-ख. 7. रक्षणाय-ख.
8. गृह्णात्वार्घ्यं-ख. 9. तो मय-क, ग. 10. ततः....कुर्यात्-Omitted in ख.
10. नो दद्यात्-ग. 11. तत्र मन्त्रस्तु-क, ग; तत्र मन्त्रः-ख.

इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ।

चित्रवस्त्रयुगच्छत्रां रामाहं राघवाय ते ॥¹

श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः, । इति ।

ततो भूमिं दक्षिणां दद्यात् ।

इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् ।

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

²
इति वचनात् ।

³
चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मो—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।

आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवः⁴ ॥

⁵
इति । चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः—

द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ।

बोधायनादिभिः प्रोक्तः कर्त्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥

इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । अत्र पारणाहर्विवक्षितम् ।

पारणाहेन लभ्येत द्वादशी, कलयापि चेत् ।

तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥

⁶
इति तत्रैकोक्तेः । नित्यम् चेदम् ।

ऊर्जे व्रतं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपूजनम् ।

⁷
चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥

1. तुष्टये दास्ये प्रीतो म-घ.

2. इति । चै-क, च, घ.

3. स्वीकृत्यं

ज्ञा-घ.

4. वः-घ.

5. वक्तव्यं रामार्चनचन्द्रिकायाम्-ग.

6. कोक्तेः-घ.

7. पतत्य-घ.

इति पद्मपुराणात् । इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।

उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रं दमनार्पणम् ।

ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्त्तनम् ॥

कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मोहयेऽपीति विनिश्चयः ।

इति वृद्धगार्ग्यवचनात् ।

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् । तत्र पूर्वा ग्राह्या । अस्यामेव मदनपूजोक्ता कूर्मपुराणे—

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां मदनं चन्दनात्मकम् ।

कृत्वा संपूज्य यत्नेन वीजयेद् व्यजनेन च ॥

ततः संघुक्षितः कामः पुत्रपौत्रसमृद्धिदः ।

इति । इयमुदानकल्पादिः । चैत्रशुक्लचतुर्दशी दमनकारोपणे रात्रियोगिनी पूर्वा ग्राह्या ।

“मघोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी ।

सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या परा पूर्वाह्णगामिनी” ॥

इति बौधायनोक्तेः चैत्री पौर्णमासी सामान्यनिर्णयात्परैव । पौर्णमास्यां

कृत्यविशेषो विष्णुस्मृतौ—“चैत्री चित्रायुता चेत् स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति” इति । तथा ब्राह्मे—

मन्दे चार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रकी ।

तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्भवेत् ॥

1. पापात्-घ. 2. तथा शु-ग. 3. त्र द-क, ग, घ. 4. पि च-ङ.

5. चैत्र..... कूर्मपुराणे-omitted in Mss. क. and ग. 6. दमन-ङ, ग.

7. ग्राह्या इति बौधायनवचनात्-क, ख, घ. 8. चैत्रपौर्णमास्यां

कृत्यविशेषो विष्णु-क; चैत्रीकृत्यं तु विष्णु-ग. 9. अत्र वि-घ.

10. शान्तापि-घ.

वायवीये—

संवत्सरकृत्तार्चायाः साफल्यार्चाखिलान् सुरान् ।

दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम् ॥

अत्र परा ग्राह्या । “सावित्रीव्रतमन्तरेण अवतोऽमापूर्णमास्ये परे” इति दीपिकोक्तेः । इयं मन्वादिः । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषमाह पुलस्त्यः—

चैत्रे कृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।

न प्रेतत्वमवाप्नोति गयायां तु विशेषतः ॥

इति । अत्र पूर्वा ग्राह्या कृष्णपक्षगतस्वात् ।

¹
इति कृत्यरत्नावल्यां चैत्रकृत्यानि ॥

अथ वैशाखकृत्यम् ।

²
पाद्ये—

तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् ।

दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥

³
माघवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ।

अथ वैशाखस्नानं विष्णुस्मृतिपाद्ययोः—

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥

⁴
इति । अत्र सौरमास उक्तः । अन्यदपि पक्षद्वयमुक्तं पाद्ये—

⁵
मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ।

पञ्चदश्यां च भो वीर ! मेषसंक्रमणेऽपि वा ॥

1. चैत्रकृत्यानि—क, ग; चैत्रकृत्यम्—ख. 2. Omitted in Ms. ख. 3. कुर्वन्ति

न. 4. पक्षान्तरं पाद्ये—ग. 5. रयां विशेषतः—ख.

वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात् संकल्पपूर्वकम् ॥

इति । तत्र मन्त्रः—

वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः ।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ।
निर्बिघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्त्रहम् ॥
माघवे मेषगे भानी मुरारे ! मधुसूदन ! ।
प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् ! ॥

इति । तीर्थानामपरिज्ञाने तत्रैव—

यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः ! ।
तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥

अत्र त्रिकालं विष्णुपूजा कार्या अभ्युत्थमूले जलदानं च इत्यादि
तत्रैवोक्तम् ।

वशाक्तस्य स्थलं स्नानमुक्तं पाथे—

त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां च दिनत्रयम् ।
अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥

प्रातःस्नातः सुनियतः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

इति । यदा तु वैशाखो मलमासस्तदा समाप्तिः शुद्धमासे पूर्णिमायां कार्या ।

1. कार्य-व. 2. कुर्यात्-क. 3. व अ-व. 4. कर्ते प्रति पाथे-ग.
5. स्थ स्ना-क. 6. अस्य मलस्ये समाप्तिः-व. 7. यदा वै-क.
8. मासे-ग. 9. कर्तव्या-व.

^a
तथा—

वैशाख्यां विधिवत् स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश ।

कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति । वैशाखकृष्णप्रतिपद् नारसिंहकल्पादिः । त्रयोदशी गौरीकल्पादिः ।

वैशाखशुक्लतृतीया अक्षयतृतीया । इयं गौरीव्रते उत्तरा कार्या ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ! ।

अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् । गणो गणेशस्तेन लक्षणया तद्देवत्या चतुर्थी ।

द्वितीयया तु या विद्धा तृतीया न कदाचन ।

कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात ! धर्मकामार्थतत्परैः ॥

इति स्कन्दपुराणे द्वितीयाविद्वानिषेधश्च । निषेधप्रयोजकश्च अत्र द्वितीयावेधो
न त्रिमुहूर्त्तात्मकः, किन्तु कलाकाष्ठादिरूपोऽपि । अत एव तृतीयापि

गौरीव्रते स्वल्पापि परा ग्राह्या । व्रतान्तरेषु त्रिमुहूर्त्तद्वितीयावेधेन त्याज्यत्वं,

द्वितीयदिने त्रिमुहूर्त्ताया एव ग्राह्यत्वमित्यादि अन्यत्र मत्कृतो द्रष्टव्यम् ।

यदा तु चतुर्थीयुता किञ्चिदपि न लभ्यते तदा गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्तालाभे च
इतरव्रतेष्वपि द्वितीयाविद्धापि ग्राह्या,

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।

पूर्वविद्धापि कर्त्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ॥

a. तथा, वैशाख्यां ... नात्र संशयः इति—Omitted in क. b. From

“वैशाखकृष्ण” (P. 22) to “दशमन्तफलं समेत” (P. 25)—Omitted in M6. व.

1. परा-ग. 2. गणेशदेवत्या-ग. 3. कः कलाकाष्ठादिरूपोऽपि हेवः-ग.

4. द्वि प्रा-क. 5. त्रिमुहूर्त्त-क, व. 6. परदि-ग. 7. परेषु; सर्ववैशाखसरे

गौरीव्रते त्रिमुहूर्त्तसरे च व्रतान्तरे द्वितीया-ग. 8. चतुर्थी-ग.

इति वृद्धवसिष्ठवचनम् । इयं च ज्ञेतास्तुतिः । तत्र शब्दः नित्यः कास्यं च ।
 युगाद्यादित्युपक्रम्य,

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

इति विष्णुपुराणान्व । “युगादयः स्मृताः होताः पितॄणां तृप्तिहेतवः” इति
 मत्स्यपुराणान्व । इयं श्रद्धा अपराह्णव्यापिनी ग्राह्या तस्यापराह्णकालत्वात् ।
 कालव्याप्तिशास्त्रस्य च सर्वपिश्याय दत्तवत्त्वात् । अत एव अमावास्या-
 श्राद्धनिर्णयमुक्तवोक्तं कालादर्शम्—

एवं मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः ।

महालयस्य पक्षस्य अष्टकानामपि स्मृतः ॥

इति । अतः

द्वे शुक्ले द्वे तस्मा कृष्णे युगादी कृष्णो चिदुः ।

शुक्ले पूर्वार्द्धे तस्मा कृष्णे चैव परार्द्धे ॥

इति वचनं तद् द्वेधा विविक्तपूर्वास्तापराह्णस्तर्गतयोः कुतपपूर्वोत्तरार्द्धयोः
 शुक्लकृष्णभेदेनोपक्रमकालत्वव्यवस्थापकम् ।

शुक्लपक्षस्य पूर्वार्द्धे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।

कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रोहिर्णं तु न लेखयेत् ॥

1. कर्माणि-ग. 2. म-ग. 3. यु.....स्य-omitted in g.

4. विचक्षणः-ग. a. This line is omitted in g. 5. श्राद्धादि-ग.

6. अतः-ग. This line is omitted in Ms. g.

तदपि उपक्रमपरम्-ग.

इति वायवीयवचनात् । यद्वा यदा शुक्लपक्षमता युगादितिथिः पूर्वदिने
 कुतपोत्ताराधमेवारभ्य प्रवृत्ता उत्तरदिने वृद्ध्यापराह्णेऽपि किञ्चिद्वर्तते तदा
 संपूर्णपराह्णव्यापित्वेन पूर्वदिनगताया एव ग्राह्यत्वे प्राप्ते तदबाधत्वेन
 कुतपपूर्वार्धरूपपूर्वाह्णव्यापिनी अल्पापराह्णस्पर्शिन्यप्युत्तरा ग्राह्येति विधीयते ।
 न च तदापराह्णशास्त्रस्याप्यत्यन्तबाधः । अपराह्णेऽपि किञ्चित्तस्या विध-
 मानत्वात् । हेमाद्रेस्तु मन्वादिष्वप्ययं निर्णयः सम्मतः ,

या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः ।

स्नात्वा हुत्वा च जप्त्वा च दत्त्वानन्तफलं लभेत् ॥

इति । भारतोक्तस्नानादौ तूत्तरा । केचित्तु,

वंशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै ।

हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ इति गोभिलवचनात्,

पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः । इति नारदवचनान्
 आद्रेऽपि पूर्वाह्णव्यापिन्युत्तरा कार्येति वदन्ति, तत्कालादर्शादिविहृदमयुक्तं
 च “अपराह्णः पितृणाम्, अपराह्णे तु पैतृकम्, अपराह्णे पितृक्रिया”
 इति वचनैः अपराह्णकालत्वाभिधानात् ।

कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः ।

तया कर्माणि कुर्वन्ति ह्यसवृद्धी न कारणम् ॥

1. इति वचनात्-ब. 2. पूर्वत्वा एव प्राप्ती अल्पापराह्णव्यापिन्युत्तरा ग्राह्येति
 विधत्ताम्-ग. 3. स्यात्-ग. 4. व्ययं-क. 5. इति वदन्ति केचि-ग.
 6. स्यादिव-ब. 7. त्योक्तेः-ग. 8. सः इति वाक्यात्-ब; सः
 तत्कालव्यापिनी तिथिरिति वाक्यात्-ग. a. The portion from “तत्कालव्यापिनी”
 to “यमः” (Page 26) is omitted in Ms. ब.

इति वाक्यात् प्राप्तस्वापराह्णकालस्याबाधेनोपपत्ती बाधायोगात् आद्यवचनं त्वनाकरं पितृव्यतर्पणादिविषयं वा । साकरत्वेऽपि पितृद्वेशेन क्रियमाण-
तर्पणादिविषयं¹ व्याख्येयम् । नारदवचनं तु “द्वे शुक्ले” इति वचनवदेव व्याख्येयम् । इदं च युगादिश्राद्धकृत्यं युगादितिभिर्मध्ये एव कर्तव्यम् ।

मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिती क्रिया ॥

2

इति स्कन्दपुराणात् । भविष्ये—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तत्रैव च ।

गंगातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।

यवान् दद्याद् द्विजातिभ्यः प्रमत्तः प्रामयेद् यवान् ॥

इति । अत्र दानविशेषो भविष्ये इमां प्रक्रम्य—

उदकुम्भान् सकतकण्ठान् सान्नान् सर्वरसैः सह ।

यवगोक्षूमचणकान् सक्तून् दध्योदनं तथा ॥

ग्रीष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते ।

इति । देवीपुराणे—

तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य च ।

उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते ॥ इति ।

मन्त्रस्तु, “एष धर्मवटो दत्तः” इति पूर्वमुक्तः ।³ पितृद्वेशेनौदकुम्भदाने तु,

1. यमित्यन्यत्र विस्तरः । भविष्ये-घ.

2. स्कान्दात्-ग.

3. पित्र्ये

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

अस्य प्रदानात् तृप्यन्तु पितरोऽपि पितामहाः ।

गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम् ।

पितृभ्यः संप्रदास्यामि ह्यक्षय्य उपतिष्ठतु ॥

इति । युगादिषु रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमुक्तं ऋग्विधाने—¹

रात्रौ भुङ्क्ते² वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु ।

अभिस्ववृष्टिमन्त्रं च जपेद्दश न पातकम् ॥

³ दशवारमिति शेषः । यमः—

कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु तु ।

दास्यन्त्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः ॥

इति । उपवासे पूर्वा,

सवैधृतिव्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा ।

सम्मुखा उपवासे स्युर्दानादावन्तिमाः स्मृताः ॥

इत्यनन्तभट्टोदाहृतवचनात्⁴ । मलमासपाते तु तत्रापि युगादिनिमित्तं श्राद्धं⁵

कार्यम्⁶, 'मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि'—इति मरीचिवचनात् ।

^a अत्र समुद्रस्नानं महाफलमुक्तं सौरपुराणे—

युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ ।

गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं च यत् ॥

तत् फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् ।

1. त्तमृगिद-ग. 2. नरो यस्तु-घ. 3. मित्यर्थः 4. मलेऽपि-ग.
5. ते त-क, घ. 6. कर्त्तव्यम्-घ. a. अत्र मुक्तं—Omitted in
Ms. ग.

इति । इयमेव ^१तृतीया परशुरामजयन्ती ^२। सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।
तथा च भार्गवार्चनचन्द्रिकायां स्कान्दे—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ ।

^३निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः ॥

रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो भुवि स्वयम् ।

इति ।

दिनद्वये तदव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च परा । अन्यथा पूर्वव ।
तदुक्तं तत्रैव भविष्ये—

शुक्ला तृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये ।

^४निशायां पूर्वभागे चेत् सा परान्यत्र पूर्विका ॥

वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—

वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा ।

क्रोधात् पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात् दक्षिणात् ॥

तां तत्र पूजयेद्देवीं गंगां गगनमेखलाम् ।

इति । इयं च शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति वदन्ति । दिनद्वये
^६तदव्याप्तौ तदव्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा, “षण्मुन्यो”रिति गुरुमवाक्यात् ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ—

पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ

मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।

मासाभिधाना करभेण युक्ता

तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥

-
१. व पर-ग. २. स्ती प्रदी-ग. ३. या-ग. ४. उत्तरान्य-ख, ग.
५. ग्राह्या दिन-क, घ. ६. प्लावव्याप्तौ वा पूर्वा व-ग, घ; प्लौ वा पूर्वा व-ख.

अस्मिस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्र-

दानेन सर्वं परिहाय पापम् ।

सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं

मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥

पञ्चाननः— सिंहः । मासाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करभः— हस्तः ।

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयन्ती । सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या,

वैशाखशुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां विवस्वति ।

अस्तंगामिनि सर्वेषां पुष्टस्तम्भमध्यतः ॥

प्रबभूव महाविष्णुर्नरसिंहाकृतिर्नृप ! ।

तस्यां व्रतं नरैः कार्यं महाविष्णोरतिप्रियम् ॥

इति नृसिंहप्रसादोदाहृतनृसिंहपुराणेऽस्तमयस्य जन्मकालत्वोक्तेः । जयन्तीषु च जन्मकालस्यैव पूजारूपकर्मकालत्वात् । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा परा संकल्परूपव्रतोपक्रमकालत्वात् । “चतुर्दश्यां च पूर्णिमे”ति युग्मवाक्याच्च । अस्यां प्रातःकृत्यं विधाय सूर्यादिदेवताभ्यो व्रतं निवेद्याचम्य प्राणानायम्य उदङ्मुखो वारिपूर्णताम्रपात्रं गृहीत्वा संकल्पं कुर्यात् । तदुक्तं हेमाद्र्युदाहृते नृसिंहपुराणे—“नियमं च प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम्” ॥ नियमः—संकल्पः । दन्तधावनग्रहणं प्रातःकृत्योपलक्षणार्थम् । दन्तधावनं च तृणपर्णादिना द्वादशगण्डूषैर्वा कार्यम् । उपवासदिने काष्ठस्य निषेधात् । संकल्पमन्त्रस्तत्रैव—

श्रीनृसिंह ! महोग्रस्त्वं दयां कृत्वा ममोपरि ।

अद्याहं च विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां तथ ॥

1. पाशाभि-घ. 2. द्वादशोतिथिः-ख. 3. नरसिंह-घ. a. From “वैशाखशुक्ल” to “प्रतिमां संस्थाप्य” (Page 29) many lines are dropped in घ. b. “तदुक्तं ... काष्ठस्य निषेधात्” omitted in Ms. घ. 4. भम्-क. 5. मन्त्रस्तु-ग.

इति । ततः ¹ “व्रतस्थेन न कर्त्तव्या संगतिः पापिभिः सह” इत्यादिवचनात्
 मिथ्यालापपाषण्डादिसंभाषणवर्जनं कुर्यात् । ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ
 मृद्गोमयतिलामलकैः ¹ स्नात्वा मध्याह्नसाध्यादिनित्यकर्म ² कृत्वा गृहं गच्छेत् ।
 अस्य व्रतस्य संकल्पो मध्याह्ने एव कर्त्तव्य इत्युक्त्वा तत्र प्रमाणत्वेन “ततो
 मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले” इत्युपक्रम्य “परिधाय शुचिर्वासो व्रतकर्म
 समारभेत्” इति ³ नृहपुराणे ⁴ लिखितं तदयुक्तम्, तत्र “नियमं च प्रकुर्वीत” ⁵
 इत्यादिना संकल्पमभिधाय व्रतस्थेनेत्यादिना मिथ्यालापादिवर्जनप्रदर्शनपूर्वकं
 “ततो मध्याह्न” इत्यादिना स्नानमभिधाय “परिधाय शुचिर्वासो नित्यकर्म
 समारभे” ⁷ इत्यभिधानात् । नित्यं ⁸ मध्याह्नसाध्यादि । ततो गोमयोपलिप्तेऽष्टदलं
 कृत्वा तत्र कलशं संस्थाप्य हैमीं पलतदर्धाधिमितां प्रतिमां ⁹ संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठां
 कृत्वा मूलमन्त्रेण वैदिकेन नाम्ना ¹⁰ आवहनादि कृत्वा स्नानसमये पञ्चामृतैः
 स्नापयित्वा यज्ञोपवीतवस्त्रे दत्त्वा गन्धादिभिः पूजयेत् । तत्र मन्त्राः—

¹¹
 चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुममिश्रितम् ।
 ददामि तव तुष्ट्यर्थं नृसिंह परमेश्वर ! ॥

इति चन्दनमन्त्रः ।

कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनि वै प्रभो ! ।
 पूजयामि नृसिंह ! त्वां लक्ष्म्या सह नमोऽस्तु ते ॥

- a. This sentence is omitted in Ms. ग. 1. त्वा नित्य-क, ख. 2. कुर्यात्-ग.
 3. स्य सं-ख. 4. कर्म-ख. 5. नादित्युक्तं त-ग. 6. प्रकुर्वन्ति
 दन्तधावनपूर्वकं मिति प्रातः करुपान्तरमेव नियमाख्यसंकल्पोक्तेः, परिधाय-ग.
 7. हित्येव पाठात् ग. 8. प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं मूल-ग; संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठां
 कृत्वा ना-ख. 9. नाम्ना वा पूजयेत्-ग. b. यज्ञो दत्त्वा—omitted in Ms. ख.
 10. गन्धादौ तु मन्त्रः-ग. 11. कुङ्कुमं चि-ग.

इति ^१ पुष्पमन्त्रः ।

कालागरुमयं धूपं सर्वदेवसुवल्लभम् ।

करोमि ते ^२ महाविष्णो ! सर्वकामसमृद्धये ॥

इति ^३ धूपमन्त्रः ।

दीपः पापहरः प्रोक्तः तमोराशिबिनाशनः ।

दीपेन लभ्यते तेजः तस्माद्दीपं ददामि ते ॥

इति ^४ दीपमन्त्रः ।

नैवेद्यं सुखदं चारु भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।

ददामि ते रमाकान्त ! सर्वपापक्षयं कुरु ॥

इति नैवेद्यमन्त्रः । ततः ^५ फलताम्बूलदक्षिणाः ^६ दत्त्वा अर्घ्यं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

नृसिंहाच्युत ! देवेश ! लक्ष्मीकान्त ! जगत्पते ! ।

अनेनार्घ्यप्रदानेन सफला ^७ स्युर्मनोरथाः ॥

इति । ततो नीराज्य पुष्पाञ्जलिं ^८ दत्त्वा स्तोत्रादिना स्तुत्वा प्रार्थयेत् ।
तत्र मन्त्रः—

पीताम्बर ! महाबाहो ! प्रह्लादभयनाशकृत् ।

यथा ^{१०} भूतेनार्चनेन यथोक्तफलदो भव ॥

-
1. षम्-क, ख. 2. च-घ. 3. पम्-क, ख. 4. पम्-ख.
5. छम्-क, ख. a. This sentence is omitted in Ms. घ. 6. ततो दक्षिणान्तोऽ
र्घ्यं दद्यान्मन्त्रेण नृ-ग. 7. याः । ततो-क, ख; या इत्यर्घ्यमन्त्रः ततो-घ.
8. त्वा स्तु-ग. 9. शन ! -ख. 10. त-घ.

इति । ततो¹ रात्रौ गीतवाद्यपुराणश्रवणादिभिर्जागरणं कृत्वा प्रभाते पुनः²
पूजयित्वा विष्णूद्देशेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वर्णमयं सिंहं³ गोभू
हिरण्यतिलशय्यादि दत्त्वा प्रार्थयेत्—

मद्वंशे ये नरा जाताः ये जनिष्यन्ति त्वत्पराः ।
तान् समुद्धर देवेश ! दुस्तराद्भवसागरात् ॥

पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुचारिभिः ।
जीवंस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥

करावलम्बनं देहि श्लेषशायिन् ! जगत्पते ! ।
श्रीनृसिंह ! रमाकान्त ! भक्तानां भवनाशन ! ॥

क्षीराम्बुधिनिवासस्तु चक्रपाणिर्जनार्दनः ।
व्रतेनानेन देवेश ! भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ॥

इति । एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यथाविधि उपहारादिकं सर्व-
माचार्याय निवेदयेत् ।

दक्षिणाभिः सुसन्तोष्य ब्राह्मणांस्तु विसर्जयेत् ।
मध्याह्ने तु समायुक्तो भुञ्जीत बन्धुभिर्नरः ॥

इति । अस्या एव योगविशेषप्राशस्त्यं तत्रैवोक्तम्—

स्वातीनक्षत्रयोमे च शनिवारे महद्ब्रतम् ।
सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥

a. Portion from "ततो रात्रौ" to "वाप्रनात्मनम्" (Page 32) is omitted in

Ms. d. 1. रात्रौ वाप-ग. 2. त्वा ब्राह्म-ग. 3. वृक्षितहिरण्य-ग. द.

b. This line is omitted in Ms. g. 4. अ-ग. c. अस्मा-.....चोक्तम्-

omitted in Ms. g. 5. मेन-ग.

पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोमतः ।

^a सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हस्याकोटिविनाशनम् ॥

¹ एतदन्यतरे योगे महिनं पापानाशनम् ।

इति । तथा,

सर्वेषामपि वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्ब्रते ॥ इति । इदं ³ च नित्यम् ।

^b वैशाखशुक्लपक्षे च चतुर्दश्यां समाचरेत् ।

मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥

वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं मम संतुष्टिकारकम् ।

इति वीप्साश्रवणात्, “अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरा” इति

अकरणे दोषश्रवणाच्च । ⁴ काम्यं च, “अपुत्रो लभते पुत्रान्” इत्यादि

⁵ फलश्रवणात् । इयमेव गारुडकल्पादिः ।

⁶ वैशाखशुक्लपौर्णमास्यां विशेषो भविष्ये—

वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः ।

स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ! ॥

^c इति । पाद्मे—

वैशाख्यां विधिवत् स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् दश ।

कृशरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

-
- a. This line is omitted in Ms. घ, 1. एतैर्योगविनापि स्यात् न-घ,
2. ते ॥ इदं-ग. 3. इति । नित्यं चेदम्-ग. b. This and the line
following it are omitted in Ms. न. 4. च । अपुत्रो-ग. 5. नारक ।
काम्यमपि । इय-ग. c. From “इति” to “मुच्यते, इति” (Page 33)—omitted
in Ms. घ.

इति । विष्णुधर्मोत्तरे—

वैशाख्यां पूर्णमास्यां तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा ।

क्षौद्रमुक्तैस्तिलैः कृष्णैर्वाचयेद्वदि वैष्णवः ॥

प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते ।

यावज्जीवकृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ इति ।

तिलैर्दत्तैरिति शेषः । वाचयेत्—स्वस्ति वाचयेदित्यर्थः । यद्वा मनसि वर्तते यत्फलकामः स्यादित्यर्थः ।

इति वैशाखकृत्यानि ॥

अथ ज्येष्ठकृत्यानि ।

ज्येष्ठकृष्णद्वितीया समानकल्पादिः । ज्येष्ठकृष्णचतुर्दशी माहेश्वर-
कल्पादिः । ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रंभाव्रतम् । तथा च भविष्ये—

भद्रे ! कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् ।

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा ॥

इति । इयं पूर्वविद्धा ब्राह्म्या ।

बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपतृकी ।

कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः ॥

इति स्कान्दीकृतेः । इयमेव वाक्पदेवकल्पादिः ।

ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां भीतीव्रतं ब्रह्मपुराणे—

ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां तु जाता पूर्वमुमा सती ।

तस्मात् सा तत्र संपूज्या स्त्रीभिः सौभाग्यवद्भवे ॥

उपहारैश्च त्रिकिर्मर्षितनृत्त्योत्सवादिभिः ।

होमैः पञ्चोमिर्वस्त्रैश्च फलपुष्पैः सुवन्धिमिः ॥

This line is omitted in Ms. 2. नक्षत्रा-य.

3. विः । चतु-य, घ. 4. ब्राह्मे-य, ग.

इति । ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा । तदुक्तं^१ हेमाद्रौ भविष्ये—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।

हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥

इति । वाराहे तु नैगाया दशहरात्वमुक्तम्—

दशम्यां शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि ।

अवतीर्णा ह्यधः स्वर्गाद्विस्तर्क्षं च सरिद्धरा ॥

हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ।

तस्मात् स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ॥

स्कान्दे तु दश योगा उक्ताः—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ।

गरानन्दे व्यतीपाते कन्या चन्द्रे वर्षं रेवौ ॥

दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

इति । इह बुधसोमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च खण्डित्वे यत् बाहुल्यं

सा ग्राह्या, योगाधिक्ये कल्पविषयात् । अस्यां “ॐ नमःशिवाय नारायण्ये

दशपापहराय गंगायै नमो नमः” इति कण्ठेन गंगां पूजयित्वा “नारस्यं

महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा । भयिष्यं हिमवन्तं” गङ्गापूजाविधिः सूत्रमिदं

दश फलानि दश दीपान् दशप्रसूतिलिलानि “गायत्र्यै नमः” इति मन्त्रेण दत्त्वा

१. क्तं प्र-ग. २. ष्ठमासे-क, खः ष्ठे मासे-घ. ३. तः-क, ग.

a. This line is omitted in Ms. क. ४. नै दश-क, ख. ५. नौ-ग.

६. इयं च योगबाहुल्यवती प्रहृष्टा-घ. ७. योग... अधिष्ठा-क

and ग. c. Portion from “कल्पविषयात्” to “नारायण्ये, इति” (Page 35) is omitted in Ms. ख. ८. तपुर्व-ग. ९. गङ्गायै-घ. १०. नैगायै-ग.

१०. न दश-क, ग.

दश सक्तुपिण्डान् गुडपिण्डान् जले क्षिप्त्वा मत्स्यकच्छपमण्डूकादीन्¹ स्वर्ण-²
रजतमयान् पिष्टमयान् वा शक्यान् च जले क्षिपेत् । ततो दशमालतिलान्³
यवान् दश गाभ्र दशसंख्येभ्यो बाहुभ्योऽप्येकैश्च दद्यात् इति ।

एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ।

दशजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति । गंगाया अभ्रात्रे अन्यस्यां सरिति कार्यम् । तथा त्र स्कान्दे—

यां काञ्चित्सरितं प्राप्य दद्यादर्थ्यं तिलोदकम् ।

मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकैरपि ॥

⁴ दशपापान्युक्तानि स्कान्दे—

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधान्तः ।

परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥

पाठ्यमनृतं चैव पैशून्यं वापि सर्वशः ।⁵

असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।

वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥

⁶ इति । अत्र विशेषः काशीखण्डे—

उद्येष्टे मासि सिद्धे पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् ।

दशाश्वमेधिके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥

एवं ब्रह्मसु त्रिषिङ्गु क्रमस्तप्यते नरोत्तमः ।

साधुजनैश्च प्रशंस्य प्रतिपन्नाद्यमुच्यते ॥

1. शक्या-स. 2. शक्या-स. 3. शक्या-स. 4. शक्या-स. 5. वापि-स. 6. इति । काशी-स. 7. स.

इति । तिथा,

लिङ्गं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथी ।

दशजन्मार्जितः पापैस्त्यज्यते नात्र संस्रवः ॥

इति । मलमासपाते तु तत्रापि दशहराकृत्यं कर्तव्यम् । पुनः शुद्धे तु भवत्येवेत्यन्यत्र विस्तरः— अन्यत्र मत्कृतौ द्रष्टव्यम् ।

ज्येष्ठशुक्लैकादश्यां निर्जलैकादशीव्रतम् । मदनरत्ने स्कान्दे—

ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ ! या शुक्लैकादशी शुभा ।

निर्जलं समुपोष्यान्न जलकुंभान् सशर्करान् ॥

प्रदाय विप्रमुख्येभ्यः तापत्रयविवर्जितः ।

विष्णुलोकमवाप्येह मोदते विष्णुसन्निधौ ॥

इति । ज्येष्ठपौर्णमास्यां वटसावित्रीव्रतं स्कन्दपुराणे—

ज्येष्ठमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता ।

स्नात्वा चैव शुचिभूत्वा वटं सिच्य बहूदकैः ॥

सूत्रेण वेष्टयेद् भक्त्या मन्त्रपुष्पाक्षतैः सुभैः ।

नमो वैवस्वतायेति भ्रमयन्ती प्रदक्षिणम् ॥

1. वास्यं-ग.

2. वास्यं-घ.

3. मासे तु-क;

ज्येष्ठपौर्णमासी-ग.

4. शुद्धेपीत्यन्यत्र ग; शुद्धे तु भवत्येवेत्यन्यत्र-घ. a. The portion from

"ज्येष्ठपौर्णमास्यां (Page 36) to "विस्तरमयात्र लिखितम्" (Page 37) in B is as follows:- "ज्येष्ठे मासि तिते पक्षे द्वादश्यां रवनीमुखम्" इत्युपक्रम्य

"व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य विचारार्थं स्थितः कथं" इत्युक्तवाक्ये उपलब्धम्—"ज्येष्ठे

मासि तिते पक्षे द्वादश्यां रवनीमुखम्" इति ।

5. ज्येष्ठपौर्णमास्यां-घ; ज्येष्ठशुक्लपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतं स्कन्दपुराणे-घ;

ज्येष्ठ्यां-ग.

6. ज्येष्ठे मासि-घ.

रात्रौ कुर्वीत भक्तं च बन्दनेन सवाहिना ।

तथैव षट्वक्षं च पक्षे पक्षे च पूजयेत् ॥

संप्रप्ते तु पुनर्ज्येष्ठे लघुभुग् द्वादशीं नयेत् ।

दन्तानां धावनं कृत्वा नियमं कारयेत्ततः ॥

नियममन्त्रः—

विराटं लंघयित्वा च चतुर्थे दिवसे एहम् ।

चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा च तां सतीम् ॥

मिष्टान्नानि यथा शक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।

भोक्ष्येऽहं च जगद्धात्रि ! निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ! ॥ इति ॥

ततो वंशमये पात्रे^१ बालकाप्रस्थं^२ मूहीत्वा सप्ताधान्मभूत्^३ च^४ वंशपात्रं च

वस्त्रद्वयोपरि स्थापयित्वा^५ हैमीं ब्रह्मणा सह सावित्रीप्रतिमां च तत्र भूजयित्वा^६

त्यमोघतले^७ चित्रवस्त्रमुपवासिनीं तिष्ठेत् । पौर्णमास्यां मृत्युर्षपे स्नात्वा^८

सत्यवन्तं सावित्रीं स्वर्णमयीं रौप्यपर्यङ्कमारोप्य^९ रथोपरि निवेष्टयेत् ।

ततो गोमयकृतमण्डले पञ्चामृतेन^{१०} सर्वाः स्नापयित्वा रुक्मवर्णिभिः पूजयेत् ।

ऊंकारपूर्विके देवि ! श्रीणां पुस्तकधारिणि ! ।

वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥

1. प्रपू-न. 2. तत्र-न. 3. तु-न. 4. संस्थाप्य-न. 5. तु-न.

6. सुपोषिता - न. 7. त्रीं रौप्य-न. 8. रथे स्थापयेत्-न.

a. The following lines only are found in the portion from "ततो" to

"निर्विघ्नं कुरु मे शुभे" (Page 38) in the Ms. क and न—ततो वर्तुलमण्डले

पञ्चामृतेन सर्वाः स्नापयित्वा रुक्मवर्णिभिः पूजयेत् । अंगपूजादिकमुदापनञ्च व्रतकाण्डे

उल्लिख्यम् । चित्रवस्त्रमुपवासिनीं तिष्ठेत् । सावित्र्यास्यासिप्रत्ययेन कुर्वन्ति ।

पौर्णमास्यां मृत्युर्षपे स्नापयित्वा रुक्मवर्णिभिः पूजयेत् । उक्तं चरित्रे । सर्वं तु निर्विघ्नं कुरु मे शुभे

9. वर्तुलम-न, न.

इति । अर्घ्यं चैवानेनैव अक्षौष्यं दत्त्वा भुवःसाक्षीभिः पूजयेत् । रात्रौ जागरणं कुर्यात् । ततश्चतुर्थं हविं वस्त्रादीभिः युद्धे वा गन्धमन्त्रं घृतेन पायसेन च व्याहृतिभिस्तिलव्रीहियवैश्च होमं कारयित्वा मिथुनानि चतुर्विंशतिः षोडशद्वादशाष्टौ वा वस्त्रादिभिः पूजयेत् । अशक्त्या वाचार्यमेव सपत्नीकं संपूज्य शक्तौ सोपस्कारां शय्यां दद्याद्यथाशक्ति गोदक्षिणामेव वा । ततः प्रतिमां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीतेत्युद्यापनसंक्षेपः । मन्त्रपूजादिविस्तरस्तु व्रतकाण्डे द्रष्टव्यः । अयं दाक्षिण्यस्यपरिहृतिः पक्षः । अत्राहोरात्रं निर्णयामृते भविष्ये—

अमायां च तस्य ज्येष्ठे वदमूले मङ्गलसती ।

तिरासोद्योषिता नक्षत्रे क्रिष्णिनामेव पूजयेत् ॥

अशक्त्यो तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्ज्येष्ठेतिहा ।

अथज्जिह्वं चतुर्दश्यामममयं समुपरेक्षणम् ॥

अयं पक्षः पाश्चात्यादिपरिहृतिः । हेमाद्रिभिस्तु मातृपुत्रपुणिमायामित्युक्तम् ।

अत्र पूर्णिमाभावात्वे पूर्वदिने अह्ने ।

बृहस्पति तया रश्मि सावित्री वदपंतुकी ।

कुष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या तन्मुखी स्तिथिः ॥

इति स्कान्दात् ।

भूतविद्धा न कर्तव्या अमावस्या च पूजिमान् ।

वर्जयित्वा सूरश्रेष्ठ ! सावित्रीव्रतमुत्तमम् ॥

इति ब्रह्मवेवर्तचिन् । अत्र पूर्णिमास्यभावात्स्यमुरोक्षेन यथा तिराससंपत्तिर्भवति

a. This and the line following it are omitted in c and d. This line is omitted in Ms. g. b. This stanza is omitted in Ms. c.

1. पूजिमान्-य; पूजिमानुरीधेनैव-य.

तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम्, तस्याः प्राधान्यात् । एवममीयामपि । अस्यामेव
पूर्णमास्यां विशेषश्च आदित्यपुराणे—

ज्येष्ठे मासि तिलान् दद्यात् पूणिमायां विशेषतः ।

अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः ॥

इति । विष्णुधर्मोत्तरे—

सोपवासस्तथा ज्येष्ठे पूर्णे तु शशलक्षणे ।

उपानहौ तथा छत्रं दत्त्वात्मन्तं सुखी भवेत् ॥

तत्र क्रमेण मन्त्रौ—

उपानहौ प्रदास्यामि कंठकादिनिवारणे ।

सर्वस्थानेषु सुखदे अतः शान्तिं प्रवण्छ मे ॥

छत्रदाने मन्त्रः—

इहामुत्रातपन्नाणं कुरु मे केशव ! प्रभो ! ।

छत्रं त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया सह ॥

अथो—लक्ष्म्या । विष्णुस्मृतौ—

ज्येष्ठी ज्येष्ठायुता चैतस्यात्तस्यां छत्रोपानत्रदानेन नरी नरीक्षिपत्य-

माप्नोति इति । इयं रौच्यमन्वादिः, कौर्मकल्पादिभिः । तथा धामपुराणे—

a. This sentence is omitted in Ms. क, ख and ग. 1. पूर्वमास्या-ख;

पूर्वमास्या-क. b. Position of the "विष्णुधर्मोत्तरे" 10 "कथा लक्ष्म्या"

Omitted in Ms. ख. - 2. क ख. 3. ख न-क. ख. 4. छिन्नी-क;

छिन्नी-ख. 5. तत्र छत्रं-क. Omitted in Ms. ग. 6. तत्र-क. 7. त

क-क, ग. 8. प्रा-क. 9. यं न-य. 10. अ । प्रा-क.

उदकुभाम्बुदानं च तालवृन्दं सचन्दनम् ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु ॥ इति ।

इति ज्येष्ठकृत्यानि ॥

अथ आषाढकृत्यानि ।

आषाढकृष्णतृतीया आग्नेयकल्पादिः । आषाढमा चैत्रकल्पादिः ।

¹ आषाढशुक्लद्वितीयाकृत्यं तिथितत्त्वे स्कान्दे—

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुण्यसंयुता ।

तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह ॥

यात्रोत्सवं प्रवर्त्यैव प्रीणयेत्तु बहून् द्विजान् ।

ऋक्षाभावे तिथौ कार्या सदा सा प्रीतये मम ॥

इति । मां—जगन्नाथम् ।

आषाढशुक्लचतुर्थी राघवन्तरकल्पादिः । अषाढस्य शुक्लदशमी ² पौर्णमासी

च मन्वादिः । निर्णयस्तु पूर्वमुक्तः । आषाढभाद्रकृतिकशुक्लद्वादशीषु

³ अनुरागभध्वनरेवतीयुक्तामु पारणं न कार्यमित्युक्तं धविष्ये—

अममकासितपक्षेषु भैत्रध्वनरेवती ।

संगमे नैव भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीं हरेत् ॥

a. Portion from 'अममका' to 'राघवन्तरकल्पादिः' is omitted in Ms. B.

1. तिथितत्त्वे अषाढस्य स्कान्दे—अ, क. 2. अ-क. This

sentence is omitted in Ms. B. 3. अनुरागभध्वनरेवती—अ, क. अनुरागभध्वनरेवती ।

अ-क, क. अनुरागभध्वनरेवती । अनुरागभध्वनरेवती । अनुरागभध्वनरेवती । अनुरागभध्वनरेवती ।

इति । अत्र विशेषो विष्णुधर्मे—¹

मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः

श्रुते² मध्ये परिवर्त्तमेति ।

पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति

सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ।

इति । इदं तु वचनद्वयं महानिबन्धेष्वदृष्टत्वादनाकरमपि लोके बहुलप्रसिद्धे-
लिखितम् ।

आषाढशुक्लैकादश्यां तद्द्वादश्यां वा विष्णुशयनोत्सवः कर्तव्यः ।

³ तदुक्तं ब्राह्मे—

एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः ।

भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ॥ इति ।

भविष्ये—

द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्थापावर्त्तनोत्सवाः । इति ।

⁴ वाराहे—

द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसंभवे ।

आभाकासितपक्षेषु शयनावर्त्तनादिकम् ॥

इति । तत्र विशेषः—⁵

निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् । इति । एताश्च

द्वादश्यो रात्रिसन्ध्यादिनेष्वनुराधाश्रवणरेवतीनामादिमध्यान्त्रभागयुक्ताः स्नापा-
दिषु प्रशस्ताः । तथा च नारदीये—

1. नौसरे-ख.

2. संते ख-ख.

a. This sentence is omitted in Ms. ख.

3. त ह्ये omitted in Ms. ग.

b. This, and the following stanza are found only in Ms. ख.

c. From "तत्र विशेषः" to "रात्र्यादिगतो ब्राह्मः"—omitted in Ms. ग.

4. क्ताः प्र-क, ख.

मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः
 श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति ।
 पोष्णावसाने च सुरारिहन्ता
 प्रबुध्यते मासचतुष्टयेन ॥

इति । रात्र्यादिषु नक्षत्रभागानामभावे द्वादशीनक्षत्रमात्रयोगेऽपि रात्र्यः दिगतो
 ग्राह्यः । अत्र द्वादश्यामिति पारणाहर्विवक्षितम्, “पारणाहे पूर्वरात्रे घण्डादीन्
 वादयन्मुहुः” इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । यदा तु द्वादशीषु नक्षत्राणि न
 सन्त्येव, किन्तु एकादशीषु त्रयोदशीषु वा तदा तत्रापि तत्तन्नक्षत्रभागे एव
 निशादिवेलानादरेण प्रस्वापादि कार्यम् ।

अप्राप्ते द्वादशीमृक्षे उत्थानशयने हरेः ।
 पादयोगेन कर्तव्ये नाहोरात्रं विचिन्तयेत् ॥

इति जीमूतवाहनोदाहृतवचनात् । क्वचित्तु आषाढकार्तिकपौर्णमास्योः
 स्वापप्रबोधावुक्तौ—“क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद् हरिः, निद्रां
 त्यजति कार्तिक्याम्” इति । चातुर्मास्यव्रतारम्भोऽपि आषाढशुक्लैकदशी-
 द्वादशीपूर्णमासु कर्कसंक्रान्तिदिने वा विकल्पेन कर्तव्यः ।

एकादशीं तु गृह्णीयात् संक्रान्तौ कर्कटस्य वा ।
 आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्योदितं व्रतम् ॥

इति सनत्कुमारवचनात् । “आषाढशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्योदयापि वा”
 इति बराहपुराणञ्च । अत्रैव चातुर्मास्यारम्भो भारते उक्तः—

a. Portion from “यदा तु” to “बराहपुराणञ्च”—omitted in Ms. च.

1. च स्व-ग. 2. पौर्णमासीषु-ग. 3. न्तौ वा-ग. 4. च-ग.
 5. च । भारते-क. ग; च । महाभा-च. b. This sentence is omitted
 in Ms. च.

आषष्ठे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।

चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद् यत्किञ्चित्प्रयतौ नरः ॥

इति । अस्य नित्यत्वमत्रैषोक्तम्—

वार्षिकान् चतुरी मासान् वाहयेत् कैनचिन्नरः ।

व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं बत्सरोद्भवम् ॥

असंभवे तुलार्कं तु कर्त्तव्यं तत् प्रयत्नतः ।

² इति वृद्धगार्ग्यः । अस्यारम्भः शुक्लपक्षीदाबपि कार्यः ।

न शेषवं न मौढ्यं च शुक्लपुर्वोर्न वा तिथेः ।

खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः ॥

³ इति वचनात् । इदं ⁴ द्वितीयाद्यारम्भविषयम् । एवमाशीचादाबपि द्वितीयाद्यारम्भो भवत्येव,

अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ।

व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ इति स्कान्दोक्तेः ।

⁶ “प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्” । इति विष्णुवचनाच्च । यत्तु,

असंक्रान्तं तथा मासं देवपितृभ्यो च कर्मणी ।

⁷ मलमासमशीचं च वर्त्तयेन्मतिमान् नरः ॥

इति भविष्यपुराणवचनं तत्प्रथमारम्भविषयम् । व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये—

1. त्वं तत्रे—ख, ग. 2. इति ख-ग-घ and द. 3. अरम्भ-कार्यः

विष्णुव्रत-विषयः 4. यो-व.

5. ति-विष्णु-क, ख, ग. 6. व्रत-व्रत-ख, ग. 7. तं

तथासौचं-घ.

एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः ।

आभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥

^a चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनाबद्धि ।

इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽञ्जुत ! ॥

^b इदं व्रतं मया देव ! गृहीतं पुरतस्तव ।

निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ! ॥

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव ! यद्यपूर्णं च्छिद्ये ह्यहम् ।

तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ! ॥

¹ इति संकल्पमन्त्रः । अत्र इममिति स्थाने करिष्यमाणव्रतस्य निर्देशः

² कार्यः । चातुर्मास्यव्रतानि च तत्रैव—

^c तैलस्य वर्जनाद्राजन् ! सुन्दरांगः प्रजायते ।

कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥

मधुस्वरो भवेद्राजन् ! पुरुषो गुडवर्जनात् ।

योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ॥

फलत्यागाच्च मतिमान् बहुपुत्रश्च जायते ।

³ ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ॥

शाकपत्राशनत्यागी अपक्वादमलो भवेत् ।

⁴ पादाभ्यंगपरित्यागी स्थिरोऽभ्यंगस्य वर्जनात् ॥

a. This Stanza is found only in \mathcal{H} , b. Portion from "इदं व्रतं" to "व्रताभ्याह" (Page 46) is omitted in Ms \mathcal{H} , c. This Stanza is omitted in \mathcal{K} 3. स्तु- \mathcal{H} . 4. नात्- \mathcal{H} , \mathcal{V}

दीप्तिमान् दीप्तकरणो यक्षो द्रव्यपतिर्भवेत् ।

दधिदुग्धतक्रनियमी गोभक्तो गोपतिर्भवेत् ॥

^a इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकस्य वर्जनात् ।

^b लभते सन्तति दीर्घा तैलपक्वविवर्जनात् ॥

भूमी प्रस्तरशायी च विष्णोरनुचरो भवेत् ।

भूमी भुङ्क्ते यस्तु नरः स पृथिव्याः पतिर्भवेत् ॥

सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात् ।

निर्व्याधिर्नीरुगोजस्वी सुरामद्यविवर्जनात् ॥

^c एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।

धारणाभिर्नरो नित्यं गंगास्नानफलं लभेत् ॥

धारणाम्रखलोम्नां च गंगास्नानं दिने दिने ।

मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञास्खलिता भवेत् ॥

नमो नारायणायेति जपन् यज्ञफलं लभेत् ।

¹ पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेत् गोदानजं फलम् ॥

प्रदक्षिणशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ।

हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ॥

एकभक्ताशनाभित्यमग्निहोत्रफलं लभेत् ।

उपोषणफलं भुङ्क्ते रंभापालाशपत्रकैः ॥

a. This and the following two lines are omitted in Ms. १. b. This line is omitted in Ms. २. c. This stanza is omitted in Ms. ३.

1. १-११.

अन्येषु यो नरो भुङ्क्ते कुक्षेत्रफलं लभेत् ।

अन्येषु - पत्रेषु ।

एवमादिव्रते पार्थ ! तुष्टिमायाति केशवः ॥

इति । अत्र एकभक्तव्रते विप्रमिथुनं पूजयित्वा धेनुदानमन्ते कार्यम् ।
सन्ध्यायां दीपदाने समाप्तौ सुवर्णदीपिकां¹ सबस्त्रां दद्यात् । पत्रभोजने
कांस्यपात्रं² गोयुतं दद्यात् । यत्र नोक्तं तत्र धेनुं दद्यात्, “चातुर्मास्यव्रतं
कृत्वा व्रतान्ते गोवृषप्रद” इति वचनात् । प्रदक्षिणं कृत्वा वस्त्रं दद्यात् ।
तत्रैव,

चतुरो वार्षिकान् मासान् नियमो येन यः कृतः ।

कथयित्वा द्विजेभ्यस्तं दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम् ॥

दत्त्वा विसर्जयेद्विप्रास्ततो भुञ्जीत वाप्यतः ।

इति । श्रावणादिषु मासेषु प्रत्येकं व्रतान्याह भविष्ये—

श्रावणे वर्जयेच्छाकं क्षधि भाद्रपदे तथा ।

दुग्धमाश्वयुजे³ मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत् ॥

स्कान्दे—

चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवासिनाम् ।

प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः ॥

द्वितीये मासि कर्तव्यं द्विदलमनुत्तमम् ।

पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ॥

द्विदलं बहुबीजं च वृताकं चैव वर्जयेत् ।

नित्यान्येतानि⁴ विप्रेन्द्र ! व्रतान्याहुर्मन्वीर्यिणः ॥

१. कक्षयुता-क.

२. अनुक्ती त-ग.

३. This line is omitted in Ms. B.

४. से-क, ग.

५. राजेन्द्र-क.

तथा,

जम्बीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम् ।
कूश्माण्डं चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद् बुधः ॥

तथा,

विशेषाद्वदरीं धात्रीं कूश्माण्डं तित्त्रिणीं त्यजेत् ।
जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथञ्चित् कायशोधनम् ॥ इति ।
वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान् नरः ॥
अनृतौ वर्जयेद्भार्या मांसं मधुपरोदनम् ।
पटोलं मूलकं चैव वृताकं च न भक्षयेत् ॥

इत्यादि । शाकशब्दश्च दशसु रूढः,

मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः ।

त्वक् पुष्पं कवचं चैव शाकं दशविधं स्मृतम् ॥

इत्युक्तेः । करीरं—वंशाग्रम् । अधिरूढम्—अंकुरः ।

कवचं छत्राकसदृशम् । आचारप्रदीपे—

वृताकं च कर्लिंगं च बिल्वोदुंबरभिस्सटम् ।

उदरे यस्य जीर्यन्ति तस्य दूरतरो हरिः ॥

भित्तसदृशम्—अधोभाषम् । भीस्सटेति दीर्घपाठे तु भीस्सटं श्लेष्मातकम्
इति धर्मन्तरिनिघण्टुः ।

1. इत्यह—अ; इति—अ.

a. कव.....शम् omitted in Ms. अ.

2. दा—क, अ.

तथा,

निष्पावान् राजमार्षाश्च मसूरं संधितानि च ।

वृंताकं च कर्जिगं च सुप्ते देवे विवर्जयेत् ॥

संधितानि लवणशाकादीनि । अत्रैव^a तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायाम् ।

¹ आषाढ्यां कोकिलाव्रतारम्भः उक्तो भविष्ये—

आषाढपीर्णमास्यां तु संध्याकाल उपस्थिते ।

संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥

स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।

भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥

इति । अस्य नक्तव्रतत्वात्प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।^b अस्यां किञ्चिद्दानमावश्यकम् ।
तदुक्तमयोध्याकाण्डे भरतशपथेषु—

* आषाढी कार्तिकी माघी तिथयः पुण्यसम्भवाः ।

अप्रदानवतो यान्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

इति । अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । “दिनद्वये
तादृशी चेत् परैवे”ति संन्यासपद्धतौ ।^c इयं मन्वादिः ।

इत्याषाढकृत्यानि ॥

a. This Sentence is omitted in Mss. क. and ग. 1. उपपत्तीर्णमास्यां
कोकिलाव्रतमुक्तं स्कान्दे हेमाद्रौ भविष्ये-घ. 2. झ-ग. b. अस्यां.....
यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ इति—omitted in Ms. घ. c. Portion from ‘इयं
मन्वादिः’ to ‘कार्यमिति विबोधास्तीये’ (Page 49) omitted in Ms. घ.

* भुवि तपाडे न दृश्यते ।

अथ श्रावणकृत्यानि ।

श्रावणादिमासचतुष्टये कृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यशयनव्रतम् । तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, “एकभक्ते दिवानक्ते निशि चन्द्रोदयव्रते । तिथि-
स्तात्कालिकी ग्राह्या” इति मंदमरत्ने स्मृतिसंग्रहवचनात् । चन्द्रोदयव्रतत्वं
चास्य, “चन्द्राय^२ चाघ्यो दातव्यो दध्यक्षतविभूषित” इति चन्द्रोदये चन्द्रार्घ्यदा-
नविधानात् । दिनद्वये तत्र सत्त्वेऽसत्त्वे वा परा,

चतुर्ध्वसितपक्षेषु मासेषु श्रावणादिषु ।

अशून्याख्यं व्रतं कुर्याज्जायया तु फलाधिकम् ॥

इति मदनरत्नोदाहृतवचनात् । अत्र पूर्णिमान्तो मासो ग्राह्यः इति हेमाद्रौ ।

श्रावणकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा । सा परेलि दिवोदासीये ।

श्रावणकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा । सा च सायाह्नव्यापिनी
ग्राह्या । दिनद्वये तत्रात्वे तु पूर्वा । अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च कार्यमिति
दिवोदासीये ।

श्रावणकृष्णतृतीयायां श्रवणयुक्तायां विष्णुपूजा । तदुक्तं हेमाद्रौ
विष्णुधर्मोत्तरे—

तृतीया श्रावणे कृष्णा या स्याच्छ्रवणसंयुता ।

तस्यां संपूज्य गोविन्दं तुष्टिमग्र्यामवाप्नुयात् ।

-
१. होस्ते:-ग. २. य चाघ्यो-ख. ३. र्घ-ख. ४. सा च य-ख.
५. श्रावण...दिवोदासीये—omitted in Ms. ग. ६. च-ख. ७. नमिति-ख.
८. अस्यासौ च श्रवणयुक्तायां विष्णुपूजा हेमाद्रौ धर्मोत्तरे-ग. ९. ग्रामवा-ख, ग्र्यां स
मा-घ.

इति । श्रावणशुक्लचतुर्थी सोमकल्पादिः । श्रावणशुक्लतृतीया मधुश्रावाख्या
गुर्जरेषु प्रसिद्धा । सा पर्युता ग्राह्येति दिवोदासीये ।

श्रावणशुक्लचतुर्थी दूर्वागणपतिव्रतम् । तत्र सा मध्याह्नव्यापिनी
ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ च पूर्वा । तथा च बृहस्पतिः—

चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते ।
मध्याह्नव्यापिनी सा तु परतश्चेत् परेऽहनि ॥

इति । श्रावणशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता भविष्ये—

श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप ! ।
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ।

पूजयेद् विधिवद् ²क्षीरदधिदूर्वा²कुरैः कुशैः ।
गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥

ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः ।
न तेषां सर्पतो वीर ! भयं भवति कुतश्चित् ॥

इति । अत्र पञ्चमी परा ग्राह्या,

श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ।
तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिता (?) ॥

इति मदनरत्नोदाहृतवचनात् । इयमेव रौरवकल्पादिः ।

³श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिघृतारम्भः प्रागुक्तः । तत्र तक्रादीनां न

-
1. ग्राह्या ।- क, ख, ग. 2. वीर ! ख, ग; वारं-व. a. This and the following 3 lines upto वचनात् are omitted in ख, ग and घ.
3. तं प्रागुक्तम्-घ.

निषेधः¹, दधित्वाभावात् । अत्रैव² द्वादश्यां विष्णोः पवित्रारोपणं हेमाद्रौ
विष्णुरहस्ये—

श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे³ दिवाकरे ।
द्वादश्यां वासुदेवस्य पवित्रारोपणं स्मृतम् ॥
द्वादश्यां श्रावणे वापि पञ्चम्यामथवा द्विज ! ।
अनुकल्पेषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ॥

इति । शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे,

आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम् ॥

इति । अधिवासनं तु दीपिकायाम्—

गोदोहनान्तरिते काले पूर्वैद्युरधिवासनम् । इति ।

गौणकाल उक्तो रामार्चनचन्द्रिकायाम्—

पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेच्चदि ।
कार्तिक्यवधि शुक्रास्ते⁴ कर्तव्यमिति नारदः ॥

शुक्रास्तेऽपीत्यर्थः । तथा,

हेमरोप्यताम्रक्षौमसूत्रैः⁴ कौशेयपद्मजैः ।
कुशैः काशैश्च कार्पासैः ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥
कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ।
तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥

1. घः । अत्रैव—क, ख, ग. 2. अस्यामेव वि-न 3. कर्कटस्थे तु दि-घ.
4. रु प्य-न.

सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् ।

साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥

साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् ।

उत्तमं तु शतग्रंथि पञ्चाशत्ग्रंथि मध्यमम् ॥

कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रंथिशोभितम् ।

षट्त्रिंशच्चतुर्वींशद्वादशेति केचन ।

चतुर्विंशद्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ॥

इति । हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये—

कनिष्ठं तन्तुभिर्ज्ञेयं सप्तविंशतिभिः शुभम् ।

चतुःपञ्चाशता ज्ञेयं तन्तूनां मध्यमं परम् ॥

उत्तमं चैव तन्तूनां शतमष्टोत्तरं स्मृतम् ।

शिवपवित्रं तु शिवागमे—

एकादशभिर्वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया ।

पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥

द्वादशांगुलमानानि व्यासादष्टांगुलानि वा ।

लिंगविस्तारमानानि चतुरंगुलकानि च ॥

इति । तत्र मन्त्रः—

देव देव! नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।

पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥

पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव ! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ! ॥

इति मूलमन्त्रसंपुटितेनानेन दद्यात् । प्रार्थना—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ! ॥
वनमाला यथा देव ! कौस्तुभः सततं हृदि ।
पवित्रमस्तु ते तद्वत्पूजां च हृदये वह ॥

इति । एतच्च नित्यम् । तत्रैव,

न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः ।
तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ! ॥

तस्मात् भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
वर्षे वर्षे विधातव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥ इति । तथा,

पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन ।
तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः ॥

इति । श्रावणशुक्लचतुर्दशी¹ पवित्रारोपणे पूर्वविद्धा ग्राह्या, चैत्रशुक्ल-
चतुर्दशीवत् ।

अथोपाकर्म । तच्च बह्वचैः श्रावणे कार्यम् । याजुषैः पौर्णमास्यम् ।
सामगैः सिंहस्थे सूर्ये हस्तनक्षत्रे ।

सिंहे रवौ¹ हि पुष्यर्क्षे पूर्वाङ्गे विचरेद् ब्रहिः ।

छन्दोगा मिलिताः कुर्युस्तस्य सर्वच्छन्दसाम् ॥

शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्निकम् ।

इति गार्ग्यवचनात् । एषां खंडत्वे औदयिकानि ग्राह्याणि,

उदये² संगमस्पर्शे श्रुतौ पर्बणि चार्कभे ।

कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋतयजुःसामगाः क्रमात् ॥

इति पृथ्वीचन्द्रोदाहृतवचनात् । एषां^b ग्रहसंक्रान्तिदुष्टत्वे बह्वृचैः

श्रावणशुक्लपञ्चम्यां यजुर्वेदिभिर्भाद्रपद्याम् । येषां गृह्ये² आषाढी उक्ता

तैराषाढ्यां कार्यम् । वाजसनेयिभिस्तु पञ्चम्याम्, 'उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां

कार्या वाजसनेयिभि'रिति वचनात् । वाजसनेयिग्रहणं येषां गृह्ये

पञ्चम्युक्ता तेषामुपलक्षणम् । ग्रहसंक्रान्तियोगश्च अर्धसत्रात् पूर्वं विद्यमान

एव दूषको नान्यथा । तथा च गार्ग्यः—

अर्धरात्रादधस्ताच्चेत् संक्रान्तिग्रहणं तथा ।

उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न⁴ दोषकृत् ॥

इति । इयं च कर्कटस्थे भानौ निषिद्धम् । स च निषेधो नर्मदोत्तर-
भागविषयः ।

नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके ।

कर्कटे संस्थिते भानौ उपप्रकृर्न तु दक्षिणे ॥

इति वचनात् । कथं^c तर्हि नर्मदोत्तरभागगतातां शिष्टानां कर्कस्थे

1. तु-ख. a. This stanza and the Sentence following it are omitted in Ms. घ. b. portion from "एषां" to "तेषां उपलक्षणम्" is omitted in Ms. ग. 2. कर्म तु-ख. 3. घश्चेत्स्यात्-ख 4. भाक्-क c. Portion from "कथं तर्हि" to "अनाकरत्वमाहुः" (Page 55) is omitted in Ms. घ

रवावुपाकमनुष्ठानम् । अत्र केचिदस्य वचनद्वयस्य सामगविषयत्वात्
 तद्व्यतिरिक्तातां ~~कर्मस्थेऽपि सूर्ये~~ न दोष इत्याहुः । अन्ये तु सामग-
 विषयत्वस्यायुक्तत्वादेतस्य प्राच्यग्रन्थेषु दाक्षिणत्यप्राच्यनिबन्धेषु च अदृष्ट-
 त्वात् अनाकरत्वमाहुः । एतच्च शुक्रास्तादावपि कार्यम् । प्रथमारभस्तु
 तत्र न कर्तव्यः । अधिमासे न भवत्येव । सामगानां त्वधिमासेऽपि
 भवति, तेषां सिंहस्य सूर्ये विधानात् । एतच्च सामगैरपराह्णे कार्यम्,
 "शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मपरिहृत्य"मिति गार्ग्यवचनात् । इतरैः पूर्वाह्ण
 इत्यादि अन्यत्र मत्कृतौ द्रष्टव्यम् ।

श्रावण्यामाश्रलायनेन श्रवणकर्मोक्तम् — "श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवण-
 कर्म"ति । तत्रास्तमयुक्ता ग्राह्या, "अस्तमिते स्थालीपाकं श्रवणित्वे"ति
 अस्तमयकाले विधानात्; "कर्मणो यस्य यः काल " इति वचनात् ।
 याज्ञिकास्तु पौर्णमासीशब्दस्य पर्वान्त्यक्षणवचनत्वात् पर्वसन्धिदिवसे रात्रौ
 श्रवणकर्मानुष्ठानं वदन्ति । अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तं भविष्योत्तरे—

ततोऽपराह्णसमये कुर्यात् पोटलिकां शुभाम् ।
 कारयेच्चाक्षतैस्तद्वत्सिद्धा^१मचर्चिताम् ॥

इति । तत्र मन्त्रः—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।

तेन त्वामभिवध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥

इति । अत्रापराह्णव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तद्व्याप्तौ पूर्वा ग्राह्या ।

श्रावणी दौर्गन्तवसी दुर्वा चैव हुताशनी ।

पूर्वविद्वैव कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेदिनम् ॥

a. This sentence is omitted in Mss क and घ. 1. युक्—घ.

2. अभिवध्नामि रक्ष मा च-घ. b. This sentence is omitted in Ms च

¹ इति बृहद्यमवचनात् । अस्मादेव विशेषवचनादन्येष्वपि ² उपाकर्मव्यति-
रिक्तेषु ³ पवित्रारोपणादिश्रावणीकृत्येषु पूर्वैव ग्राह्या । पूर्वस्यां भद्रासत्त्वे
तूत्तरस्यामेव रक्षाबन्धनं ⁴ कार्यम् ।

भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।

श्रावणी नृपति हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥

इति वचनात् । अद्भुतसागरे नारदः—

भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः संप्रसूयते ।

मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मसैर्न संशयः ॥

तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

^b प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥

ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः ।

आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥

⁵ व्याहृतिभिश्चायं होमः ।

“सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्” इति । अथर्ववेदिनां
गृह्यपरशिष्टे—

माघे बुधे च महिषी श्रावणे ⁶ बडवादि वा ।

सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥

1. ति व-ख. 2. पि पवित्रा-घ. 3. दिषु पू—क, ख, ग. a. omitted
Ms. क, ख, and ग. b. This line and the line following it are
omitted in Ms घ. 5. स्तु हो -घ. 6. वा तथा—घ.

इति । अत्र, तत्रोक्तामृता शान्तिः कार्या ।

इति श्रावणकृत्यानि ॥

अथ भाद्रपदकृत्यानि ।

² भाद्रपदकृष्णचतुर्थ्या ³ संकटचतुर्थी⁴व्रतं ⁵ स्कान्दे-

श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्या तु विधूदये ।

गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायां⁶र्घ्यं च दीयते ॥

इति । श्रावणोऽत्रामांतमासेन ग्राह्यः, 'शुक्लादिमेव च' इति वचनात् ।

इयं चन्द्रोदययोगिनी ग्राह्या, "कर्मणो यस्य यः कालः" इति वचनात् ।

तत्काले चन्द्रार्घ्यदानविधामेन चन्द्रोदयव्रतत्वात्, "चन्द्रोदयव्रते नैव
तिथिस्तात्कालिकी स्मृता" इति वचनाच्च । दिनद्वये चन्द्रोदये संस्वे-⁸

सत्वे च पूर्वा ग्राह्या ।

चतुर्थी च तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा ।

कर्त्तव्या व्रतिभिर्वत्स! गणनाथसुतोषिणी ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः ।

चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरधोगतः ॥

1. कर्त्तव्या -ख. 2. अस्यामेव चतु-घ. 3. शुक्लच-क. 4. र्थी सं-ख.

5. र्थी । तदुक्तं स्का-ख. 6. प्रदी-घ. 7. इति । वचनात् ।

omitted in च. 7. व्यापिनी-घ. 8. त् । -क, ख, ग.

9. वा-घ.

इति वचनाच्च । न च तृतीयाविद्वाविधायकानि वचनानि दिवा त्रिमूर्त-
वेधे सत्येव प्रवर्तन्ते, न रात्रियोगमात्रे इति वाच्यम्, रात्रिसाध्यकर्मसु
रात्रावपि वेधस्य जन्माष्टमीप्रकरणे माधवादिभिर्दर्शितत्वात् । अत एव
महालक्ष्मीव्रतसमापने दिनद्वये अष्टम्याश्च चन्द्रोदयकालव्यापित्वे,

कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

पूर्वविद्धैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्रचिच् ॥

इति वचनाच्च³ पूर्वविद्धा ग्राह्येत्युक्तं हेमाद्रौ मदनरत्ने च । यानि तु,
चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते ।

⁴ मध्याह्नव्यापिनी सा तु परतश्चेत्परेऽहनि ॥

इत्यादीनि वचनानि, तानि सिद्धिविनायकादिब्रतविषयाणि, तेषु मध्याह्नस्य
कर्मकालत्वात् । “प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्मृप!” इति
वचनात् । अत एव माधवेन मध्याह्नस्य कर्मकालत्वमङ्गीकृत्यैव विनायक-
व्रते मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तम् । तस्मादुभयत्र चन्द्रोदयकाले सत्त्वे-
सत्त्वे वा पूर्वैवेति न्याय्यः पन्थाः, इत्यलं बहुना ।

भाद्रपदकृष्णपञ्चमी मानवकल्पादिः । अथ जन्माष्टमी । सा चामांत-
मासेन श्रावणकृष्णाष्टमी । पूर्णिमांतमासपक्षे भाद्रपदकृष्णाष्टमी । सा
च शुद्धविद्धभेदेन⁷ द्विधाप्यष्टमी प्रत्येकं द्विधा, द्वितीयदिने सूर्योदयोत्तरं⁸
सती असती च । तादृश्यपि पुनः प्रत्येकं द्विधा-रोहिणीसहिता तद्रहिता च ।

1. म्याश्चन्द्रो- घ, ग. 2. यव्या-घ. 3. त् पू- ग, घ. 4. पराह्न-म

a. This Sentence is omitted in Ms. घ. 5. च श्राव-घ. 6. मी

शुद्ध-क, ख, ग. 7. द्विविधा-घ. 8. द्विविधा-घ

तत्र शुद्धायां विद्धायां वा द्वितीयदिने सूर्योदयादूर्ध्वमसत्यां विवाद एव नास्ति द्वितीयदिनेऽष्टम्यभावात् । शुद्धाधिकाया विद्धाधिकाया वा दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रं विहाय रोहिणीयोगे सप्तमीविद्वानिषेधान्नवमीयुक्तायाः प्रशस्तत्वादुत्तरा ग्राह्या । यदा त्वेकस्मिन्नेव दिनेऽर्धरात्रे रोहिणीयोगस्तदा संव ग्राह्या ।

अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये सति ।
नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरात् । दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रे रोहिणीयुक्ता परैव, “संश्रद्धापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी”ति वचनेन सप्तमीविद्धायाः निषेधात् । दिनद्वयेऽपि रोहिणीयोगाभावेऽर्धरात्रव्यापिनी ग्राह्या, अर्धरात्रस्य कर्मकालत्वात् ।

दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद् रोहिणीकला ।
रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणन्दुसंयुताम् ॥

इति वचनाच्च ।

दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रे सत्त्वेऽसत्त्वे वा परा, सप्तमीविद्धाया निषेधात् । इदं च नित्यं “वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं तुष्टयर्थं चक्रपाणिनः” इति वीप्साश्रवणात् । “अकुर्वन् नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दशे”त्यकरणेपि प्रत्यवायश्रवणाच्च । काम्यं चेदं फलस्यापि श्रवणात् । तथा च स्कान्दे, “सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमीव्रते” इति । यत्तु कैश्चिद्

1. तथा—क, ग. 2. रात्रं विहाय रोहिणीयोगे सप्तमीविद्धायाः निषेधात् नवमीयुक्तायाः प्रशस्तत्वादुत्तरा ग्राह्या—घ. 3. त् । दिन—ख, ग, 4. च—ग. 5. स्य अ—ख. a. Portion from “यत्तु” to “विहितमेव” (Page 60) is omitted in Ms. घ.

उपवासस्यांगत्वमुक्तं तदयुक्तम् । “उपवासस्तु तत्रोक्तो महापातकनाशानः”
इति वद्विपुराणात् । “उपोष्या सा प्रयत्नतः” इति तत्रैवोक्तेश्च । विष्णु-
रहस्येऽपि—“मुहूर्तमपि लभ्येत सोपोष्या सा महाफला” इति उपवासाकरणे
दोषश्रवणञ्च । तथा च स्कन्दपुराणे —

शूद्राग्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्थभोजने ।

तत्पापं लभ्यते पुंभिर्जयन्त्यां भोजने कृते ॥

इति । शवहस्तस्थभोजने—शवसूतकिहस्तस्थभोजने इत्यर्थः । तथा,
गृध्रमांसं खरं काकं श्येनं वा मुनिसत्तम ! ।
मांसं वा द्विपदां भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने ॥

इति । तथा,

कृष्णाष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम ! ।

तैलोक्यसंभवं पापं तेन भुक्तं द्विजोत्तम ! ॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोवधे स्त्रीवधेऽपि वा ! ।

न लोको मुनिशार्दूल ! जयन्तीविमुखस्य च (?) ॥

जयन्तीवासिरे प्राप्ते करोत्युदरपूरणम् ।

याप्यते तिलमात्रं तु यमदूतैः कलेवरम् ॥

इति । न हि ष्वचिदंगाकरणे प्रत्यवायः श्रूयते । एकप्रयोगत्वं च
जन्माष्टमीव्रतशब्देनोभयोरेकफलोद्देशेन विधानादिकसंकल्पविषयत्वान्च विहित-
मेव पारणं तु केवलाष्टम्युपवासे दिवा, तिथ्यन्तलाभे दिवैव
तिथ्यन्ते कर्तव्यम् । रोहिणीयुक्ताष्टम्युपवासे तूभयान्ते कर्तव्यमिति मुख्यः
कल्पः । अन्यतरान्ते गौणः । यदि रात्रावुभयोरन्यतरस्य वास्तस्तदा रात्रा-
वपि पारणं कार्यम् ।

1. स्कान्दे-ख. 2. भ-ग. 3. पक्षः-व. 4. न्दो-व. 5. क्षा कार्वा-ख.

T. S. S COMPLETES 71 YEARS

Mm. T. GANAPATI SASTRI'S LETTERS—A LOOK BACK.

Vol. XXI-1
PART — B

On the occasion which the late distinguished Mm. T. Ganapati Sastri (1860-1926) who started the series wrote to contemporary scholars, Indian and European. He was the first Head of the Department for publication of Sanskrit Texts and stayed as Curator for seventeen years (1908-1925). These letters throw some light on the scholarly life of that period.

These were lent to us by Sri V. S. V. Guruswami Sastri, Retd. Professor of the Trivandrum Sanskrit College.

October 1976

Editor.

**SOME LETTERS OF MAHAMAHOPADHYAYA
DR. T. GANAPATI SASTRI**

One

श्री

अनन्तशयनम्

२०-६-०५

मान्यतेमविद्वद्वरिष्ठश्रीसंस्कृतचन्द्रिकासम्पादकश्रीमदप्पाशास्त्रिमहाशयेभ्यो
बहवः प्रणामाः ।

मत्प्रहितभक्तिमञ्जरीग्रन्थाधिगममभिनन्दन् यो मया लेख आसादितः
संस्कृतपाठशालाविश्रमवशात् सार्धं मासं देशान्तरे चरता, परतश्च पाठशालो-
द्घाटनात् पक्षमेकं देहास्वास्थ्यमनुभवता स लेखो मया यथाकालं न लब्धुं,
न चोत्तरयितुमपारीति क्षन्तव्योऽस्मि श्रीमद्भिः ।

लेखस्तु श्रीमतामव्याजसौजन्यप्रेमसारचतुरोदारैरर्थैः शब्दैश्च परिमित-
लितावदातैराह्लादं मे निरतिशयमुपजनितवान्, सत्यमसाबाह—“धन्यः स
प्रदेशो, यत्र.....सरस्वत्या अप्यव्याजप्रेमास्पदं यद्वल्लभाः प्रादुःषन्ति”
इति । ॐ राजानो ह्यस्यानन्तशयनप्रदेशस्य वर्षद्विशतीप्राक्कालात् प्रभृति
वैदुष्यविशेषशालिन एव समुपलभ्यन्ते ।

नवप्रकाशमानान्नत्यग्रन्थावलेखैर् प्रीतिपूर्वकया साहायकप्रतिज्ञया
भृशमुपकृतोऽस्मि श्रीमद्भिः साहायकं च समयेष्वर्थयिताहे ।

यत् पुनः श्रीमद्भिरुच्यते—“स्पृह्यामि च श्रीमतां परिचयाय सौहार्दाय
च” इति, तत्र तदेव वाक्यमुत्तरमीषद्व्यत्ययेन प्रतिपद्ये—स्पृह्यामि च
श्रीमतां परिचयं सौहार्दं चेति । विरला हि विश्वजनीने कर्मण्यजस्रमासज्जमाना
जगति भवादृशाः । इति शिवम् ।

भवतां मित्रं,

त. गणपतिशास्त्री.

To

श्रीमदप्पाशास्त्रिणः

संस्कृतचन्द्रिकासम्पादकाः ।

Two

अनन्तशयनम्

२१-६-०५

श्रीमन् ! सुहृत्तम,

व्यवहितमासविंशदिवसलिखितो भग्नलेखो लब्धः, किन्त्वसौ पाठशाला-
विश्रमवशात् सार्धं मासं देशान्तरे चरता, परतश्च पाठशालोद्घाटनात् पक्षमेकं
देहास्वास्थ्यमनुभवत्तम मया यथाकालं न लब्धुं न चोत्तरयितुमपार्यतेति
क्षन्तव्योऽस्मि तत्र भवता ।

अत्रस्थयोर्भूमिहालङ्कारपुस्तयोरेकं द्विशतवर्षवृद्धदेशीयं जीर्णकल्पमनति-
शुद्धं च, द्वितीयं तु तस्यैव प्रतिरूपम्, एतन्मातृकमेव चास्मन्मित्रपण्डित-
मोक्षिन्ददासगय मत्प्रहितं प्रतिरूपम्, अन्तिमश्लोकपर्यालोचनायामत्रत्यं
भामहपुस्तकं समग्रमेवेति प्रतिभाति ।

अन्यदेतत्प्रतिरूपं वैयाकरणभूषणस्य यं कमपि वा टीकाग्रन्थमुपलब्धुं
लब्धुं च प्रयतिष्ये, यत्नफलं च निवेदयितास्मि ।

प्राकृतव्याकरणसूत्रवृत्तिः [४ पत्रि.] इत्येकैकस्मिन् पुस्तकालये वर्तते
प्राकृतव्याकरणकृतिः ।

मत्प्रहिता वैयाकरणभूषणमातृका “अधिकषष्टवर्षप्राचीनेन पण्डितवरेणो-
पयुक्ता” इति मदुक्तौ ‘अधिकषष्टवर्षशतप्राचीमेन’ इत्याशयः शङ्कितो
भवता २१-७-०४ लेखे । न तथा ममाशयः, किन्तु षष्टेरधिकान्यधिकषष्टानि
यानि वर्षाणि तत्प्राचीनेनेत्येवाशयः अधिकषष्टानि इति हि ‘संख्ययाव्या-
सन्ना-’ (२-२-२५) इति बहुव्रीहिः ।

अयं तु पण्डितवरो वेङ्कटरामशास्त्रिनामात्रैव नगरे ‘Toliyai Kovil’
अग्रहारे पूर्वमासीत् । इदानीं तु जानेऽस्य पित्रा. (पन्तलम्) सुब्रह्मण्य-

शास्त्रिणमपि वैभाकरभश्रेष्ठेनेदं पुस्तकमुपयुक्तमिति । एतत्पौत्रस्य सुब्रह्मण्य-
शास्त्रिणस्तु सकाशात् पुस्तकमिदमस्त्रिमतम् ।

अत्र भुद्वयमाणे दुर्घटवृत्तितान्मिन् ध्याकरणग्रन्थेऽयं श्लोकोऽस्ति—

२ ० १ ५

‘शाकमहीपतिवाक्षरमाये एकनभोवपञ्चवित्तने ।

दुर्घटवृत्तिरकारि मुदे वः कण्ठविभूषणहारलतेव’ इति ।

इदं वक्ष्यमानं शास्त्रिकाङ्क्षणीयं वान्यदीयं वेति विर्णये यदि
कश्चिदुपायोऽस्ति, स कृपसोपदेष्टव्यो मह्यं भवत्स्य ।

शमत्र मे । तद् भवतः शश्वदाशासे महेशानात्, जिज्ञासे च ।

भवन्मित्रं,

त. गणपतिशास्त्री.

To,

K. P. Trivedi Esq.
Ahmedabad.

श्री

Three

१२-८-४.

सद्गुणभूषणाः विद्वद्वरमहाशयाः,

अस्य राजकीयसंस्कृतविद्यामन्दिरस्य पाठ्यपरीक्षाव्यवस्थाम् अद्य भवद्भ्यः
प्रहिणोमि, तस्मा च सह ‘भक्तिमञ्जरीम्’ । ते तन्न भवन्तः स्वीकर्तुं कृपां
कुर्वन्तु । ‘भक्तिमञ्जरी’ राजशासनानुमत्या भवदर्थे कल्पितः कश्चिद् विद्व-
दुपहारो भवति ।

कतिपयदिवसेभ्यः प्राग् भवदन्तिकमागच्छो ‘मयूरसन्देश’ नाम्नः

काव्यस्याङ्गलभाषानुवादः श्रीमतो मयूरसन्देशकर्तुः प्रार्थनया मया प्रेषितोऽ-
भूत् । तमपि भवन्तः स्वीकर्तुं प्रसीदन्तु ।

अत्र राजशासनेन कापि 'प्राचीनसंस्कृतग्रन्थावलिः' सम्प्रति प्रकाश-
यितुमुपक्रान्ता । तस्याश्च प्रथमो ग्रन्थो धातुविवरणरूपो 'देव'नाम ७००
वर्षप्राचीनया 'पुरुषकाराख्यया सहित इदानीं मुद्रितप्रायः । तमचिरात्
प्रेषयिष्यमाणं महाशयाः सदयमङ्गीकुर्वन्तु ।

तच्च 'भारतानुवर्णनं' सामग्र्येण मुद्रितमभूत् । भारतालेख्यस्य परं
मुद्रणमवशिष्यते । सर्वथा तत्पुस्तकं सेप्टम्बर्मासे भवद्भ्य प्रेषयितास्मि ॥

शुभम्

भवदीयो विश्वास्यः

त. गणपतिशास्त्री.

Professor Syloain Levi Esq.

9 Rue Paris.

श्री

Four

अनन्तलयनम्

१८-२-०६

श्रीमन् सुहृत्तम,

अलप्सि भवतो लेखं प्रेमभूमाभिरामम् । तेन चामोदिषि निकामम् ।

उत्तरदानविलम्बो भवादृशां नाम विश्वजनीनकर्मान्तरव्यासङ्गमवश्य-
मनुमापयन् मद्विघ्नैः स्पृहणीयोऽपि भवति । न तु सूनृतसुहृद्वाक्यरसास्वाद-
प्रतीक्षां यथाकालमचरितार्थयन् द्वेष्य एव केवलम् ।

अत्र कृतकार्यमित्येतावता भवते प्राहिणवं तद् विद्युद्वात्तप्रमाणपत्रं,
न पुनर्भवच्छङ्कितं फलमाभिसन्धाय ।

भवत्प्रश्नरत्नानां समुचितान्युत्तराण्येषु दिनेषु यत्नादुल्लिखामि ।
इतो मासादूर्ध्वं मन्ये भवत्सकाशं तानि प्राप्नुयुः ।

शमत्र । तद् भवतो जिज्ञास आशासे च ।

त. गणपतिशास्त्री.

To,
Editor,
Mitragoshthi.

श्री

Five

२०-५-०६

श्रीमद्भ्यः सकलसद्गुणशेवधिभ्यः ब्रह्मश्रीयुतैभ्यः श्रीकण्ठशास्त्रिभ्यो
बहवः प्रणामाः ।

श्रीमतामनुज्ञामादाय शृङ्गेरिपुरात् प्रस्थितोऽहं सकुटुम्बः
पाथेयसौकर्यसंविधाभिर्भवन्निदेशोपपादिताभिः प्रत्यागमयात्रां सुखेन निरवर्त्तयम् ।
महाराज्ञीविवाहदिवसस्य पूर्वेषु श्रानन्तशयनमागतः कुशली श्रीजगद्गुरुपादकृपया
वर्त्ते ।

महाराज्ञीविवाहमहोत्सवस्य तावद् वैभवमलोकसामान्यमासीदपूर्वतया
जनैरतिमात्रमभिमन्दितं च ।

अद्राक्षं च महामहिमानं श्रीमहाराजम् । स हि श्रीसद्गुरुपादसक्तः
स्वयमेवाप्राक्षीज्जगद्गुरुसन्निधिवृत्तम् । मया निवेदितञ्च सर्वं वृत्तं भृशममोदत ।
विद्वत्सम्भावनार्थं पञ्चसहस्ररूप्यबाणिकायतेग्रामस्थोपकल्पनात्मकं श्रीमदाचार्य-
चरणानामौदार्यं ब्रह्मश्रीयुतरामचन्द्रार्याणां महामनस्कता च स्वीयमहामन्दिर-
विश्राजनविषया महाराजस्य चमत्काराय महतेऽभवत् ।

आचार्यजयन्तीमहोत्सवं तमिममागामिनि वर्षे कालटिन्नामे निर्वर्त्तनीय-

मिच्छाम इत्येवञ्जातीयकस्याङ्गमुपहास्यणि श्रीसद्गुरुमुखारविन्दगलितानि
श्रीमहाराजाय न्यवेदयं, श्रुत्वा च महाराजः 'परमम्' इत्यनन्तम् ।

श्रीरामचन्द्रायैवृत्तं भूयसेऽपि श्रीमहायाजोऽष्टचक्रम् ।

श्रीमहादेवगुरुस्मृष्टारकचरणच्छायासनीडे मद्वन्दनकोटयो यथावसरं कृपया
निवेदनीया इति प्रार्थये ।

ब्रह्मश्रीकृष्णशास्त्रिभ्यः रामचन्द्रायैभ्यश्च बहव इमे मन्थीयाः नभेवाकाः ।

अनन्तशयनमाहात्म्यस्यैकं प्रतिरूपं भवदर्थे प्रेष्यमाणं स्वीकर्तव्यम् ।।
रूप्याणि मत्प्रेषितानि मन्ये श्रीमद्भिरिग्रता कालेनाधिगतानि स्युः ।

त... गणपतिशास्त्री.

To

Sri Sreekantha Sastri (Asthana Vidvan)
Sringeri Sankaracharya Mutt.

श्री

Six

११-७-०६

परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीहरिहरपुरमठमधिपस्त्रीनां स्वामिनां चरण-
कमलयोरनेककोटिवन्दनपूर्वा सप्रश्रया विज्ञापना—

श्रीस्वामिभिश्चातुमस्थितेकनपुण्येन ममं योजयितुं कामैः परमया कृपया
सम्प्रेषितामाज्ञापत्रिकां पूर्वेषुरहमलप्सि । अनेन स्वामिनामाज्ञानपुण्येन
सर्वेषामहं श्रेयसां भाजनं कृतोऽस्मि ।

किन्तु राजकीयाधिकारपरतन्त्रोऽहं चातुर्भास्यसमवे सन्निधातुमशक्तो-
ऽस्मि । इत्येतैः कालाक राजकीयानुमतिरपि सद्यो ग्रहीतुं नैव शक्यते ।

किं करोमि ? स्वाम्याज्ञानुष्ठानसौकर्यचिरहं प्रति विधीदामि केवलम् । तथापि समाश्रयसिम्, स्वामिनामनन्तस्थपमविजययात्राप्रसङ्गे स्वामिचरणवन्दनपुण्यः मे सुलभं भविष्यति इति ।

सर्वथा तत्काले तत्राहमस्मिन्नहित इत्ययमगत्योपगततो ममाप्रसङ्गः श्रीस्वामिभिः कृपया क्षन्तिष्वः, अनुग्रहं ममि कर्तव्य इति भूमेभ्यः प्रार्थये ।

त. सप्तमतिशास्त्री.

To

His Holiness Martharapura Mathadhipathi
Bri Sankaracharya.

श्री

Sevan

अनन्तशयनम्

१९-१०-०६

गुणकदप्रणीभ्यः ब्रह्मश्रीश्रीकण्ठशास्त्रिमहाशयेभ्यो बहवः प्रणामाः ।
अत्र कुशलम् । तद्भवतां मुहुर्जिज्ञासे ।

प्रमाणितप्रहितं भवत्प्रीतिलेखमलप्सि । तत्र प्रतिपादिते श्रीमज्जगदाचार्यचरणकैङ्कर्यलवे नियोज्यं मामिच्छन्ति भवन्त इति कृतज्ञोऽस्मि तत्र भवत्सु । तल्लेखानुगतवरीं तां श्रीप्रसादसम्पुटसनाथां श्रीमुखशासनपत्नीं महामहिम्ने श्रीमन्महाराजाय सकलसद्गुणैकधाम्ने समापिपं श्रीमदनन्तरामार्य-महाशयद्वारेण । श्रीमहाराजस्तां भक्तिमौखं गृहीत्वा श्रीमुखे विवृतमर्थं केरलभाषयानुवदितुमाजिज्ञप्साम् ।

अथानुवाच्य केरलभाषानुवादं सन्तोषातिशयजनितव्यप्रभावेनान्तरात्मना श्रीमहाराजः श्रीजगद्गुरुसङ्कल्पिताचार्यमूर्तिप्रतिष्ठार्थेषु पूर्वसंविधानेषु कारयितव्येष्वौत्सुक्यं भृशमाविष्कुर्वन् 'कालटिग्रामे न किञ्चिद् अद्ययावत्

संविहितम्' इति "तत्र महामात्रं चोदयिष्यामः" इति चाजिज्ञपद् इति प्रीतान्तरङ्गोजन्तरामार्यमहाशयो विस्रब्धं मामाह ।

मत्समर्पितश्रीमुखप्रतिसन्देशभङ्ग्या च श्रीमहाराजेन ह्यो मां प्रत्येवं प्रोक्तम् 'प्रसादादिकमधिगम्य निर्भरं प्रीतोऽस्मि कृतार्थश्च , श्रीमुखस्य पुनरुत्तर-निवेदनिकां महामात्यद्वारेण यथासमुदाचारं प्रेषयितास्मि' इति ।

यथाचैवं देवो महाराजः श्रद्धानः प्रसीदति तथावधारयामि भगवत्पाद-प्रतिष्ठामहोत्सवोऽचिरादेव निर्वर्त्यन्तीति । अपिच मन्ये नास्ति स कश्चित् सङ्कल्पो नाम यः श्रीजगद्गुरुपादानां मनस्याविच्छेदविषयानभिदर्शयिष्ये परमार्थतत्त्वैकगोचरेऽप्याविर्भूय स्वार्थविसंवादं प्रतिपद्यते ।

एतच्चेदानीं वोऽवश्यनिवेद्यं पश्यामि, यत् कालटिकार्यं प्रति समये समये श्रीमहाराजः स्मारयितव्यः । जानन्ति खलु भवन्तो भवदागमनकाले प्रधानन्यायसभाप्राड्विवाकं सम्प्रति करनिर्णयकार्योपमन्त्रिणं श्रीपद्मनाभार्य-महाशयम् । स प्रकृतसत्कार्यघटनलालसो गुणवांश्च श्रीमहाराजदयाबहुमान-भाजनं च । तं यदि महाप्राड्विवाकः श्रीरामचन्द्रार्यमहाशयः कीदृशी कालटि-कार्यस्थितिरित्येतावन्मात्रं लेखद्वारेण पृच्छेत्, सोऽवश्यं तं लेखमास्पदीकृत्य देवं महाराजं यथासमयमावेदयेत्, महामात्यं च पदे पदे स्मारयेत् त्वरयेच्च इति मम विस्रम्भः ।

भवतां मित्रं,

त. गणपतिशास्त्री.

To

Sreekantha Sastri

Asthana Vidvan

Sringeri Sankara Mutt.

Eight

॥ २९-६-०९ ॥

भवल्लेखमलपूस्महि, तत्सध्रीचीं च युगलाङ्गुलीयमाख्यायिकां
सपरितोषमवीवचाम । एतस्यां पदानि सरसकोमलानि वाक्यसंस्थानानि
प्रसन्नमधुरचूर्णकप्रायाणि, न च किञ्चित्पश्यामो भाषान्तरानुवादसुलभं
अभिप्रायाविष्कारकृच्छ्रं क्वचिदपि । मन्यामहे सर्वथेयमाख्यायिकासु तृतीया
जातीयास्वेका नाम, यथाजातीयास्तावदद्यत्वे निकामं काम्यन्ते, तदेतदस्माकमनु-
मोदनमाख्यायिकाकवि भवन्त आवेदयन्तु ।

त. गणपतिशास्त्री.

To,

महाराष्ट्रपण्डितः

रामबाँस बर्वे

पुना.

Nine

पण्डितकृष्णमाचार्याः,

भवत्प्रहितं 'कादम्बरीसङ्ग्रहो' नाम पुस्तकं प्राप्तम् । अत्र मुद्राक्ष-
राणां सन्निवेशजातिरतिसमीचीनावभासते । पत्राणि घनमसृणकान्तानि ।
पुस्तकबन्धच्छाया च द्रढिमचाकचक्यविशेषभृशभासुरा । बाङ्मयं पुनरत्र
निविशमानं श्रीभट्टबाणमहाकवेरिव विद्यते । गुणः स्पृहणीयः । अतः खलु
सर्वथा वाणीविलासमुद्रालयेन बहूनिमान् गुणानेवात्र समुच्चित्य दर्शयता ।
यज्जातीयाः संस्कृतमुद्रालया एकद्वे एव भारते प्रथन्ते ।

यश्च पुस्तकेऽस्मिन् भवदंशभूतो व्यापारो लक्ष्यते वस्तुवर्णनपर-
ग्रन्थसन्दर्भाणामपेक्षिताधिकानां विनाकारणमात्रलक्षणः, सोऽपि न विफलो

भावी । पेलवधियो हि बालकाः । तथाविधैर्ग्रन्थसन्दर्भैः प्रत्यूह्यमानकथानुपूर्वी-
प्रतिपत्तय उपलभ्यन्ते । ते खल्वनेन परिहृतप्रतिपत्तिप्रत्यूहा कादम्बरीकथां
कुम्भं मन्ये प्रतिपत्तारः । निशितविशालबुद्धींस्तु रसयितुं कादम्बरी समग्राङ्गा
स्थितैवेति न तैर्बालानुकूलो भवद्व्यापारचमत्कारोऽयमसूयितव्यः ।

त. गणपतिशास्त्री.

R. V. Krishnamacharya
Kumbakonam.

श्री

Ten

११-७-०७

श्रीमन्तः सहृदयधुरीणाः सुहृत्तमाः,

परुत् पूर्णः प्रैषि प्रणयभरिताभिर्भणितिभि-

र्भवद्भिल्लेखो यः शतधृतिवधूगीतिगतिभिः ।

इदानीं यश्चास्य स्थितिमिव विचिन्वन् प्रियसखः

समं मे तावेतौ हृदयममृतेन स्नपयतः ॥

दिनमनु लेखमाद्यमनुचिन्तयतापि यथा

प्रतिवचनेऽपि वशिचरमुदासितमेव ब्रूत ।

तदपि न मन्तुमर्हन् मयीरयितुं तु यतः

प्रतिवचनं सदैवमुपदातुमतृष्यमहम् ॥

ग्रन्थानां मुद्रणजुषां प्रतिरूपाणि कानिचित् ।

संविभक्तुं भवादृक्षु मयानुमतिरर्थिता ॥

नागताद्यापि सामात्यसकाशात् तदयं मया ।

लेखो मत्कृतिमात्रेण सानुगः क्रियतेऽधुना ॥

सत्यं महिमभट्टीयैर्वाक्यैः काव्यानुशासनम् ।
पूरितं हेमचन्द्रेण क्वापि क्वापि तु माम्मटेः ।

सा नाट्यवेदविश्वृतिर्बहुपत्रलोप-
संत्रोटजीर्णभृशदुर्लभपूर्णवाक्या ।
तस्या अपि प्रतिकृतिस्तदवाप्तिगृध्नु-
गोविन्ददासकिदुषे कथमप्यलेखि ॥

आदर्शान्तरसंवादक्रियामात्रोपयोगिनी ।
सर्वथावधूता सेयं काम्यते यदि कथ्यताम् ॥

भद्रत्वकाशितं यत्तच्छात्रारम्भसमर्थनम् ।
तुस्यान्निनीषाम्यादर्शान् छात्रसम्माननोत्सवे ॥

साक्षितस्यं जीवितं अस्य देहो
अस्य ज्ञत्वं सौहृदं शूरभाबः ।

प्रत्यग्रार्थग्रामचिन्ता च वृत्ति-
स्तस्मै स्वस्ति त्वादृशां पण्डितिम्ने ॥

भामह्यलङ्कारस्तु, अक्षयप्रतिरूपणोऽल्पपरिमाणत्वादगणनीयलेखनशुल्कश्च ।
वेदान्तवादावलौ प्रकाशितानां ग्रन्थानां नामावलि जिज्ञासे । बहवः
प्रणामाः ।

तः गणपतिशास्त्रीः

To,

A. Anantalwar Esq.,
Pandit, Archl. Office,
Malleswaram,
Bangalore.

Eleven

२४-१०-१९०७

श्रीमन्तः पण्डितसुहृद्वराः,

स्वस्ति स्वागतं भवद्भ्यः अस्मदभिजनदेशमवतीर्णभ्यः। चिरस्य प्रतीक्षितं भवतां प्रणयलेखं समासाद्य निर्भरमहं सन्तुष्टोऽस्मि। भवतां दर्शनं प्रति ममोत्कण्ठा बहोः कालात् प्रभृति वर्तते। निवेदिता च सा भवद्गुरोः सकाशे। अपि च, अतिदुर्लभं खलु भारते भवतामागमनम्। तदिदानीं देवात् सम्भूतम्। अस्मिन्नवसरे मम मन्मित्राणां च तृप्तये मदगृहेऽपि भवद्भिः सन्निघातव्यमिति ममाशा बलवती। स्पृहणीयदर्शन-श्चायमोषधिवनवीथीसम्पन्नः केरलदेशः। अतः सति सौकर्ये सा ममाशा पूरणीयेति प्रार्थये। अन्ततः पाण्डिच्चेरिनगरे वा भवत्सभागमो यदि मे घटेत् काममहं कृतार्थो भवेयम्।

एषु दिवसेषु देहमनसोरस्वास्थ्यमासीत्। तेन भवत्सन्दर्शनार्थां यात्रां कथमहं निर्वहेयमिति चिन्तयतो मे विलम्ब एतावान् प्रतिपत्रलेखने सञ्जातः तत्राहं भवद्भिः कृपया क्षन्तव्योऽस्मि।

साण्डीरभाषाव्याकरणस्य कञ्चिदादर्शं सम्पादयितुं तत्त्वानगरीयः कश्चित् सुहृदर्थ्यते। तस्य प्रतिपत्रिकां च प्रतीक्षमाणो वर्ते। अत्र तु तज्जातीयो न कोऽपि ग्रन्थः प्रकाशितोऽस्ति।

भारतानुवर्णनस्य द्वे प्रतिरूपे भवतां प्रणयस्याग्ने अद्य प्रेषयामि। ते भवन्तः स्वीकर्तुं प्रसीदन्तु।

विद्वत्तमेः श्रीलेखिमहाशयैः कृपया महायानपुत्रालङ्कारो मह्यं प्रहितः।

तस्य स्वल्पा एव भागाः परिशीलनाय ममावशिष्टाः । ग्रन्थोऽयमपूर्वञ्च
गम्भीरञ्च महार्थसम्भूतञ्च विद्वदेकवेद्यमहिमा च ।

असकृद् भवतां प्रणयलेखं

लब्धुकामः

त. गणपतिशास्त्री.

To,

Professor Jules Block,
C/o the Post-Master,
Calcutta.

Twelve

श्री

१४-४-१९१३

श्रीमन्तः सकलसदुपमार्हाः विद्वदवतंसाः श्रीनिवाससेट्टलूरमहाशयाः
सप्रणामं विज्ञाप्यन्ते ।

ह्यो नूतनवर्षारम्भशोभने दिने श्रीमद्भिः वञ्चिमहामात्यश्रीराजगोपाला-
चार्यमहोदयहस्तद्वारेण प्रतिपादितं राजतं पात्रम् उपपात्रसचिवं आदरात्
प्रतिगृहीतवानस्मि । एष मम सत्कारो नाम, नववर्षवर्धापनाभ्युदयो
भाविनां श्रेयसां पूर्वरूपम् । इष्टतमस्य गुणवतः सुजनस्य विदुषो विप्रकृष्ट-
देशवासिनः सकाशाद् अतर्कितोपनतं प्रीतिचिह्नं चेति देशकालादिसम्पद्योगाद्
उच्चैः प्रीतिकरो मे सञ्जातः । उपयोगसौकर्यानुकूलशिल्पभङ्गिसुभगं
भवन्नामाङ्कहृद्यं तत् पात्रयुग्मं सन्ध्योपासनायां देवतार्चने च विनियुज्यते
नित्यम् ।

यस्तदनुगामी भवतां कृपालेखः स महामात्यैः स्वहस्ताक्षरप्रमाणितः
सबहुमानं मम हस्ते समर्पितः ।

गुणलवमपि परकीयं भवद्विधाः लीकोत्तरगुणगणाभरणैः यथा
कयापि विधयोपयुज्य गुरु कुर्वन्तः स्वभावात् परितुष्यन्ति । परं च
तावता स्वोपकारिणम् अपदिशन्ते बहुमन्यन्ते । अतस्तत्र लेखे प्रकाशमानां
मद्गुणश्लाघां प्रति न मे काप्यसूया ।

सर्वथा महार्घस्य अविस्मरणीयगुणयोगिनः श्रीमतां परिचयस्य
सङ्घटनया मयि कृतोपकारातिशयेषु वञ्चिराज्यकिरीटपतिमहामात्येषु श्री-
राजगोपालाचार्यमहाभागेषु कृतज्ञताम् अनपार्थिनीं वहामि । इह कुशलम् ।

श्रीमतां कुशलमाशंसमामः

त. गणपतिशास्त्री.

To,

S .S. Setlur Esq.,

Thirteen

श्री

अनन्तशायमन्

१८-८-१९१४

भो विद्वच्चूडामणयः प्रियमित्तमहाभागाः,

जूनमासप्रहितो भवतां कृपालेखो यथाकालं मम हस्तं प्राप्तः ।
ग्रन्थप्रकाशनविषयं मत्परिश्रमम् अधिकृत्योपन्यस्तैर्भवतामभिनन्दनवाक्यैर्गवित
इवास्मि संवृत्तः । भारते भवतः पत्नीसमेतान् अचिरेण सद्रक्ष्यामीति
प्रमोदस्योपरि मे प्रमोदः । मृत्ये अक्तौर्ब्रमासस्यान्ते भवन्तः सिंहलद्वीप
जह्युः । सिंहलद्वीपाच्च प्रस्थितं भवद्विः श्रीरामसेतुरेखानुगामिना पथा
पाण्ड्यराजधानी मधुरापुरी प्राप्तव्या भविष्यति । यां संभाव्य पश्चात्
तञ्जापुरकाञ्चीपुरादिकं भवन्तः संभावयिष्यन्ति । तत्र मधुरायां भवत्समागमं
लब्धव्यमभिलषामि । अतो भवतां मधुरायां सन्निधानं यस्मिन् दिवसे
भविष्यति, स दिवसो मह्यं कृपया निवेदनीय इत्यर्थे ।

इह कुशलम् । तद् भवताम् आशाम्ने महेशानात् ।

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री.

To.

Sylvan Levi Esq.

Professor an college de France

Director d etudes a 'l' Ecole des hantes-etudes

9 Rue Guy de-la-Brosse

Paris.

Fourteen

श्री

अनन्तशयनम्

१५-१०-१४

ब्रह्मश्रीयुताः श्रीकृष्णमाचार्याः,

अस्य भासस्याष्टमेऽह्नि विसृष्टं भवत्लेखं प्रत्यैच्छम् । ये पूर्वतरे मासि भवद्भिः प्रहिता भवत्प्रकाशितस्य महाभारतस्य १८-४८ पर्यन्ता अङ्काः सोपोद्घातविषयानुक्रमाः, यश्च लेखो महाभारतविषयमदभिप्रायार्थी, या च पत्रिका अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिदानप्रार्थिनी, त एते सर्वे यथाकालं मम हस्तं प्राप्ता एव ।

किन्तु अदत्तेऽपि मूल्ये महाभारतपुस्तकस्य प्रेषणं प्रति भवतामभिसन्धिमविजानता भवद्भ्यः प्रतिलेख इयच्चिरं मया न प्रेषितः । पुस्तकं प्रत्यभिप्रायं वक्ष्यतो ममानुवाचनार्थं तत्प्रेषणमिति भवत्लेखात् साम्प्रतिकाद् भवदभिसन्धिरिदानीमवगतः । स यथा तथास्तु ।

भवदीयं महाभारतपुस्तकमिह वर्तमानं बहोः कालात् प्रागेव तत् इतो मया वाञ्छितम् । दिष्ट्या महाभारतविषयो मूढगमहोद्यमः समुद्र

इव दुस्तरोऽपि भवद्भिर्निस्तीर्णः । भवदीयं महाभारतपुस्तकं शुद्धिगुणाद्
अक्षरपङ्क्तिविन्याससौष्ठवाद् विशदविषयानुक्रमनिवेशाद् उपोद्घातादियोजनाच्च
पिपठिषून् प्रति परमोपकारकारीत्यत्र कः सन्देहोऽस्ति । उक्तैर्गुणैरिदं
वः पुस्तकं मुद्रितपूर्वाणि महाभारतपुस्तकान्यतिशेत् इति मे मतिः ।
महतोऽस्य परिश्रमस्य फलमनुरूपं पञ्चमवेदपरमाकूतभूतो देवो वो
देयात् ।

संस्कृतग्रन्थावलिप्रदानसम्भाव्यनामावलौ विश्वजनीनव्यवसायानां भवता-
मपि नामधेयं निवेश्यमेव । तत्र राजशासनानुमतिसम्पादनार्थं यतिष्ये
यथावसरम् ।

भवत्पुस्तकानां बहूनां विक्रय्युष्णं प्रति श्रीमन्त एतद्राज्यमहामात्याः
प्रार्थनीया इति भवतां मन्ये नाविदितम् ।

TO,

Brahmasri

T. R. Krishnamacharya,

Proprietor, Madhva vilas Book Depot,

Kumbakonam.

Fifteen

श्री

२-२-१९१५

भो विद्वदवतंसाः प्रियमित्रमहाभागाः,

भवत्क्षेमवार्तां चिरस्य जिज्ञासमानोऽहं दिष्ट्या तन्निवेदकं कमपि लेखं
भवदन्तेवासिना श्रीयुतसुब्रह्मण्यार्येण प्रहितम् अलप्सि । षण्मासेभ्यः
प्राङ् मत्प्रहितस्य लेखस्य सद्यः प्रत्युत्तरालाभात् तदानीं युद्धवातप्रसरणाच्च
मदाशंसितो मधुरापुरे भवत्समागमो विघ्नित एवेति तदैव निरचिनवम् ।

अयं भवत्समागमाशाभङ्गो मे दैवकृतो मानसम् अतिमात्रं व्यथयति । असाहस-
लभ्यमानपरिमितार्थसन्तुष्यत्प्रजाभूयिष्ठः क्वायं लोकः । क्व चेदं प्रजा-
नियामकान्तं युरोपनाथानाम् अतिशयितकुरुपाण्डवसङ्ग्रामम् इतरेतरायोधनम् ।
एतन्निमित्तं जनसंक्षयं जनसंक्लेशांश्च नानाप्रकारान् शृण्वतो मे हृदयम्
आविश्यत इव महतान्धकारेण । अस्यां दशायां आयुष्मतोर्भवत्कुमारयोरेपि
युद्धरङ्गावतरणं सम्प्रति विज्ञातवानस्मि । अत्र विषये भवतां चित्तवृत्ते-
रतिभिन्नैव मे चित्तवृत्तिः ।

यथा च दीर्घायुषो भवत्पुत्रौ कृतार्थौ युद्धरङ्गाद् अक्षताङ्गौ प्रत्या-
गत्य प्रियं पितरम् अचिराद् आनन्दयेताम्, तथानुग्रहकरणाय मदिष्टदेवताम्
अनुदिवसं प्रार्थये ।

भवतां सर्वतः क्षेमं सर्वदा जिज्ञासुः

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री,

To,

Sylvan Levi Esq.

Sixteen

श्री

१६-१-११

श्रीमत्पुरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीण्यमनियमा-
सनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चक्रवर्त्यना-
द्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषड्दर्शनप्रतिपादकवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रसूक्तन्त्रा-
दिराजधानीविद्यानगरमहाराजधानीकर्णाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्रा -
जाधिराजगुरुभूमण्डलाचार्यशुश्रूष्यशृङ्गपुरवराधीश्वरतुङ्गभद्रातीरवासिश्रीमद्विद्या-
शङ्करपादपद्माराधकश्रीजगद्गुरुश्रीमत्सच्चिदानन्दस्त्रिवांभिनवनृसिंहभारतीस्वा -

मिगुरुकरक...संजातश्रीजगद्गुरुशृङ्गेरीश्रीचन्द्रशेखरभारखीमहास्वामिनां चरण
क्रमशः साष्टाङ्गप्रणामसहस्रसमर्पणपूर्वा विज्ञापना—

श्रीमहास्वामिकृपया प्रहितान् परमपुरुषार्थसाधनपदीयसः श्रीशारदा-
प्रसादमन्त्राक्षतान् श्रीव्यासप्रसादाक्षतांश्चाशीर्वादिशासनसनाथान् भक्तिपुरःसर
स्वीकृत्य सकुटुम्बः कृतार्थोऽभूवम् ।

अत्रत्यमहाजनार्थं तान् प्रसादमन्त्राक्षतान् गायत्रीजपदिवसमिलि-
तायै महाजनसभायै यथासमुदाचारं समर्पिषम् ।

भूयश्चेदुशानामनुग्रहविशेषाणां यथायं जनः पात्रतां प्रतिपद्येत, तथा
श्रीमहास्वामिनां कृपा समेधतामिति प्रह्वः प्रार्थये ।

राक्षसश्रावणबहुलषष्ठी
सोमवारः अनन्तशयनात् । }

शिष्यपरमाणुः
त. गणपतिशास्त्री.

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावल्याः प्रेषितचरान् अङ्कान् अनु एकत्रिंशदीनां
द्वाचत्वारिंशपर्यन्तानाम् अङ्कानां एकैकं प्रतिरूपं श्रीमहास्वामिपादात्
सदयस्वीकरणानुग्रहायाद्य प्रहिणोमि ॥

Seventeen

श्री

श्रीपद्मनाभः शरणम् ।

अनन्तशयनम्
१७-१०-१९१७

श्रीमन्तः विचक्षणवरेण्याः प्रियसुहृदः,

लब्धौ भवतां कृपालेखौ यथाकालम् । श्रीभर्तृहरेः समाधिस्थानं
किमपि भवदुक्तातिरिक्तं शक्यशङ्कं स्यान्न वेति विमुञ्चत । युक्त्याभासोऽपि
भवन्मतप्रतिकूलो मया नासादितः । अतस्तत्सुमाधिस्थानत्रियोषं सम्मोक्तो-

पपत्तियुक्तं ज्ञापयन्तो लोकस्य परमाप्ता भवन्त इति मे मतिः ।

तदिदं भवद्भिरुच्यमानं तस्य तत्र भवतो देहत्यागस्थानं नूनं, नियतवास-
स्थानं तु काममन्यत् स्यात् तपश्चरणस्थानं वा । अत एव हि केचिद्
वर्णयन्ति—ऋस्थाब्दीयस्य नवमशतकस्य मध्यात् प्रभृति आद्वादशशतकं
वङ्गमगधाधिपत्यं भृतवद्भिः पालराजैः चरणाद्रौ निर्मितस्य गिरिप्राकार-
स्यैकदेशो भर्तृहर्षाश्रमत्वेन कीर्त्यत इति ।

पारियात्रमन्तरेण यदभिहितं भवद्भिः तदपि जाने समीचीनमेवेति ।
तस्य खलु कुलगिरेः पर्वतसमष्टिरूपत्वाहस्यं परितो यात्रया दृश्यं इति
वा, परितो यात्रायां भव इति वा व्युत्पत्त्या समनुगतार्थनामधेयस्याति-
दूरायतत्त्वमुपपन्नं, तत्प्रसरवीथ्युपश्लेषभाजां च अबुदादीनां व्यष्टीनामवान्तराख्य-
विशेषजुषामपि तस्मिन्नन्तर्भावो वक्तुं युक्तः ।

कार्यान्तरव्यासङ्गवशोपजातमियन्तं ममोत्तरदाने विलम्बं भवन्तः
कृपया क्षन्तुमर्हन्ति । विमर्शकुशलाः भवन्त ईदृशानां वस्तूनां समालोचन-
कर्मणि प्रशंसनीये मम बुद्धिं यन्नियोजन्ति, स एव सर्वथा मां प्रति
महान् भवदीय उपकार इति मे निश्चयः ।

विश्वजनीनभवदुद्यमसिद्ध्याशंसुः

त. गणपतिशास्त्री.

Chavali

Yajneswara Somayaji Sarma,

Billakarru,

Via, Kottapet Post

Godavari Dist.

श्रीमन्! श्रेष्ठमित्रमहोदय! विद्वत्तम!

दिष्ट्या चिरपर्युत्सुकोऽहं दूरदीर्घविप्रवासप्रत्यागतमिव प्रियं बन्धु-
भवत्कृपालेखमिदानीं आसादितवानस्मि । दिष्ट्या दुष्टदस्यूपप्लवसंकुल-
स्यात्मदेशस्य रक्षार्थं युद्धरङ्गं प्रविष्टौ भवत्प्रियपुत्रौ कृतकृत्यौ च कुश-
लिनी च; दिष्ट्या युद्धे अन्वौषधशालनिशारक्षिककर्मणि अमेरिकादिदेश-
दूतव्यापारे च भवदुपात्ताः परिश्रमाः सफलाः शुभावसानाश्च । दिष्ट्या
जनसमुदायक्षेमार्थमित्थमायस्यतां प्रान्सदेशजन्मनाम् इङ्गलाण्डदेशभुवां च
वीरशूरविद्वन्महोदयानां निरन्तरैरतिमहद्भिः प्रयत्नैर्दमिताः सर्वे निष्कारण-
नृशंसकर्मप्रवृत्ता जर्मन्यदस्यवः । दिष्ट्येदानीं कृत्स्नस्य लोकस्य पीडाः
प्रशान्ताः क्षेमं च प्रत्यापन्नं सर्वेश्वरप्रसादात् । सर्वथाऽनेन सर्वप्रकार-
कल्याणशंसिना भवत्कृपालेखेन प्रमोदस्य परां कोटिमधिरूढोऽस्मि ।

अहमिह सकुटुम्बः कुशली । पूर्वतरे वर्षे निखिलभारतवर्षीय-
संस्कृतसाहित्यसंमेलनमहासभायां पञ्चममधिवेशनं यत् प्रयागे निर्वृत्तं,
पिब्रवरिद्वादशत्रयोदशयोदिनयोस्तत्र सम्भाषितत्वं विदुषां प्रार्थनयाङ्गीकृत्य
प्रयागं गतोऽभूवम् । तद्वशाच्च हरिद्वारपर्यन्तपुण्यतीर्थयात्रां दारसहितः
कृतवन्मस्मि । अथ जून मासे चक्रवर्तिजन्मक्षमहोत्सवे महामहोपाध्यायपद-
लाभ इमं मे तीर्थयात्राभ्युदयमन्वजायत ।

संस्कृतग्रन्थावलिव्यापार इदानीमपि वर्तते । एकषष्टितमादीन् पञ्च
षष्टितमान्तांस्तस्या अङ्कान् भवदङ्गीकारायाद्य प्रेषयामि ।

मञ्जुश्रीमूलतन्त्रस्य मुद्रणम् आरब्धम् । तस्य प्रथमं भागं पञ्चषै-
 मसैर्भवत्सकाशं प्रेषयेयमिति मे निश्चयः । भरतनाट्यशास्त्रवृत्तेरभिनव-
 गुप्तीयाया आदर्शान्तरमेकं चिरमृग्यमाणमिदानीं क्वचिदस्तीत्यवगतम् ।
 तत्प्राप्त्युत्तरं सापि मुद्रयितुमारप्स्यते । बुद्धचरितं मङ्गासूराजकीयग्रन्थ-
 शालाध्यक्षेण मुद्रितमिति तन्मुखादेव श्रुतम्; किन्तु नाद्यापि तद्
 बहिरवतीर्णम् । शृङ्गारप्रकाशो नामातिविपुलः साहित्यग्रन्थो भोजदेवप्रणीत
 उपलब्धः, यं विद्याधर एकावल्याख्यालङ्कारग्रन्थकारः प्रमाणयति । नारदस्मृते-
 र्व्यवहारभागस्य भवस्वामिभाष्यम्, ऋग्वेदस्य स्कन्दस्वामिभाष्यं चोपलब्धमेषु
 दिवसेषु ।

मत्परिश्रमं प्रत्यभिनन्दनविशेषं विधातुं लण्डनस्थभारतकार्यालय-
 पुस्तकशालाध्यक्षो यत् तत्र भवता प्रबोदितः, तत्राहं कृतज्ञोऽस्मि ।

निर्मण्डलीमधिकृत्य समनन्तरलेखे वर्णयितुमिच्छामि । सदारं तत्र भवन्तं
 भारते संपश्येयमिति योऽसौ मम मनोरथो वर्षपञ्चकात् प्रागुत्पन्नः इयच्चिरं
 हृदि प्रसुप्तः स इदानीमनेन भवत्प्रीतिलेखेन प्रबोधितः । सफलश्राय-
 मच्चिराद् भविष्यतीति मे दृढो विस्मम्भः । 'जीवन् भद्राणि पश्यति' ।
 सकुटुम्बस्य भवतः कुशलवार्तां मुहुर्ज्ञातुमुत्कण्ठितोऽस्मि ।

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री.

To,

Professor Sylvan Levi Esq.

श्रीमन्! श्रेष्ठमित्रमहोदय! विद्वत्सम!

दिष्ट्या चिरपर्युत्सुकोऽहं दूरदीर्घविप्रवासप्रत्यागतमिव प्रियं बन्धुं भवत्कृपालेखमिदानीं आसादितवानस्मि । दिष्ट्या दुष्टदस्यूपप्लवसंकुल-स्यात्मदेशस्य रक्षार्थं युद्धरङ्गं प्रविष्टौ भवत्प्रियपुत्रौ कृतकृत्यौ च कुशलिनौ च; दिष्ट्या युद्धे अन्वौषधशालनिशारक्षिककर्मणि अमेरिकादिदेश-दूतव्यापारे च भवदुपात्ताः परिश्रमाः सफलाः शुभावसानाञ्च । दिष्ट्या जनसमुदायक्षेमार्थमित्यमायस्यतां प्रान्स्देशजन्मनाम् इङ्गलाण्डदेशभुवां च वीरशूरविद्वन्महोदयानां निरन्तरैरतिमहिद्धिः प्रयत्नैर्दमिताः सर्वे निष्कारण-नृशंसकर्मप्रवृत्ता जर्मन्यदस्यवः । दिष्ट्येदानीं कृत्स्नस्य लोकस्य पीडाः प्रशान्ताः क्षेमं च प्रत्यापन्नं सर्वेश्वरप्रसादात् । सर्वथाजनेन सर्वप्रकार-कल्याणशंसिना भवत्कृपालेखेन प्रमोदस्य परां कोटिमधिरूढोऽस्मि ।

अहमिह सकुटुम्बः कुशली । पूर्वतरे वर्षे निखिलभारतवर्षीय-संस्कृतसाहित्यसम्मेलनमहासभायां पञ्चममधिवेशनं यत् प्रयागे निर्वृत्तं, पिब्लवरिद्वादशत्रयोदशयोर्दिनयोस्तत्र स्थापितत्वं विदुषां प्रार्थनयाङ्गीकृत्य प्रयागं गतोऽभूवम् । तद्वशाच्च हरिद्वारपर्यन्तपुण्यतीर्थयात्रां दारसहितः कृतवानस्मि । अथ जून मासे चक्रवर्तिजन्मक्षमहोत्सवे महामहोपाध्यायपद-लाभ इमं मे तीर्थयात्राभ्युदयमन्वजायत ।

संस्कृतग्रन्थावलिव्यापार इदानीमपि वर्तते । एकषष्टितमादीन् पञ्च षष्टितमान्तांस्तस्या अङ्कान् भवदङ्गीकारायाद्य प्रेषयामि ।

मञ्जुश्रीमूलतन्त्रस्य मुद्रणम् आरब्धम् । तस्य प्रथमं भागं पञ्चवै-
 मसैर्भवत्सकाशं प्रेषयेयमिति मे निश्चयः । भरतनाट्यशास्त्रवृत्तेरभिनव-
 गुप्तीयाया आदर्शान्तरमेकं चिरमृग्यमाणमिदानीं क्वचिदस्तीत्यवगतम् ।
 तत्प्राप्त्युत्तरं सापि मुद्रयितुमारप्स्यते । बुद्धचरितं मङ्गासूराजकीयग्रन्थ-
 शालाध्यक्षेणे मुद्रितमिति तन्मुखादेव श्रुतम्; किन्तु नाद्यापि तद्
 बहिरवतीर्णम् । शृङ्गारप्रकाशो नामातिविपुलः साहित्यग्रन्थो भोजदेवप्रणीत-
 उपलब्धः, यं विद्याधर एकावल्याख्यालङ्कारग्रन्थकारः प्रमाणयति । नारदस्मृते-
 र्व्यवहारभागस्य भवस्वामिभाष्यम्, ऋग्वेदस्य स्कन्दस्वामिभाष्यं चोपलब्धमेषु
 दिवसेषु ।

मत्परिश्रमं प्रत्यभिनन्दनविशेषं विधातुं लण्डनस्थभारतकार्यालय-
 पुस्तकशालाध्यक्षो यत् तत्र भवता प्रबोदितः, तत्राहं कृतज्ञोऽस्मि ।

निर्मण्डमीमधिकृत्य समनन्तरलेखे वर्णयितुमिच्छामि । सदारं तत्र भवन्तं
 भारते संपश्येयमिति योऽसौ मम मनोरथो वर्षपञ्चकात् प्रागुत्पन्नः इयच्चिरं
 हृदि प्रसुप्तः स इदानीमनेन भवत्प्रीतिलेखेन प्रबोधितः । सफलश्राय-
 मच्चिराद् भविष्यतीति मे दृढो विश्वम्भः । 'जीवनं भद्राणि पश्यति' ।
 सकुटुम्बस्य भवतः कुशलवार्तां मुहुर्ज्ञातुमुत्कण्ठितोऽस्मि ।

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री.

To,

Professor Sylvan Levi Esq.

श्री

Twenty one

अनन्तशयनम्

२९-१२-१९१९.

प्रियमहाशयाः,

प्रतीष्टा भवच्चीटी मत्प्रहितपुस्तकपञ्चकप्राप्तिशंसिनी । किन्नामा भवत्पुस्तकालयः ? कुत्र स्थापितः ? तस्य वा भवतामेव वा नामधेयं राजकीयसंस्कृतग्रन्थावलिदानोयनामावलौ निवेशयितुं महामात्यानुमिति जिघृक्षामि । तदनुकूलं यत्नमनतिचिरादास्थास्ये ।

रा-र-मुं- श्रीजगन्मोहनलालजीमहाशयस्य तु नामधेयं पुस्तकदानीय-नामावलौ (In the free distribution list) पूर्वमेव राजशासनानुमत्या निवेशितम् । तदनुसारेण च उपदापुस्तकानि तेभ्यः प्रेषितानि मया । विवृतश्रायमर्थः पुस्तकपूलसध्रीचि मदीये लेखे । स तु लेखो नायात इति श्रीलालजिमहाशयोऽद्यागते तदीये लेखे वक्ति । तत्प्रतिलेखादद्य मया प्रेष्यमाणाद् भवन्तः मनीषिमहाशयाश्च सर्वं जिज्ञासितं ज्ञास्यन्ति । एकवराट्किमूल्यमपि किञ्चिद् वस्तु अप्रार्थितं मादृशः कथङ्कारं दाक्षिण्यौदार्यसागरायापि पुंसे विक्रयबुद्ध्या ग्रहिणुयादिति भवद्भिर्वा मनीषिमहाशयैर्वा चिन्तनीयमासीत् । प्रसीदन्तु भवन्तस्तथा कर्तुं, यथा ते मत्प्रहितपुस्तकपूलदर्शनप्रभवं चाकित्यं बहुदिवसानुवृत्तम् इदानीमपि वा जह्युः ।

त. गणपतिशास्त्री.

To,

Ramakumar Misra Esq,
C/o Munshi Jagamohan Lalji,
Thajmin Sardar,
Ithihasakaryalaya, Alwar City,
Rajputana.

श्री

Twenty two

२२-१-१९२०.

प्रियसुहृदः,

परमार्थसारपुस्तकाधिगमवार्ताचीटी वः प्राप्ता । पुस्तकस्थ '८ तमश्लोके चतुर्थपादे षोडशमात्रा दृश्यन्ते' इति भवद्विरुक्तम् । वस्तुतः सप्त-दशमात्रा दृश्यन्ते । अन्यापि मात्राष्टादशी तत्रापेक्षिता नाम । तस्याश्च सम्पत्तिः अक्षरशोधकप्रमादच्युतेन शृणुपदपूर्वपाठ्येन तुशब्देन भवति । 'तु शृणुत' इति हि लघुचतुष्टयात्मा षष्ठो ऽस्मिन्नर्थे गणः । गीतिश्चे-यमेकादशपद्यवत् ।

६९ तमपुटे २० तमपङ्क्तौ 'स्वकार्यायाः' इति, तत् 'सकार्याया' इत्येव व्यवहितोत्तरपङ्क्ताविव पठनीयम् ।

प्रीतोऽस्मि वोऽनयाक्षरप्रमादद्विकसूक्ष्मेक्षिकया ।

किन्तु 'विष्फुरत्' 'विष्फुलिङ्ग' इति विपूर्वस्फुरस्फुलधातुविषये षत्वस्य शास्त्रबोधितयोर्भावाभावपक्षयोः स्थितयोः भावानुष्ठानं धर्महेतुरिति च स्थितौ कुतो नु खलु तद् भवद्विर्न सोढमिति ज्ञातुमभिलषामः । 'स्फुर स्फुल सञ्चलने' इति हि धातुपाठः । तत्र विशेषेण स्फुलतीत्यर्थे विपूर्वात् स्फुलतैरिङ्गचप्रत्ययेनौणादिकेन हि विस्फुलिङ्गशब्दः शिष्टप्रयुक्तो निष्पाद्यते । अमूर्धन्यस्तु सोऽन्यथा यथाकामं व्युत्पाद्यताम् ।

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री.

To

Ramaswami Esq.,
Pratapgarh, Alwar,
Rajputana.

Twenty three

२९-९-२१

श्रीमन्तो मान्याः प्रियसुहृदः,

परमीदाभिप्रायभासुरो सन्नतां कृपालेनो यथाकालं मम हस्तं प्राप्तः।
तेनाहमतीव चमत्कृतश्च प्रीतश्च भवामि। निसर्गत एव समधुजनसामान्यं
प्रति भवतामादरो निरुपाधिकः प्रसरतीति च तेन मे सञ्जातः प्रत्ययः।

यानि भवत्लेखे निर्दिष्टानि संस्कृतपुस्तकानि—भक्तुपोदातोपस्कृतः
श्रीकृष्णशुभोदयः— भवत्प्रणीता महालक्ष्मीस्तुतिः— श्रीविष्णुदासविज्ञापना—
श्रीकृष्णद्विदृक्षेत्येतानि, तानि भूयिष्ठमनुवाचितानि मह्यं निकामं स्वदन्ते।
तेषामेकैकं प्रतिरूपं ममैवात्मीये ग्रन्थसंग्रहे निवेशितम्। अपरं चास्मद्वाङ्-
कीयपुस्तकशालाया आभरणीकृतम्।

प्रायेणाद्यत्वे राजकीयाधिकारप्रविष्टाः पुरुषाः न जानेऽवसरालाभाद्
वावहेलनाद्वा वैफल्यवधारणाद्वा संस्कृते व्युत्पत्तिं मनामपि नाधिगन्तुमिच्छन्ति,
लेशतो व्युत्पन्ना अपि वा कथञ्चित् साहित्यकलायां नाभियोगं भजन्ते। तेष्वमीषु
काव्यरचनप्रत्याशायाः कोऽवकाशः। एवं स्थिते भवतामधिष्ठितमन्त्रिपदवी-
कानां सरसकाव्यनिर्माणनैपुणीमीदृक्षीमुपलभसामस्य न मासि हृदि मे
परितोषश्च विस्मयश्च। अमित्रं भवत्कृतम्—सर्वा अवयवदृष्टिरसपरि-
वाहिन्यश्च वस्तुस्वभावयाथात्म्यशंसनपराश्च सदर्थोपदेशदायिन्यश्च
परमोपकारय पठितृणां कल्पन्ते। सर्वथा भवन्तः सज्जनसामान्यस्य
विशेषेण तु राजकीयाधिकारिणामनुकरणीयगुणा इति मे मतिः। यास्तु
एतासां भगिन्य आङ्गलभाषाकृतयः, ताः संस्कृतानभिज्ञोपकाशाय मन्ये
भवद्भिः प्रणीताः।

दिष्ट्या मे भवद्भूः सहृदयधुरीणः सह परिचय इदानीं सञ्जातः ।
सा एव वर्धतो भगवत्कृपयेत्याशासे ।

इति भवत्कुशलाशंसुः

त. गणपतिशास्त्री.

To

Dewan Bahadur

V. Anantha Raw Pantulugara

Sri Alaka Rajeswari Prasad,

Vizianagaram.

श्री

Twentyfour

२०-१०-१९२१.

श्रीमन्! विद्वदुत्तंस! प्रियमित्तमहाभाग!

दिष्ट्येदानीं भवते किसमपि प्रियमाख्यातुमवसरमहं लब्धवानस्मि ।
योऽसौ मया नाट्यवेदविवृतेरभिनवभारत्यभिधानाया एकस्तालपत्रादर्शग्रन्थो
बहोः कालान्मृग्यते, सोऽयमिदानीं दिष्ट्योपलब्धः । ग्रामटिकाकोणगङ्गारे
क्वचिन्निलीय स्थित एष लोकोत्तरैतद्ग्रन्थदर्शनाभिनिवेशिनो भवत एव
स्फटिकस्वच्छान्तःकरणस्य मनोरथेनावितथेन बालदाकृष्य, मन्ये, मम हस्तं
प्रापितः । नाट्यवेदस्य तु बहव आदर्शग्रन्थाः प्रागेव सम्पादिता मद्वशे
वर्तन्ते । अतो नाट्यवेदेन सहितामिमामभिनवभारतीं त्वरितं मुद्रयितुकामो-
ऽद्य प्रभृति संशोधयामि । पक्षेणैकेन च तस्याः प्रथमसम्पुटपर्याप्तमंशं
मुद्रालयं प्रति प्रेषयेयम् । तस्मान्मुद्रितनाट्यवेदविवृतिसन्दर्शनसमयोऽति-
प्रत्यासन्न इति ।

इदं च प्रियात् प्रियतरमहं समाचारपत्रेभ्यः शृणोमि यद्भवान्
कलिकाताविश्वविद्यालयेन स्वीयच्छात्रोपदेशदानाय प्रार्थितो भारतभुवमचि-
रेण पत्नीसहितो भूषयिष्यतीति । अपि भवता समागमम् अविचारित-
सङ्घटनपटुर्भगवान् मम सङ्घटयेत् ।

इह कुशलम् । भवतः सकुटुम्बस्य कुशलं जिज्ञासे चाशासे च
महेश्वरात् ।

भवदीयः

त. गणपतिशास्त्री.

To,

Professor
Sylvan Levi Esq.,
Paris.

DANDIN'S VERSION OF THE STORY OF KĀDĀMBARĪ*

Dr. MAN SINGH, M.A. Ph.D.,

Assistant Professor of Sanskrit
Centre for Post-graduate Studies,
H.P. University, Shimla.

In his *Avantisundarī*, Dandin has put the narration of the episode of *Kādambarī* into the mouth of Mandākinī, daughter of Namuci. One night, when Prince Rājavāhaṇa, the hero of the prose Romance, was staying with his companions in the Vindhya forest while on his adventure for world conquest, a Brāhmaṇa called Mātanga took him away from his sleeping companions and set out, as advised by lord Śiva,¹ to the nether-worlds. Proceeding through a chasm as instructed in books on *bilakaṭpa*, they saw a beautiful city surrounded by a fort made of copper. Mātanga bathed in a pool; and requesting the Prince to ward off obstacles, began to offer oblations in the sacred fire, and finally threw himself of into the flames. Soon after, he rose from the fire adorned with a sword in his hand, bracelets in his arms and a crown on his head and seated in a fiery chariot. Then a divine damsel of infinite beauty approached him, casting a loving look at him. She thanked the Prince for his kindness. She took them to her palace and related her story. She was Mandākinī, daughter of Namuci. Once on her way to worship god Viṣṇu, she saw a young man and fell in love with him. He at once plunged into the sea and was transformed

* Paper read in the Classical Sanskrit Section, All India Oriental Conference, XXVIII Session, Kharakhatra, 1974.

into a horse. The God finding her in sorrow said that the young man would certainly become her husband. Mahāśvetā and other Gandharva maidens were her friends. Once Mahāśvetā and her husband paid a visit to her and she cheered her up by telling her the long tale of her life. Then as desired by Mahāśvetā, her husband Pundarīka narrated to her the story of his life and also that of Kādambari.²

After narrating their story the happy couple left her. She then went to worship God Mukunda, who said to her not to grieve, as she would be united with her husband of divine origin soon. The god also told her that once his son Sāmba saw a swan in a lake that was none other than sage Jaritārī sporting there in that form; and catching hold of it, fettered its feet with the fibres of lotus stalk; the sage inflicted on him the curse of being fettered in another birth. Sāmba, the god reiterated, was born as Prince Rājavāhana for the destruction of the Asuras and her husband who had taken many births on the earth would be delivered from his mortal life by him. The god further told that her husband would obtain a fiery chariot with his aid and would be known as Agniratha; informed that Yajñavatī, wife of Sāmba, was born as Princess Avantisundarī and instructed her to offer Rājavāhana with a crest jewel bestowing upon the wearer immunity from the ills of man. With this message of the god she returned her home and was biding her time. Having related her story, she took out the God-given gem from a casket and put it on the tuft of hair of the Prince. Mandākinī and Agniratha were extremely grateful to him and took leave of him. Rājavāhana then set out in search of his friends and reached Ujjayinī.³

The stories of Mahāśvetā and her husband Pundarīka and Candrāpida, related in the Avantisundarī to Mātānga and Rājavāhana by Mandākinī as narrated to her by Pundarīka himself are based, as is obvious enough, on Bāṇas famous prose Romance

Kādambarī. Dandin's version follows the episodes as contained in Bāṇa's own text but differs from the continuation by his son on many points. Unfortunately, Dandin's text embodying the episodes is lacunic and incomplete: only a small portion is available.⁴ His text begins abruptly and breaks off without completing them. But luckily we have the summary of these stories in the *Avantisundarikathāsāra*,⁵ which renders us valuable help in gleaning Dandin's version of these stories. Dandin's version differs from the continuation by Bāṇa's son⁶ on the following points:

(i) According to the *Uttarabhāga*, (continuation by Bāṇa's son) of the *Kādambarī*, *Vaiśampāyana* was turned into a parrot by *Mahāśvetā*'s curse; *Candrāpīḍa* came to know of it from *Mahāśvetā* and died of sorrow; and *Kādambarī* resolved on following her lord in death by self-immolation; but she was prevented from the rash act by an aerial voice and was instructed to preserve his body.

In the available text of Dandin's *Avantisundarī* as well as in its summary *Avantisundarikathāsāra*, *Vaiśampāyana*'s birth as a parrot has nowhere been accounted for, though we are told through sage *Nārada* that *Pundarika*, proud of his personal beauty, was killed by the jealous god of love, making *Mahāśvetā* an apparent cause and consequently, when he took birth as *Vaiśampāyana*, he was again killed by him.⁸ In Dandin's version, *Vaiśampāyana* accompanied *Candrāpīḍa* and his parents to *kādambarī*'s *svayamvara*. *Mahāśvetā* fell in love with him. When she heard a rumour that he was killed in the fight that followed the *svayamvara*, she felt deeply distressed. Her father, thinking her an unchaste girl, cursed her to take birth as a *Caṇḍāla* woman; and consequently, she at once fell down and died. *Vaiśampāyana* returned safe from the battle. When he saw his beloved lying dead, he, too, died of grief. *Candrāpīḍa* and

Kādambarī could not bear to see the disaster that has befallen their friends and began to fast themselves to death. Sage Nārada appeared on the scene, prevented them from doing so and consoled them with the assurance of their future reunion with their friends after some time⁹.

(ii) According to the Uttarabhāga of the Kādambarī, the marriage of Candrāpīḍa and Kādambarī took place after Vaiṣampāyana's revival and Puṇḍarīka's return from the sky. In Dandin's version, Kādambarī had put the wedding garland of celestial flowers round the neck of Candrāpīḍa at her svayamvara, which took place before the curse on Mahāśvetā by her father and Vaiṣampāyana's death on account of grief at the disaster that had befallen his beloved.

(iii) According to the Uttarabhāga, of the Kādambarī, the parrot vaiṣampāyana was asked by Kapiṇjala, sent by its father Śvetaketu and mother Lakṣmī who were engaged in a sacrifice that was to work its bliss, not to leave the hermitage of sage Jābali for some time; but when it found that its wings were grown, it one day secretly flew away from the hermitage towards the north where Candrāpīḍa's body was lying and where it could see Mahāśvetā. Soon it felt exhausted and fell asleep on the low boughs of a tree. It awoke to find itself caught in a net by a Candāla, who took it as ordered, to his mistress, the Candāla princess. She clapped it in a wooden cage and after some days placed it in a golden cage. She afterwards took it to Śūdraka, king of Viḍiśa.

According to Dandin's version, sage Jābali asked his pupil to take the parrot to Mahāśvetā who had taken birth as a Candāla maiden, tell her that it was the object of her cherished desire and ask her to take it for the realization of her desires to Śūdraka, King of Mālava, originally Nandikeśvara, the chief attendant of Śiva, born as a king by the curse of goddess

Bhavānī, who after listening to the story of Candrāpīḍa as told by the parrot would give up his passion for the conquest of the regions and would follow the path of trivarga with his four wives. The pupil accordingly took it to the Caṇḍāla maiden and she, in her turn, to king Śūdraka.¹⁰

(iv) According to the Uttarabhāga of the Kādambarī, the Caṇḍāla lady who came to Śūdraka's court was the parrot Vaiśampāyana's mother Lakṣmī, who had been asked by her husband Śvetaketu to imprison it so as to save it from further degradation: for it had disobeyed the injunction of its father to stay, till the completion of a sacrifice, at the hermitage of Jābalī. She assumed the form of a Caṇḍāla woman in order to avoid the contact of people.

Daṇḍin's version, on the other hand, tells us that the caṇḍāla maiden who took the parrot to King Śūdraka was none other than Mahāśvetā, born in that form by the curse of her father.¹¹

(v) According to the Uttarabhāga of the Kādambarī, Śūdraka, who was Candrāpīḍa in his previous birth, was originally the moon-god who took birth on the earth by Puṇḍarīka's curse while according to Daṇḍin, Śūdraka was Nandikeśvara, the chief attendant of Śiva, in his former life and was cursed by goddess Bhavānī to be born as a king.¹²

(vi) According to the Uttarabhāga of the Kādambarī, Śūdraka came to know through the words of the Caṇḍāla woman, that he was Candrāpīḍa in his past life and was again full of longing for Kādambarī. Afflicted by the torment of love, he gave up his life, as Puṇḍarīka's curse was fulfilled. It was only after it that Candrāpīḍa came back to life by Kādambarī's touch and Puṇḍarīka descended from the sky.

In Dandin's version, Sūdraka, Nandikeśvara in his past life, was to give up his passion for the conquest of the regions and to follow the path of trivarga with his four wives after listening to Candrāpīda's story from the parrot. As soon as the parrot finished its story, there came down through the rays of the moon its original body and also that of Mahāśvetā. Shuffling of their accursed bodies, the parrot and the Candā'a maiden assumed their original forms as Puṇḍarika and Mahāśvetā respectively. Afterwards they came to pay a visit to Mandākinī.¹³

(vi) That Sūdraka had four wives,¹⁴ is Dandin's own invention

(vii) Dandin connects the story of Kādambarī with the narrative of his own prose Romance by making kapiñjala take birth finally as the Brāhmaṇa Mātāṅga, afterwards known as Agniratha, and Puṇḍarika relate his tale to cheer up Mandākinī, daughter of Namuci and bride of Mātāṅga.

Thus Dandin follows Bāṇa's text in his version of the stories of Puṇḍarika and Mahāśvetā and Candrāpīda and Kādambarī; but differs from the continuation by his son. He has moulded the stories in accordance with the needs of his own narrative.

REFERENCES-

1. Avantisundarikathāsāra (ed. G. Hariharā Sastri, Kuppuswami Sastri Research Institute, Mylapore, Madras, 1957), V. 83-4. The original text in the Avantisundari (ed. Trivandrum Sanskrit series No. 172. Trivandrum, 1954) is missing.
2. Avantisundarikathāsāra, V. 66-111. In the Avantisundari, the beginning is lost and the available text is full of lacunae, pp. 241-43.
3. Avantisundarikathāsāra. V. 150-61.
4. Avantisundari, pp. 243-46.

3. Vide V. 112-49. A fragment of this work was first published in 1924 by Sri M. R. Kavi from Madras (Dakṣiṇabhāratī series Nō. 3). It is again published from the Kuppaswami Sastri Research Institute, Mylapore, Madras by G. Harihara Sastri in 1957. In the present paper, we have made use of the new edition. It contains more text running to the eighth pariccheda, although it, too, is incomplete as it breaks off after VIII 125, covering the full story in the available extent of the Avantisundarī, it carries it further up to Uṣāhāravarman's intrigue with Kalpasundarī in the third ucchvāsa of the Daśakumāracarita proper (up to p. 150, line 4 c.f. Nārāyaṇa Rāma Ācārya, Nirṇaya Sāgara Press, 15th edition, Bombay, 1951). Not only does it represent the original story of the Avantisundarī and the Daśakumāracarita proper (up to the middle of the third ucchvāsa); but it also borrows numerous original expressions and cites all the original verses. It provides us with these verses, too, which should have existed in the missing text of the Avantisundarī, e. g., IV. 212; VI. 169. It also gives us the story after the available extent of the Avantisundarī and before the start of the Daśakumāracarita proper. Both these texts have been summarized under a single head Avantisundarīkathāsāra, which clearly shows that both of them are originally two parts of a single book-**AVANTISUNDARĪ**. The original name of the complete work ought to have been **AVANTISUNDARĪ**, as is obvious enough from the title Avantisundarīkathāsāra as well from the author's declaration in its beginning to summarize the story of the Avantisundarī.

संत्क्रयाकथनप्रीत्या तत्रापि कथयाम्यहम् ।

कान्तामवन्तिसुन्दर्याः कथामनन्तिविस्तराम् ॥ (1. 10)

According to S. Kuppaswami Sastri, the author of the Avantisundarīkathāsāra is one Pañcaśikha. In the last stanza of its each canto, the author uses the word ānanda as a distinctive mark (except in the eighth canto, which is incomplete). From Bhoja's Śringāraprakāśa (XI, Josyer ed. II., p. 674) and Hemacandra's Kāvyaśāstra (ed. R. C. Parikh and V. M.

Kulkarni, Sri. Mahāvira Jain Vidyālaya, Bombay, ed. II P. 457, Viveka: मङ्गलाङ्कता यथा—अभ्युदयः कृष्णचरिते, जय उषाहरणे, आनन्दः पञ्चशिखसूदककथायाम् इति - we come to know that it was Pañcaśikhā who used such a distinctive mark. They have mentioned his Śūdiakakathā, where the word ānanda been used in the last stanza of each canto as a distinctive mark; but not his Avantisundarikāthāsāra.

On the Avantisundarikāthāsāra and also on the original unity of the extant Avantisundarī and the Dasakumāracarita. Proper (excluding the Pūrvapīthika and the Uttarapīthikā) see the Doctoral thesis of the author of these lines: A Critical and Comparative study of Subandhu and Dandin (Banaras Hindu University, 1966). pp-89-112; अवन्तिसुन्दरी तथा दशकुमारचरित—एक ही कृति के दो भाग अभिनव प्रमाण in Prācya Prajñā, Aligarh Muslim University, Aligarh, 1974.

6. According to Bühler, the name of Bāna's son was Bhūṣaṇabāṇa (Peterson's Introduction to the Kādambarī, p. 40). In some manuscripts of the Kādambarī, the son is called Pulinda or Pulina (Vide S. R. Bhandarkar's report on the, Search of MSS, 1904-5, 1905-6, p. 39; see also Stein's catalogue of Sanskrit MSS. at Jammu, p. 299), Dhanapāla, while praising Bāna in his introduction to the Tilakamañjarī (verse 26), seems to suggest that Pulinda was the name of the son:

केवलोल्लसि स्फुरन्बाणः करोति विमदन् कवीन् ।

किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्र(न् ?) कृतसन्निधिः ॥ (verse 26)

7. Ed. P. Peterson, Bombay Sanskrit Series. No. XXIV, Vol., (Sanskrit Text), Bombay, 1889.
8. Avantisundarikāthāsāra, V. 187-40.
9. Vide Avantisundarī. pp. 243 ff.; Avantisundarikāthāsāra V. 130-41.
10. Ibid., V. 143-47.
11. Ibid., V. 134-142.
12. Ibid., V. 145.
13. Ibid., V. 146-49.
14. Ibid., V. 145.

A SHORT NOTE ON TELUGU PROSODY

N. V. KRISHNA WARRIOR

1. Dēsi metres in Telugu before Nannaya Bhatta.

The earliest known literary work in Telugu is Nannaya Bhatta's Mahābhārata composed in the 11th century A. D. Telugu inscriptions, however, are available from the 9th century A. D. Some of these contain verses which give us information regarding the metres that were current in Telugu before the great Nannaya came to dominate the field of Telugu poetry.

The Addanki inscription of the eastern Chōlukya king Ganga Vijayāditya (A. D. 848-892) contains a Telugu verse in TARUVŌJA metre. This metre, which is of folk origin, is employed in Dampulla Pāṭalu, which are songs sung by village women while husking paddy.

The Kandukūru inscription (A. D. 848, 849) contains a fragment of a verse in Sisa metre, followed by a verse in Tētagiti metre, which is also incomplete. Now there is a convention in Telugu that a verse in Sisa, will be considered complete only when followed by a verse either in Āṭaveladi or in Tētagiti. The provision of a verse in Tētagiti metre following Sisa in the Kandukūru inscription shows the antiquity of this convention.

There is a verse in Sisa metre followed by one in Āṭaveladi metre in the Dharmavaram inscription (A. D. 897).

The Bezawada inscription of Yuddhamalla (A. D. 885-930) contains four verses in Madhyākkara metre. Now, five varieties of the Akkara metre, viz, Piriyaṅkare, Doreyaṅkara, Naduvanakkare, Edeyaṅkare and Kiriyaṅkare have been defined and illustrated by Nāgavarma, the

An exception to the rule mentioned above is Ranganātha (A. D. 12th century) who composed his Rāmāyana entirely in Dvipada metre. Pāṅkurūki Sōmanatha (A. D. 12th century) who carried on this tradition by composing his Basava Purāṇa and Panditārādhyacaritra in Dvipada metre thought it necessary to defend his adoption of this metre for his classics. Hariścandra Dvipada by Gaurāṇa (A. D. 15th century) also is, as the name signifies, in the Dvipada metre. The Dvipada poets show their attachment to this metre by sticking to it even in their colophones which are usually composed in prose and are called Āśvāsānta Gadya.

In addition to the above metres, nine varieties of Ragadās, which are most probably adopted from Apabhramśa poetry, are described by Telugu prosōdists. Some of these Ragadās are used by poets like Srinātha (A. D. 15th century).

Prosōdists have also described several varieties of Dāṇḍakas, and some of them have been employed by Telugu poets in compositions like Bhōginidāṇḍaka (by Pōtana, A. D. 15th century), Vidyāvatidāṇḍaka (by Venkatakavi, A. D. 18th century) and Bhōjanadāṇḍaka.

4. Metres in modern Telugu poetry.

Rāyaprōlu Subbārao, who initiated the Romantic Movement in Telugu poetry with his Āndhrāvali made use of classical metres (Prabandhavṛttas) along with some folk tunes which were termed Musical metres (Gēya Vṛttas). One of these folk tunes came to be called Mutyāla Saratmu as it was exclusively used by Gurzāda Appā Rao in his work of that name. Sri Viśvanātha Satyanārāyaṇa who composed his magnum opus Śrīmad Rāmāyana Kaipavikṣamu in classical metres composed his collection of lyrics called Kinnarasāni Pāṭalu in folk metres.

5. Yati and Prāsa in Telugu prosody:

The word Yati in Sanskrit prosody means a caesura or a pause for breath, where the word or the morpheme should end. Such Yatis occur at the end of the second line and the fourth line of a quatrain and also at certain specified places within the line in different metres. Of these, the Yati at the end of the second and the fourth lines is strictly observed, while the Yati within the line is sometimes violated by Sanskrit poets, though such violations are considered blemishes of poetry.

In Sanskrit metres adopted in Telugu there is no pause at the end of the second line in a quatrain, the second line being made to run on to the third line.

Yati in Telugu prosody means the alliteration of the initial sound at specific places in the course of the line. This is either absolute identity of the initial consonant (Tulyākṣara Yati) or agreement in respect of certain characteristics of the same consonant (Samānākṣara Yati). The initial vowel also is a factor to be considered in Yati. Yati, thus conceived, corresponds broadly with the Polippu Mōnai (Monai between alternate feet in the line) of Tamil prosody in metres like Dvipada, Taruvōja, Sīsa and Raḡaḡas and with the Orūu Mōnai (Mōnai between the first and the fourth foot in a line) of Tamil prosody in metres like Āṭaveladi, Tēṭaḡīti, Madhyākṡara, Madhurākṡara and Kanda. Yati is also called Vaḡi or Vaḡi in Telugu prosody.

Etukai or the alliteration of the second syllable is called Prāsa in Telugu prosody. Prāsa is considered absolutely essential in all metres adopted from Sanskrit and Prākṡt into Telugu and

in a few Dēśi metres like Tarnvāja, Dvipada, Akkara, Kanda and Ragadas. These Dēśi metres which have Prāsa are called JĀTULU (Jāti), while Dēśi metres without Prāsa such as Sisa, Aṭaveladi and Tētagiti are called URAJĀTULU (Urajāti).

Unlike Yati which is an internal alliteration among the feet within the same line, Prāsa is observed compulsorily only among the lines of a verse. Prāsa within the line and among the feet constituting the same line is left to the option of the poet. As in Yati, the repetition or agreement of the vowel in the syllable is not insisted upon in Prāsa. Even in the matter of the repetition of the consonant or consonants of the second syllable absolute identity is not insisted upon, the desired objective being similarity of sound only. For this purpose several groups of vowels and consonants with mutual relationship are assumed, and any one letter within the group may stand for any other letter in the same group, so that the demand for prāsa may be satisfied.

6 Scanning of Dēśi metres.

Influenced by Kannada prosody, prosodists of Telugu also defined three sets of Mātragaṇas for scanning Dēśi metres. However the Brahmā, Viṣṇu and Rudra Gaṇas of Kannada were respectively called Sūrya, Indra and Candra Gaṇas in Telugu. The basic units in these feet are respectively two, three and four Gurus. The initial Guru in all these Gaṇas may be substituted by two Laghus, while a Guru in other places may be substituted by a single Laghu. This gives us three sets with 4, 8 and 16 varieties as shown below; but the first two Gaṇas in each group are not used in Telugu.

Sūrya GaṇasIndra GaṇasCandra Gaṇas

1.	G	G	}	n	G	G	G	G	}	n
2.	LL	G		o	LL	G	G	G		o
3.	G	L	}	t	G	L	G	G	}	t
4.	LL	L		e	LL	L	G	G		e
5.	-----			u	G	G	L	G		u
6.	(4 Gaṇas)			a	LL	G	L	G		a
7.				e	G	L	L	G		e
8.				d	LL	L	L	G		d
9.					-----					
10.					(8 Gaṇas)					
11.						G	L	G	L	
12.						LL	L	G	L	
13.						G	G	L	L	
14.						LL	G	L	L	
15.						G	L	L	L	
16.						LL	L	L	L	

(16 Gaṇas)

Among the Telugu works on prosody, Kāvījanāśrayamu (A. D. 1100) and Kāvyaṅkāvācūdāmaṇi (A. D. 1402) enumerate all these 28 varieties. But Chandōdarpaṇamu of Anantāmātya (A. D. 1435) deletes the first two Gaṇas in each set and recognises only the remaining 22 Gaṇas. All later prosodists in Telugu have followed Chandōdarpaṇamu in this matter. The Candra Gaṇas are used only in Akṣara and Ṣaṭpadi metres which are non-existent in Telugu poetical works, but oral tradition has some verses composed in these metres.

[Now we may] briefly define and illustrate the Deśi metres used in Telugu literary Compositions.

1. Taruvōja.

A verse in Taruvōja consists of four lines (Aḍugu), each line consisting of two hemistichs of three Indra Gaṇas and one

Sūrya Gaṇa (a total of eight Gaṇas in a line). Yati has to be observed among the first, the third, the fifth and the seventh feet in each line, and prāsa, between the lines. Example:

Irāju nandanā hṛdayambu tavili yeppuḍu nunduna nnīṭaḍu garamu
Kāruṇya munabrīti galayatlu cūcu gamalākṣi bhārgava kanyadā

neṭulu

Gōriyī tanidana kunubati jēsi koniyena ṭalayēnu gōrilō kaika
Bhāradhu randharu barahita dharma parunahu śātmaju batijēsi
kondu.

Nannaya Ādi. 1.172

2. Dvipada.

Dvipada is a couplet, one line of which consists of one hemistich or half a line of a Taruvōja verse, viz., three Indra Gaṇas and one Sūrya Gaṇa. Yati is to be observed between the first and third Gaṇa, and Prāsa between the lines of a couplet. Example:

Bhaktapa rādhinu bhaktani dhānu

Bhaktasa mādhanu bhaktāva dhānu

* * * * *

Manmanō ramyunir malabhāva gamyu

Cinmayu saumyubha jincikir tinci

Palkurikki Sōmanātha, Basava. P. 1

3- Āṭaveladi.

A verse in Āṭaveladi metre consists of four lines, the first line and the third line having three Indra Gaṇas and two Sūrya Gaṇas and the second and the fourth line having five Sūrya Gaṇas. Yati is observed between the first and the fourth foot in each line. Prāsa is not observed. Example:

Vividha vēdata tvavēdi vēda vyāsudādi muniparāśa rātmajuṇḍe

Viṣṇusa nribbunḍu Viśva Janī namai
Paragu cunda Jēse bhāra tambu.

Nannaya, Ādi 1.32

4. Tētagīti

Each line in a Tētagīti quatrain consists of one Sūrya, two Indra and two Sūrya Gaṇas in that order. Yati is observed between the first and the fourth foot in a line; Prāsa is not observed.

Kanni yalatōḍa nāḍucu nuṇṇa dāni
Pāda mardīta maiyokkā panna gambu
Karace gannīya landaRu veRaci paRaci
yaracu cuṇḍapra maḍvara yavani drelle.

Nannaya, Ādi, 1.147

5. Akkara. (a) Madhyākkara.

Each line of a Madhyākkara quatrain consists of two Indra, one Sūrya, two Indra and one Sūrya, a total of six Gaṇas. Yati is on the fifth Gaṇa. Prāsa is obligatory. Example:

Dharanīja rācara bhūta saṃghambu damaviṣa vahni-
Nuragambu lērtsucu nunṅki kalīgipa yōruha garbhu-
Duraḡavi śāpēta Jīva saṃjīva nōpadē śambu
Garuṇagā śyapunaku nicce nakhilālō kahitambu poṇṇe.

Nannaya, Ādi. 2.185

(b) Madhurākkara.

A verse in Madhurākkara metre consists of four lines, each line having one Sūrya, three Indra and one Candra gaṇa (five Gaṇas in all). Yati falls on the fourth Gaṇa and Prāsa is obligatory. Example:

Tanara janakuṇḍu nannapra dātayu nubbayatrāta-
Yununa naganintu lakumuvvu rōginagu ruvuluvira-
Lanagha yuppnēta maRiyuni rāntarā dhyāpakunḍu
nānāga buraṣūna kiyyēvu ranayambu nuguruvulu.

Nannaya, Ādi. 4-49

6. Sīsa.

Each line of Sīsa quatrain consists of six Indra Gapas followed by two Sūrya Gapas (eight Gapas in a line). Yati is observed between the first and the third Gaṇa. Prāsa is not observed. Illustration:

Dharmata tvajñulu Dharmā strambani yadhyātma viduluvē dānta
naniyu
Nītivi cakṣaṇul aṅiṣā strambani kaviṛṣa bhulumaḥā kāvya
maniyu
Lākṣaṇi kulusarva lakṣyasam grahamani ya'tihā sikuliti hāsa
maniyu
Paramapau rāṇikul bahupurā ṇasamucca yambant mahigoni
yāḍu cūṇḍa.

Nannaya, Ādi. 132

7. Kanda.

Kanda is a Mātrā metre. A verse in this metre is a quatrain having two hemistichs of equal length, and composed of feet having four Matras each. The first line and the third line consist of three and the second line and the fourth line consist of five such feet. In the feet any combination of Gurus and Laghus to make four Mātrās may be used, but jagāṇa or the foot with one Guru in the midst of two Laghus should not be used in odd places and Jagāṇa (LGL) or Nagāṇa (four Laghus, LLLL) alone should be used in the sixth place in both the hemistichs. The second and the fourth lines should end in Guru resulting in having either gaga (GG) or ṣagāṇa (LLG). Prāsa is observed.

Example:

Ēyadi hṛdyama pūrvam-
Bēyadi yeddāni Vinina NeRakasa Magam-
Baiyu ḡdunaghami barhaḡa-
Mēyadi yakkatha yavinaga niṣṭamu mākun.

Naanaya, Ādi, 1.30

8. Utsāha.

A verse in Utsāha metre is a quartain, each line consisting of seven Sūrya Gaṇas and one Guru. The first letter of the fifth foot is the place of Yati. Prāsa is observed. Example:

Balimi biṭṭa kaligi pāsu paṭamu doduga nēti ka-
Ggalika muluka kāya keṭtu gallu gonaga nēla mu-
Nneluka vēṭa kuruma tiṇḍi yēla niku naluga gā-
Dalamu galade nannu bampu dakṣu baṭṭi tece dan.

Nannecōḍa, Kumārasambhava, 2.60

9. Ragaḍas. (a) Hayapracāra.

A verse in Ragaḍa is a couplet with Prāsa of the second as well as the final Syllable. Nine varieties of Ragaḍas are defined and illustrated by Anantāmātya (A. D. 1435) and prosodists after him. Appakavi has prescribed the Gati (rhythm) and Tāla (beat) for each of these varieties.

A line of Hayapracāra Ragaḍa consists of four feet of three Mātrās each (Sūrya Gaṇas), the possible combinations being LLL (Nagaṇ), LG (Vagaṇa) and GL (Haḡaṇa). This metre has Tryaśra Gati and Rūpaka Tāla. Example:

Haḡaṇa tuṣṭa yaṃbu ṛṭula
Janita yaṭula jaṇagu ḡṛṭula
Jannha yaṃpra cāra ragaḍa
Vinuta śāstru yldalu yogaḍa.

Anantāmātya, Chāṇḍōdarpaṇamu, 3.58

(b) Turagavalgana.

This is a doubling of Hayapracāra, each line consisting of eight feet of three Mātrās (Sūrya Gaṇas), Gati and Tāla being the same as for Hayapracāra. Example:

Sri sātīśu parama puruṣa citta munada lamcu vāru
 Vāsavādi nikhila divija vandyu nāśra yimcu vāru
 Niṭaja nīmpa raṣaga nanva yintsu duraga valga nambu
 Paṭudi nēsa laghuvi rāma bhānu madga ṇāṣṭa kambu.

Anatāmātya, Chandōdarpanamu, 3.54.

(c) Vijayamaṅgaḷa.

This is a doubling of Turagavalgana or quadrupling of Hayapracāra with sixteen Trimātrāgaṇas (Sūrya Gaṇas) in each foot, Gati and Tāla being the same. Example:

Srīdha rāya Siṣṭa janani ṣēvi tāya bhakta lōka jīvi tāya garvi
 tōru sindhu.rāja bandha nāya

Gādhi putra yajña vighna karama hāsu rīma hōgra kāya saila daḷana
 nīpuṇa ghanasu rādhi pāyu dhāya

Kēśa vāya tēna mōstu kṛṣṇa pāhi pāhi yanucu kēlu mugici mauli
 nunci kṛṣṇu balike nanucu nīṭlu

Dēśa bhāga ṇamula jeppa dviguṇa turaga valga namuna tēru vijaya
 maṅga lambu tīya ceraku rasamu naṭlu.

Anantāmātya, Chandōdarpanamu, 3.55.

d) Madhuragati.

One line of this metre consists of four feet of four Mātrās each of the possible combinations, two Gurus, (GG), four laghus (LLLL), Bhagaṇa (GLL) and Sagaṇa (LLG) are permitted, but Jagana (LGL) is excluded. This variety of Ragada has Caturāra Gati and Ēka Tāla. Example;

Srīvami tādhipu jēribha jimpudu
 Bhāvaja janakuni bhaktida lampudu
 Anigaga nalabhasa lanunāl gṭagrti
 Janugaja laghuvi Śramamuma dhuragati

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.58

(e) Harigati

This is a doubling of Madhuragati, each line having eight feet of four Mātrās each. Gati and Tāla are the same as of Madhuragati. Example:

Srīrā mākuca kuṅkuma pankamu cēboḷu paguvipu lōrah
 phalakamu
 Tāratu śārapa ṭīrasa mānō dakavā hiniyoda vinapada kamalamu—
 Natisaya maiyala vaḍunē dēvuni nanavara tōdā ratanā harigati
 Itarula kalavaḍa danirpa laghuyati nibhanala gagabhasa
 Lanagunn harigati.

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.59

f) Dviradagati.

One line of Dviradagati metre consists of four feet of five Mātrās each, the permissible compositions of the feet being Naga (LLLG), Nalala (LLLL), Bhala (GLLL), Sala (LLGL), Ta (GGL), and Ra (GLG). Yagana (LGG) and Jala (LGLL) are excluded. This metre has Khaṇḍa Gati and Jampa Tālā. Example:

Srīyuvati nijayuvati jēsiyentayumiñci
 Kāyajuni danatanayu gānelami bāṭiñci
 Sakaladē vatalabari janulugā ṣmanniñci
 Prakaṭagati śrutulanuti pāṭhakula gāviñci
 Hariyoppu nananoppu navatāra laghuvirati

Śaradhingā naḷabhala salatarala dviradagati.

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.56

(g) Jayabhadra.

This is a doubling of Dviradagati, and has eight feet of five Mātrās each per line. Gati and Tāla are the same as in the previous metre. Example:

Sīkṇoda yaṇḍanaga cittajuni gurudanaga sēsasaya nuṇḍanaga
 11 jeluvu gajaturbhujudu
 1 Nākauka sulanēlu namuckū danupūja naḍumadā gaikoma
 nandagō pātmajudu
 Itanigol cinagāni iḥaparam buḷḡaluga vitarasē valaṇḍanaga nesa-
 gunṭvibhudansu
 Jaturamatu lonarimpa jayabhadra ragadaliṭu sadviradagatireṇṭa
 jaṭimpu lambencu.

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.57

(h) Hariṇagati.

One line of Hariṇagati consists of two feet having seven Mātrās each. The combinations permitted are Sūrya plus Nala (LLLL)/Bha (GLL)/Sa (LLG)/Gaga (GG). This and the following variety have Mīśra Gati and Tripuṭa Tāla. Example:

Srinivāsabha jintunēṇaṇi
 Pūnikujanula pontabōṇaṇi
 Bhānuyutanala bhasagagambula
 Lōṇanirudō lunanaḷambula
 Niravugāganu yēḍulaghuvula
 Nuruvumīraga noppunelaṇṇula
 Viratulaṇṇugā vimpanimmula
 Hariṇagaticelu vagujagammula.

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.61.

(9) Vṛṣabhagati.

This is a doubling of Harinagati, each line having four feet of seven Mātrās each. The combinations permitted are Sūrya plus Bha (GLL) / Sa (LLG) / Nala (LLLL), Sūrya plus Gaga (GG) is excluded. Example:

Srīmañōharu nambujōdaru jittajāta gurundalamceda
 Gāmitārtha vidhāyīnirjita kāliyāhini nāsrāyincea
 Nanuvugābhāsa nalalubhānusa manvitadvita yamulunālugu
 Nanimiśādhipa laghuyatiniḍaga nalaruvṛṣabhaga manamumēlagu.

Anantāmātya, Chandōdarpaṇamu, 3.60.

10. Layagrāhi.

Layagrāhi is a quatrain with 30 syllables and 39 Mātrās in each line. Example:

Uṛvara calmpagula parvata cayambaḍara harvibhu vinambunidhu
 laurvaśi khiyāḍan
 Būrvastu ranāgasura pūrvadi gadhīśayama vārvibhu dhanēśvarula
 garvamula ḍamgan
 Sarvaga pamukhynlunu sarvaga ṇabhōtamulu nārvana hibhūṣaṇamu
 lūrvadisalangam
 Dharvata tivāḍaga pūrvana ṭanāḍiguru sarvaga tusarvamayu
 sarvu nu tiyintun.

Nannacōḍa, Kumārsambhava, 2.100.

11. Layahāri.

One line of a Layahāri quatrain has 37 syllables and 39 Mātrās. Example:

Karanikāra mureviṭapā varamūlana garatalamu laruṇaruci
 dalirulana garajamulu puṣpō-

NOTES

1. Pattambu gattiya prathamambu nēdu balagarva moppaga
bailēci sēna

Pattambu gattiñci prabhupanda raṅgu pañcina sāmanta paduvatō

bōya

Kottamul vadrenḍu gonivēgi nātigo raiṇiya tribhuvanām kuṣṣabaṇa

nilci

Kaṭṭepu durgambu gaḍubayaḷ eṣi kaṇḍukṛt bezavāda gāvince

mecci.

2. Dhavalaguṇō dhavalayaśō

Dhavalitadinmandalō vadamitāratiḥ

Bhavnabhaktō bhayakarūṇō

dbhavabhavabhōgānvō vibhāti sukīrtiḥ.

3. Arinrpajivārṇa padātimahābhavirāmamārutaḥ

Varakarikārasusthitanibhāpravīrāsitabhānusannibhaḥ

Gurutaradinabhāgavatamānasamānitakalpapāda peḥ

Varakarigallabhumipabhujāsīrihāji bhuvī prabhsatē.

THE ROLE OF MATHEMATICS IN PHYSICS AND ITS ABSENCE IN THE VAIŚEṢIKA SŪTRA AND THE PRASASTAPĀDA BHĀṢYA.

Dr. KADAMBARI HARAVU

Pool Officer

Introduction:

Man finds himself confronted by a mass of confusing observations. In physics these observations must be contemplated and concepts formed, in order to construct a theory, in terms of the universal language of mathematics.

The ancient Greeks believed that there is a mathematical order in nature, that can be uncovered. According to Pythagoras, one of the early Greeks, number is the very stuff of the universe. ("There is some suspicion of Pythagoras' being influenced by the Sankhya thought"—p.298, The Complete Works of Swami Vivekananda). It was, perhaps, this deep-rooted belief in a mathematical design that led Galileo to introduce the mathematical approach to the study of nature. As M. Kline says (M. Kline 1962, pp. 315-316):—

"The scholars who fashioned modern science, Descartes, Galileo, and Newton, approached the study of nature as mathematicians. They proposed to find broad, profound, but also simple and clear mathematical principles either through intuition or through crucial observations and then expected to deduce new laws from these Principles, entirely in the manner in which mathematics proper had constructed its geometry and algebra."

Physical Theories:

A physicist observes natural phenomena in terms of a theoretical framework that is already present. He contemplates the observations he has before him and sets out to solve the problem of finding a

theoretical description in a mathematical framework that will describe and predict these observations. It may happen in a certain situation, that there is no fundamental theory to describe a set of observations but only semi-empirical approaches to such phenomena. In such a case, the theorist can only attempt to fit the data to a mathematical expression, arrived at by trial and error. Such an expression usually has a broad framework (that includes the semi empirical models and accepted mathematical techniques) as a point of reference. Let us now consider the method followed in constructing a theory in physics. A theory is a system of concepts that is created through the imaginative insight of a theorist, after contemplating the observed data. It is constructed according to the formal pattern set forth by the ancient Greek theorist, Euclid. That is, the theory starts with a base of axioms and definitions, from which it is constructed by logical deduction in a chosen framework. The conclusions arrived at by the theory may then be compared with observations. If the conclusions following logically from the axioms of the theory match observations, then the axioms are accepted as a possible set. But if the conclusions of a theory do not agree with observations, then the axioms have to be revised and the logical conclusions of the revised theory tested again and so on, in cycles of axiomatic-cum-pragmatic strokes. (F A. Matsen. 1970. p. 112), until the theory correctly predicts the observations. It is thus, that an acceptable theory of a physical phenomenon is constructed and the importance of mathematics is clearly seen here. Let us now consider the nature of physical concepts and laws.

Physical Concepts:

The first step in the study of a phenomenon is to form concepts. A concept is an idea that is mentally conceived by abstracting from particular observations and is put in mathematical form by the physicist. For instance, by observing a variety of motions, such as the motion of a tennis ball in the air, moving

car, etc., one is led to the concepts of position, velocity and acceleration. The concept of position is abstracted from the notion of the different locations of a moving object in space, at different instants of time. Position is generally denoted by a variable, x , that takes on different values at different times t . The concept of velocity comes from the notion of the rate at which distance is traversed by a moving object. Speed has magnitude alone (such as 20 miles per hour, for a moving car), but velocity, denoted by a variable v , has direction also (say, 20 miles per hour, east). One is familiar with accelerating objects in our everyday world, such as a child sliding down a slide, airplanes taking off on a runway etc. In both cases the speed steadily increases. The concept of acceleration denoted by a , is defined as the rate at which velocity changes. Any physical concept is quantitative. That is, it can be associated with numbers, by means of measurements. Even concepts that seem to have no such numerical significance are found to be related with measures. For example, the concept of equilibrium may strike one as having no measure associated with it. But it is not so, since a body is said to be in equilibrium when its acceleration is zero. The importance of measurement in connection with the definition of a concept is indicated by H. Poincaré (G. J. Holton and D. H. D. Roller 1958, P. 220):

"When we say force is the cause of motion we talk metaphysics, and this definition, if we were content with it, would be absolutely sterile. For a definition to be of any use, it must teach us to measure force, more over that suffices, it is not necessary that it teach what force is in itself nor whether it is the cause, or the effect of motion."

One may ask next "How is it that certain concepts survive, while other possible ones don't?" The survival of any physical concept depends on how useful it is in the description of a phenomenon. Sometimes it also depends on whether it recurs in a large number of

of descriptions and laws, even in areas other than that of its original formulation. It must also be remembered, that a successful concept is one that has evolved over a long period of time.

Physical Laws:

A physical law is a relationship between concepts. It is a postulate that is found to hold and that can be expressed as a mathematical relationship. That is, it may be stated in the following way: that a variable x is related to variables y, z by such and such a mathematical function. For example, for a heavy object falling from rest, we have the relation-

$$S = \frac{1}{2} gt^2$$

That is, the distance through which the object falls is related to the time of fall t , as given above, where g is the acceleration due to gravity, taken as a constant near the surface of the earth.

There are some relations that show that a given function of certain variables, under given conditions, is always, constant. The constancy of the acceleration of freely falling bodies is one such relation. All conservation laws, such as those of energy and momentum, are of this form.

One can speak of different kinds of laws, keeping in mind that the distinctions may not be sharp. There are empirical rules which summarize a large amount of observational data in a simple and concise manner, although the rules are not deduced from a set of basic principles. Kepler's laws of planetary motion are examples of empirical rules, that were later deduced from Newtonian mechanics

Another kind of law is one that is based on an induction that is not seen to follow necessarily from direct observation. Newton's laws of motion may be quoted as examples. For instance, the first law states that a body continues in its state of uniform (that is,

unaccelerated) motion unless acted on by an external force. This implies that unaccelerated motion is "natural" to the body. But where do we see natural, unaccelerated motion in our familiar world? A situation where no forces are present is an idealization that is not in our experience. Yet, since Newton's laws are most useful in describing a large variety of phenomena, they are considered to be the fundamental principles of mechanics.

In spite of the connotations of the word "law", no physical law is absolute. One can only say that it holds, as far as we know from various experiments and observations. Secondly, it may have a restricted range of applicability. The laws of Newtonian mechanics for instance, could deal with several observed phenomena. But when they came to regions where very high velocities were to be considered, relativistic laws had to be introduced.

The Interplay Between Mathematics and Physics:

The discovery of laws of nature does not follow a logical path. It may be a kind of inspired creativity that proposes new laws. It is believed that Galileo first postulated that the acceleration of all freely falling objects is constant. Then, it was from this postulate that he deduced the experimentally confirmable behaviour of falling and rolling bodies.

In the process of theory construction, the theorist not only creates the concepts, but also the mathematics that may be needed if the existing concepts and techniques are insufficient. Newton had to invent much of calculus for the construction of his mechanics. On the other hand, a theorist may use mathematics that has already been worked out. Kepler, in trying to fit the observed data on planetary motion to a curve, used the ellipse, whose properties were known to the ancient Greeks. Thus, there is an interplay between mathematics and physics that reveals itself in different ways.

An outstanding example of the interplay from modern physics, is Dirac's theory of the positron. When Dirac formulated and then solved the relativistic wave equation for the electron, he found that there were two sets of solutions, one belonging to positive energy states and another to negative energy states. These negative energy solutions posed a problem. Dirac proposed a solution to the problem, by showing that the negative energy solutions represent the motion of a new particle having the mass of an electron, but the opposite charge, called the positron. Shortly after this hypothesis, the positron was experimentally discovered. Thus, a mathematical problem of unwanted solutions turned out to represent physical particles.

The Problem of Consistency:

In spite of the glory of mathematics in the construction of physical theory, there is a problem of the consistency of the mathematical structure. Hilbert tried to establish consistency for the formal equivalent of our classical mathematics. The initial steps had been promising, but the programme had to be abandoned because of a discovery made by K. Godel.

K. Godel showed that in Hilbert's formalism or in any formal system M that is not too narrow, two things happen: (a) One can point out arithmetic propositions Φ of comparatively elementary nature that are evidently true, yet cannot be deduced within the formalism. (b) The formula $\neg \neg$ that expresses the consistency of M is itself not deducible within M ; that is to say, a deduction of Φ or $\neg \neg$ within the formalism M would lead to a contradiction in M . This questions the ultimate foundation of mathematics and, as Godel says (H. Weyl 1949, p. 235):

Many symptoms show only too clearly however, that the primitive concepts need further clarification.

Thus, no absolute statements can be made a theory since its consistency is itself not deducible within the formalism.

The importance of the role of mathematics in physics is, however, indisputable. It lies not only in the unambiguous, quantitative precision it brings into physics, but also in the structural basis it provides for physical theory.

The Absence of Mathematics in the Sūtra and the Bhāṣya.

As the title of this section clearly suggests, there is no common ground for comparing the mathematical approach to nature as seen in physics with the theories in the Sūtra and the Bhāṣya. The quantitative approach is the most important element in the study of physics as discussed earlier. But it must also be remembered, that it entered physics at a later stage, after generations of qualitative physics. From this point of view one need not entirely condemn the physics of the Vaiśeṣika texts. On the other hand, it is admirable that they even attempted to observe nature and the phenomena it reveals and tried to account for a variety of processes.

In the Sūtra and Bhāṣya, motion for example, is classified into five types. The first four are classified according to direction: that is, upward and downward motion and expansion and contraction. The fifth is motion in an unspecified direction. These motions are in turn analyzed according to the forces involved. In taking up specific examples of motion such as the motion of an arrow or a javelin, there is a general theory underlying the description. It is briefly as follows. Motion is induced in an object due to an external force and it is due to the quality of inertia (samskāra) that the successive motions take place, until the object is brought to rest by other contacts. We see here the precursors of the two classical concepts of force and inertia, though not defined quantitatively as in Newton's scheme (so that a prediction can be made of other similar events). But what is important is, that there is a beginning of the formation of physical concepts such as inertia, force and work.

There is no mention of measurement of any quantity except the intervals of time in terms of units. Vaiśeṣika mathematics stopped with counting. Number (*saṃkhyā*), the beginning of mathematics, is a quality for the Vaiśeṣika School (I, 1). There is, however, a quality of measure (*parimāṇa*) which is basically of four kinds: minute, large, short and long. These are rather ambiguous measures, since there is no common unit with reference to which any measurement can be determined.

No sign of the development of geometry is seen, in either one of the texts. There are ten fixed directions in space which could have suggested the notion of symmetry, the figures of a circle, triangles and cones; but these were apparently not made a subject of theoretical study by the Vaiśeṣika school as by the Greeks.

The quantitative approach to nature first arose in Western science, even though now, one does not speak of such a division between Eastern and Western science. One may well wonder why such an approach did not make its appearance in India, even though pure mathematics did develop there to a certain extent (B. Datta and A. N. Singh 1962). In fact quoting from Vedic Mathematics (Sankarācārya of Govardhana Matha, 1971, p. xx) "the conscientious (truth-loving and truth-telling) historians of Mathematics (of the lofty eminence of Prof. De. Morgan etc.) have not been guilty of even the least exaggeration in their candid admission that "even the highest and farthest reaches of modern Western mathematics have not yet brought the Western world even to the threshold of Ancient Indian Vedic Mathematics."

If this was the case, why was the mathematical approach not applied to the study of nature in India? Could it be because there is no such belief in a mathematical design of nature in the Indian tradition as there is in the Greek?

சுருக்கம்

இது ஒரு சிறிய கவிதை நூல் ஆகும். இதில் 100 கவிதைகள் உள்ளன. இவை எல்லாம் கவிதை நூல்களில் உள்ளவை.

இது ஒரு சிறிய கவிதை நூல் ஆகும். இதில் 100 கவிதைகள் உள்ளன. இவை எல்லாம் கவிதை நூல்களில் உள்ளவை.

இது ஒரு சிறிய கவிதை நூல் ஆகும். இதில் 100 கவிதைகள் உள்ளன. இவை எல்லாம் கவிதை நூல்களில் உள்ளவை.

NOTICE

All Correspondence regarding this journal and books for review may be sent to:

THE DIRECTOR & PROFESSOR OF SANSKRIT,
Oriental Research Institute & Manuscripts Library,
University of Kerala, P. o. Karyavattom, Trivandrum-17

Printed at the Vijnana Bhavan Printers, Manacaud, Trivandrum-9
and Published by Dr. K. Raghavan Pillai, Director & Professor Sanskrit
ORI and Mass, Library for the University of Kerala.

Vol XXI

Part II (Half yearly)

JOURNAL
of
The Kerala University
Oriental Research
Institute
and
Manuscripts Library



EDITOR
Dr. K. Raghavan Pillai

A.D. 1977/M. E. 1152

S. E. 1399



Licence No. 664, dated 3-9-1949

Vol **XXI**

Part II (Half yearly)

JOURNAL

of
The Kerala University
Oriental Research
Institute
and
Manuscripts Library



EDITOR

Dr. K. Raghavan Pillai

A.D. 1977/M. E. 1152

S. E. 1899

SECRET

SECRET

SECRET

SECRET P

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET T

SECRET S

SECRET S

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET S

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET

SECRET S

SECRET S

श्री नाथनवरत्नमाला

भास्कररायकृता

स्वकृतमञ्जूषाव्याख्यासहिता

श्रीनाथादिगुरुत्तयं नत्वा गम्भीररायसूरिसुतः ।

नाथनवरत्नमालागूढार्थं व्याकृतिं तनुते ॥

इह खलु निखिलोपासना गुरुप्रसादाल्लभ्या 'गुरुमूलाः क्रियाः सर्वाः' इति वचनात् । तत्प्रसादश्च तत्स्वरूपोपास्तिमन्तरा दुर्लभः । तद्रूपं तु त्रिविधं स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति । तेष्वष्टां 'सहस्रदलपङ्कजे सकलक्षीत-रश्मिप्रभम्' इत्यादिना करचरणद्यवयवविशिष्टेष्टत्वेनोक्तं प्रसिद्धम् । द्वितीयं गुरुपादुकामन्त्ररूपम् । तृतीयं वासनात्मकं रहस्यत्वात्सङ्केतभाष्यो-?षयो)पासकानुजिघृक्षया विवृणोति—

Bhāskara Rāya

Born as the second son of Sri Gambhīra Rāya and Srimatī Konamāmbā in the town of Bhāga in Andhra Sri Bhāskara Rāya became famous among tantriks through his efforts to establish the greatness and correctness of śakti worship. He flourished in between 1680 AD and 1768 AD. This savant has to his credit the authorship of about fortythree works in various subjects like Veda, Tantra, Smṛti, Vedānta, Mīmāṃsā, Njāya, Vyākaraṇa and Sāhitya. He is said to have attained many superhuman powers through SriVidyāsādhana, the highest path in śakti worship. He shed his mortal coil at a ripe old age in the place called Madhyārjuna (Tiruvidaimarudūr)

The present work Nāthanavaratnamāla and its commentary Manjūṣa are also the products of his pen. In these works he explains the concept of Guru in SriVidyā philosophy.

The edition is based on Ms. No. 9598 available in this institute.

हंसः सोऽहं मन्त्रमयः श्वासनिकायै-

र्या गायत्री जन्तुषु सर्वेषु पिनद्धा ।

तद्रूपः सन्नाधिरभूद् वासनया य-

स्तं सन्मार्गं मसमधूरं गुरुमीडे ॥१॥

हंस इति । प्राथमिकसृष्टौ यद् बिन्दुत्रयं प्रादुरभूत् तत्र बिन्दुः
पुमान् विसर्गः प्रकृतिः । ताभ्यां क्रमेण स्वस्य विशिष्टहकारसकारा-
वृत्तिनी (सोऽयं?) हंस इति अजपानामको मन्त्रः तस्यैव वैषरीत्यकण्ठे
सोऽहमिति परमात्ममन्त्रश्च परमात्मनि योगे तु परा प्रासादमन्त्र इत्यादि
शारदायां चरमपटलेऽन्यत्र च वक्तव्यं । तदिदं परस्पराभिन्नमन्त्र इत्यादि ।
उच्छ्वासनिःश्वासरूपम् । 'उच्छ्वास एव निःश्वासो हंस इत्यक्षरद्वयम्'
इति वचनात् । स च मन्त्रः सर्वैः प्राणिभिरहोरात्रसम्मिमे काले षट्शता-
भिकैर्कविंशतिसहस्रमावृत्यते । सोऽयमनायासेन जप(त)स्त(या?दा)त्वे
तज्ज्ञानमोक्षान्मोक्षप्रदत्वात् सर्वमन्त्रोत्तमः । तदुक्तम्-

हंसः पदं परेशानि! प्रत्सहं जपते नरः ।

मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्मान्न विद्यते ॥

श्रीगुरोः कृपया देवि ज्ञायते ऽप्यते ततः ।

तस्योच्छ्वासैश्च निःश्वासैस्तथा बन्धक्षयो भवेद् ॥ इति,

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।

तस्माः सङ्कल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ।

अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥

इति च । तदुपासनेतिकर्तव्यता शारदायां चतुर्दशपटलेऽन्यत्र विस्तृ-
तेति नेहोच्यते । गुरुदेवतामन्त्राणां चैक्यात् ते सर्वे श्वासा नाभरूपा एव ।

अक्षरार्थस्तु—हंस इत्यजपामन्त्रादिरूपश्वाससमूहाभिन्ना या गायत्री सर्वप्राणि-
ष्वविच्छिन्ना वर्तते तदभिन्नः सन् वासनात्मकरूपेण यः प्रादुर्भूतः तं गुरुं
नौमि । स एव च गुरुः सतां मार्गं मुक्तिपुरीगमनोपायः । ‘गुरुर्वायः’
इति शिवसूत्रात् । आनन्दमत्तो मयूरः पिच्छावयवान् प्रसार्य मृत्युकाले
यथा विचित्ररूपो दृश्यते न तथा कालान्तरे । अतस्तस्य तद्रूपमाच्छन्नम् ।
एवं गुरोरपि वक्ष्यमाणविचित्ररूपमाच्छन्नमस्ति । गौण्या मत्तमयूरपदेन गुरुः
स्तूयते । अस्मिन् स्तोत्रे दशापि श्लोका मत्तमयूराभिधवृत्तरूपाः । तल्लक्षणं
चोक्तं पिङ्गलमुनिना—‘मत्तमयूरा मात् तो यसौ गः समुद्रनवकौ’ इति ।
मतयसगणा गुरुश्च प्रतिपदं चतुर्भिर्नवभिश्च यतिरिति तदर्थः । प्रकृते
युक्तेरेव पदेः सूच्यार्थकथनादिह मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं चन्द्रालोके—
‘सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः । नितम्बगुर्वी तरुणी दृग्युगमविपुला
च सा’ इति । सङ्केतरीत्या तूक्तश्वाससंख्याया अपि पदद्वयेन सूचनात् समौ
बालङ्कारः । तत्प्रकारस्तु ‘कटपयवर्गभवेरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः । न शून्यं
ज्ञेयं । तथा स्पर्शं केवले कथिते’ इति श्लोकोक्तरीत्या मकारः पञ्चम-
संख्यासङ्केतकः । षष्ठाङ्के यकाररेफाकाराः एकद्वित्र्यङ्केषु सङ्केतिताः ।
तथा अङ्कानां वामतो लेखे सति मत्तमयूरपदेन एकविंशतिसहस्रतः पञ्च-
शतानि पञ्चषष्टिश्च कथितानि भवन्ति । (२१५६५) । सन्मार्गोऽपि
वस्मिन्निति व्युत्पत्त्या मार्गशब्दोक्तपञ्चविंशतिसंख्याया अस्यां भेलनेन षट्-
शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्यानिष्पत्तिरिति । एवमग्रेऽपि सङ्केता अव-
गन्तव्याः ॥१॥

उद्यद्वास्वन्मण्डलकालादिनित्या—

विद्यारूपः प्राप षडर्थो नरभावम् ।

यस्तीर्थोऽस्मा मण्डलपूर्वाक्षरवर्ष्मा

तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥२॥

तन्त्रराजेऽपि सप्तविंशपटले श्वासानां वासनाद्वयमुक्तं—‘संख्यानां वासनाव्याप्तं श्वासानां शृणु सुन्दरि । यया विदितया मन्त्री सदा भजनवान् भवेत् ॥’ इत्यादिना । तयोः प्रथमां वासनां चतुर्भिः श्लोकैः प्रदर्शयति उद्यदित्वादिभिः । सूर्यमण्डलोदयमारभ्य प्रथमतः श्वासा एकैकदिननित्याविद्यारूपाः । अ आ इ ई इत्यारभ्य क्षः क्षा इत्यन्ता मन्त्राः षट्त्रिंशदधिकसप्तशतोत्तरविंशतिसहस्रसंख्याकास्तन्त्रे प्रसिद्धाः । एते स्त्रीदैवत्या—तया विद्या इत्युच्यन्ते । ‘स्त्रीदैवत्या स्मृता विद्या पुंदैवत्यास्तु मन्त्रकाः’ इति कोशात् । गुरुनाथस्तु तावद्रूपः सन् एवं नरभावं मनुष्यत्वं भक्तानुग्रहाय प्राप्तवान् । स च षडर्थी षण्णामर्थानां समाहारस्वरूप इति च विद्याया अर्थः योगिनीहृदयव्याख्यायामस्माभिः प्रपञ्चिता । षडर्थनरशब्देन (२०७३६) दिननित्याविद्यानां संख्या चोक्ता । एवमुत्तरत्र सर्वत्रापि संख्या सङ्केताक्षरपदानां श्रीगुरोः श्लेषेण ध्वन्यर्थतयावसेया । तत्परतः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतश्वासाः पूर्णमण्डलाक्षररूपाः । अकार एकः ककारादिककरान्ताः पञ्चत्रिंशद् व्यञ्जनानि चेत्येवं षट्त्रिंशदक्षराणां प्रत्येकमकारादिषोडशस्वरसंयोगे संयुक्तसंख्यान्यक्षराणि भवन्ति । तानि पूर्णमण्डलपदेन दिनारणपदेन च तन्त्रे व्यवह्रियन्ते । तदभिन्नं वर्षं शरीरं यस्य सः तीर्थात्मा गुरुरूप एव । ‘तीर्थमृषिजुष्टे जले गुरौ’ इत्यमरः । तीर्थात्मपदं (५७६) चोक्तसंख्यां वक्ति ॥२॥

तत्पाश्चात्यप्राणसमूहैर्नवनाथा

यः षड्त्रिंशत्तत्त्वमयेः षोडशनित्याः ।

एवंरीत्योपासितसन्ध्यात्रयमूर्ति —

स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥३॥

पूर्णमण्डलात्परे नव श्वासाः प्रकाशादिमुभगान्तं नाथनवकरूपाः । ततः शिवादिक्षित्यन्तास्तत्त्वरूपाः षट्त्रिंशत् । तदुत्तरं त्रिपुरसुन्दरीकामेश्वर्यादि-
नरे चित्रान्तरूपास्तु षोडश । इतदेव क्रमेण सन्ध्यात्रयमुपास्यते । तेन तद्वा-
सनारूपो गुरुरेवेत्यर्थः ॥३॥

श्वासेः षष्ट्या षष्टिर्घुटिर्देवतरूपो

मेषप्रष्ठद्वादशराशिप्रतिमानः ।

अर्काद्यात्मा यो नवसंख्याग्रहमूर्ति-

स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥४॥

विसर्गरहितानां पञ्चाशन्मात्राणां दशदशाक्षरैरेको वर्ग इत्येवं पञ्च-
वर्गा अकचतयनामानः । तेषु प्रथमवर्गस्यादावन्ते च जपे सति षष्टिवर्णा
अहोरात्रस्य घुटिकारूपा भवन्ति इति तन्त्रे स्पष्टम् । नित्याश्वासानन्तरं
षष्टिश्वासास्तद्देवतात्मानः । ततो द्वादश मेषादिराशिरूपाः । प्रष्ठशब्दः
अग्नेसरवाची सन् प्रभृतिपरः । 'प्रष्ठोऽग्रगामिनि' (पा-सू-८-३-५२) इति
निपातनात् । तदुत्तरं नव श्वासा अर्कादिनवग्रहरूपाः । तत्स्वरूपो गुरुस्ति-
त्यर्थः ॥४॥

पञ्चात्मा यो भूतनिकायो गतमायो

यः पञ्चाशद्वर्णवपुः(श्चित्र ?श्चक्र)गताभिः ।

शक्त्यालीभिः सङ्कृतिमानेकनवत्या

तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥५॥

ग्रहात्मकश्वासानन्तरं पञ्च श्वासाः आकाशादिपञ्चभूतरूपाः । तदुत्तरं
पञ्चाशच्छ्वासाः मातृकारूपाः, तासामेकपञ्चाशतो मध्ये विसर्गस्वरत्यागात् ।
तदेतच्छ्लेषेणाह- गतमाय इति । मायाशब्दः विसर्गस्वरवाचकत्वात् तद्रहित
इत्यर्थः । तदनन्तरमेकनवतिः श्वासाः(श्चित्र ?श्चक्र)स्थिताः आवरणशक्ति-
समूहरूपाः तासामेकनवतित्वं मूले । एवं नवमश्लोके विशदीकरिष्यति । ततश्च
पूर्वोक्तसंख्यानामेकीकरणे श्वाससंख्यापूर्तिः सम्पद्यते । तदुक्तं तन्त्रराजे-

नित्यातत्त्वाप्तविद्यानां संख्याः स्युः पूर्वमेकशः ।

ततो दिनार्णसन्ध्याश्च ततश्च घुटिकार्णकाः ॥

राशयो द्वादश तथ ग्रहा भूतानि पञ्च च ।

मातृकाश्चापि पञ्चाशत् श्रीचक्रस्थाश्च शक्तयः ॥

सैका नवतयः प्रोक्ता देवी सर्वात्मिना स्थिता ।

इति । नित्याः षोडश स्वराः तत्त्वाक्षराणि पूर्वोक्तानि तेषामाप्तिः पर-
स्परसंयोगविशेषरूपः प्रस्तारः तत्संबन्धिनीनां द्विनित्याविद्यावामित्यर्थः ।
शिष्टः स्पष्टः ॥५॥

यद्वा पञ्चाशल्लिपिपीठेकरदाना-

मावृत्त्या सद्यः फलवान् देशिकवर्यः ।

ज्ञानोत्तुङ्गो डरलकसहषट्कविवर्ते-

स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमौडे ॥६॥

एतावता बन्धेन श्वासानामवग्रहो विभागेन वासञ्च उपदिश्येदानीं
सम्पूर्णस्य श्वाससमूहस्यैकैका वासना उपदिशति । उक्ताया वक्ष्यमाणानां
च वासनानामन्यतमानुसन्धाने विकल्प्य द्योतनार्थो व्याकारः । इमाश्च
वासना मूलेऽनुक्ता अपि पूज्यपद्ममुखमद्भगताः इति तु मनोरमाकारः ।

आद्यषोडशनित्यानां कालेन प्राणतोच्यते ।

मातृकाभूतनाथाद्यैः श्रीचक्रेण च शक्तिभिः ।

इति पटलादारभ्य प्रतिज्ञाश्लोके सूचिता इति तु निधिकारः । कालेन
प्राणता श्वासात्मककालभेदाः । अत्राद्यपदेन ग्रहतत्त्वनित्या घुटिकाराशयो
गृह्यन्ते । श्रीचक्रशब्देन तदन्तर्गतत्रैलोक्यमोहनादिनवचक्राणि । शक्तिशब्देन
श्रीचक्रस्थाः षण्णवतिशक्तय इति व्याचष्टे ।

अस्तुतस्तु मातृकापदेन गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिपीठानां लघुषोढान्यास-
 देवतारूपाणां ग्रहणात् तैः सह मातृकाऽभेदस्य तन्त्रराजे एव 'गणेशग्रहनक्षत्रे'
 त्यादिद्वादशश्लोकीस्तवेन कथनात् 'गुरुदेव्योस्तेः सहाभेदस्य योगिनीहृदये
 कौलिकार्यप्रकरणे वर्णनाच्च । 'नित्याहृदयसम्प्रोक्तस्फुटोत्पत्तेः भावयेद्'
 इति वचनेन योगिनीहृदयोक्तभावनासापेक्षितायाः स्वतन्त्रे स्वीकारात् ।
 तस्मादाद्यपदेन नित्यातत्त्वादेरेव ग्रहणम् । (विषयः?) अकाराद्या वर्णाः,
 पीठाः कामरूपादयः, एकरदा विघ्नेश्वरादयो गणेशाः, एते त्रयोऽपि
 गतमायाः सन्तः पञ्चाशदेव । आससंख्यापिण्डस्य पञ्चाशता विभागे द्वा-
 त्रिंशदुत्तरचतुःशती लब्धा । तेन तावद्द्वारमावृता लिप्यादय एव आसा
 इति वासनात्रयम् । आवृत्तिश्च षण्डकलितन्यायेन स्वस्थानविवृद्धाविति तु
 गुरुमुखादेव विनिर्णयम् । पदेन लब्धा संख्योक्तिः । डाकिन्यादियोगिनी-
 षट्कात्मकतया आसवासनामाह-ज्ञानेति । जाकारनकारौ तकारगकारौ
 षट्त्रिंशत् परे । तेन त्रीणि षट्शतानीत्यर्थः (३६००) । षड्भिः श्वास-
 संख्याविभागे तावत् एव लाभात् । डरलकसहेत्यनेन नामैकदेशे नाम-
 ग्रहणमित्यनेन न्यायेन डाकिन्यादय उच्यन्ते । याकिन्या सह सप्तसंख्या
 तु न शङ्कनीया "शक्तिः षड्भिरथोत्तरैः" इत्यादिना योगिनीहृदये षण्णमेव
 ग्रहणात् । याकिन्याः षट्समष्टिरूपेण व्यष्टितो भेदाभावात् । "सप्तानां
 ग्रहण" मित्यमृतानन्दव्याख्या तु सेतुबन्ध एवास्माभिर्निरस्ता । यत्तु योगि-
 नीपदस्य वक्षिन्याद्यष्टकपरत्वेन कास्वराणां व्याख्यानं तत्पक्षेऽपि न दोषः
 अष्टभिः आसानां विभागे सप्तशतोत्तरसहस्रद्वयस्य लाभेन श्वाससंख्या
 (नि?नां) निःशेषत्वसम्भवात् ॥

अत्र वृत्ते पञ्चमाष्टमाक्षरयोर्गुरुत्वस्यावश्यकत्वेऽपि तयोः स्थाने
 'द्विद्विलघुनिवेशो कास' इति सूत्रेण लघ्वस्य गुरुकार्यकारित्वविधानबलात्

∴ आस्करायकृतयोगिनीहृदयाख्या सेतुबन्धः ।

स्वीकृतः । तत्सूत्रस्य मात्राच्छन्दोविषयकत्वेऽपि वर्णच्छन्दस्यपि कतिपयवृत्तेषु तदङ्गीकारो ज्ञापकसिद्ध इति छन्दोभाष्यराजादौ प्रपञ्चितमस्माभिः । प्रयोगोऽपि—“वन्दे रामं मरतकवर्णं मुनिवन्द्यम्” इत्यादि ॥६॥

नेत्रोद्गाढो शशिकरभूतसमूहै-

रेनोहारी यो नवनाथग्रहचक्रैः ।

नक्षत्रस्यावृत्तिभिरानन्दशरीर-

स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥७॥

नेत्रांशे उद्गाढोऽतिदृढः इत्यनेन दूरदर्शित्वादिकं गुरोर्भूतम् । पञ्च-
भूतसंख्यया श्वासविभागे सति चत्वारि सहस्राणि त्रीणि शतानि विश-
तिश्च लभ्यन्ते (४३२०) इति तावद्वारमावृत्ताः श्वासा गुरुरूपा एवेत्यर्थः ।
नाथ।दिनवकरूपवासनात्रयमाह-एनोहारीति । पापहा महागुरुः चतुःशता-
धिकसहस्रद्वयं (२४००) वारावृत्त्या (दि?) (नव)नाथादिरूप इत्यर्थः ।
अष्टशतावृत्त्या गुरुनक्षत्ररूपोऽभूदित्याह-नक्षत्रस्येति । जातावेकवचनम् ।
आनन्दशब्देनोक्ता ८०० संख्या प्रदर्शिता ।

नित्यावृत्ताबीशलयः सन्नचलोऽभू-

न्नाद्या वृत्ताराशिषु नानाजपरूपः ।

अभ्यस्यद्विस्तत्त्वगणैरुन्नतमूर्ति-

स्तं सन्मार्गं मत्तमयूरं गुरुमीडे ॥८॥

नित्येति । षोडशनित्याभिः श्वासानां विभागे सहस्रोत्तरसार्धत्रिंशती
(१३५०) लभ्या । ईशे परेशे (लयो) यस्य स गुरुः ‘तत्संख्यातनित्या-
वृत्तिरूपः दशध्यानसमो लय’ इति लक्षितः समाधिविशेषो लय इत्युच्यते ।
षष्टिनाडीदेवतासंख्यया विभागे त्वचलो भवेत् । षट्स्युत्तरशतत्रयसंख्यो
जातः (३६०) । राशिष्ववर्तमानेषु नानाजपात्मा १८०० अष्टशता-
धिकसहस्ररूपः । षट्त्रिंशत्तत्त्वगणाभ्यासेनोन्नतस्वरूपः (६००) षट्शतसंख्य
इत्यर्थः ॥८॥

धृत्युर्वी(ष्टे?)न्रविगाशाहियुगलि-

प्रोक्ताभिः पुंहेतिभिरम्बाभिरभिन्नः ।

आवृत्यैवं षण्णवतेर्यः शिखरास्मा

तं सम्मार्गं मत्तमयूरं गुदमीडे ॥९॥

चक्रस्य शक्तिसमूहात्मकवासनामाह-धृ(ते?)तीति । धृतयोऽष्टादश-
देवतापुरःस्था अणिमादय दश । ब्राह्म्याद्यष्टौ । कादिमते तृतीयरेखाया
अकथनेन तत्रत्यमुद्रादेवतादशकस्याभावात् । उर्वीशाः षोडश कामाकर्षि-
ष्याद्याः षोडशदलपद्मस्थाः । अष्टावनङ्ककुसुमादयोऽष्टदलपद्मस्थाः ।
इन्द्राश्रतुर्दशसर्वसंक्षोभिणीमुद्रादयो मन्वस्त्रगताः । दिशो दश बहिर्दशारे
सर्वसिद्धिप्रदायः । आशा अपि दशान्तर्दशारे सर्वज्ञाद्याः । अह्यो वशि-
न्याद्या अष्टकोणस्थाः । [त्रिकोणस्थाः] कामेश्वर्यादिदेवताः । एताः सं
[हृ?हृ?]त्पैकनवतिः संख्यावत्त्वे[न]पञ्चमश्लोके प्रोक्ताः । तावतीनामेव ग्रहणे
श्वाससंख्याया एकनवत्या विभागो निःशेषतया असम्भभात् विभजनाङ्के
पञ्चानां मेलनेन षण्णवतित्वमापादयितुमाह-पुंहेतिभिरिति । कामेश्वर्यायुध-
देवताभिश्चतसृभिरित्यर्थः । इमाः पञ्चनवतिरम्बाबिम्बस्थाः प्रधाना अम्बि-
केत्येकशेषाभिप्रायेणाम्बाभिरित्युक्तम् । एवं प्रकारेण षण्णवतेर्देवतानामावृ-
त्या शिखरात्मा सर्वोत्तमस्वरूपो गुरुः सपाद[दश?शत]द्वयावृत्तिमानासीदि-
त्यर्थः ।

ननु 'चक्रेण शक्तिभि' रित्यत्र शक्तिसामान्यवाचकस्यापि पदस्यास्यै
[का नवतयः? कनवतिः] प्रोक्ताः । 'श्रीचक्रस्थाश्च शक्तयः' इत्यनेनोपसंहारा-
देकनवतिदेवताः सिध्यन्तीति न पुंहेत्यादिग्रहणे मानं पश्यामः । न च

तथा संख्यायाः श्वाससंख्याविभागे निरवशेषतासंभवादेव वक्ष्यानामेकानां
योग इति वाच्यम् । तस्याः कतिपयन्यूनताधिकत्वेनापि सम्भवात् ।
धृत्यादिनवसंख्याभिः प्रत्येकं विभजनेऽपि तत्सम्भवाद्वा । इन्द्रसंख्याया
विभागे द्वादशानामवा[श्ये?श्यकत्वेऽ]पि तेषां राशिवासनाकल्पना-
सम्भवात् । न चैवं वासनासाङ्ख्ये यथावस्थितेकनवतिभागाः शेषस्यापि
वासनकल्पमयैवोपात्ता प्रतिपन्नकदेवत्वासंख्यानां प्राप्तिस्त्वनिकं विभाजकत्व
[मत्विना?मपि] न स्यादिति वाच्यम् । एकनवत्या विभागे स्यस्तिशतौ
विशेषेण तस्योक्तमातृकादिभिन्नत्वेन स्वच्छाया देवतान्तरकल्पनाया अव्य-
वस्थापत्तेरिति चेत्तु मैवम् । इह सम्प्रदायस्यैव शरणत्वात् । अत एव मनोर-
मायां 'शक्तिभि'रितिपवम् एकनवतिषण्णवतिपरत्वेन द्वेधा व्याख्याय एकत्र
वचनम् अन्यत्र गुरुमुखागम एवोत्तरग्रन्थे प्रमाणमुपन्यस्तम् । इदं तु
सुवचनम्—'श्रीचक्रेण चे' ति [चक्र?तन्त्र-]राजे नवचक्रसंख्यासमेतैकनवति-
समुच्चयरूपायां (श?श्वास)संख्याया निरवशेषो भागो विधीयत इति ।

न चैकनवत्या विभाजकत्वायोगात् तदाधारचक्रनवकमेलनस्य न्याय-
सिद्धत्वेन भन्वसेऽपि तथा रचनाक्रमात् तस्य मेलनेन तावन्मात्रांशे पञ्च
[देश?शत]संख्याया विभाजकत्वकल्पनेन निरव(वि?)शेषताऽसम्भवात्
धृत्यादिभिः पार्थक्येनैव चक्रस्य त[न्त्र?त]मेलने[न?]उपपत्त्यभावेन नव-
चक्रसंख्यामेलनस्य वाचकत्वाङ्गीकारेणैव निर्वाहादिति दिक् ॥९॥

इत्यग्रथनाद् भास्कररायो नवरत्नै-

मालामग्यां नाथरहस्यं गमयन्तीम् ।

येषामेका कण्ठगता ते जगदम्बा

विद्याभ्यासादत्र जनुष्येव महेशाः ॥१०॥

कृतस्य नाथनवरत्नमालिकानाम्नः स्तवस्योपसंहारपूर्वकं तदर्थानु-
सन्धानपूर्वकं, पाठपराणां गुरुभक्तानां श्रीविद्योपासकानां सद्यः परशिव-
भावप्राप्तिः फलतीत्याह—इतीति । मालास्तोत्रयो रूपकानुगुण्याय प्रबन्ध-
रचनमालारचनोभयवाची ग्रन्थिधातुः प्रयुक्तः । नाथरहस्यं तद्रूपम् । अत्र
जनुष्येव अस्मिन्नेव जन्मनि । महेशाः परमशिवरूपाः उक्तं तन्त्रराजे—

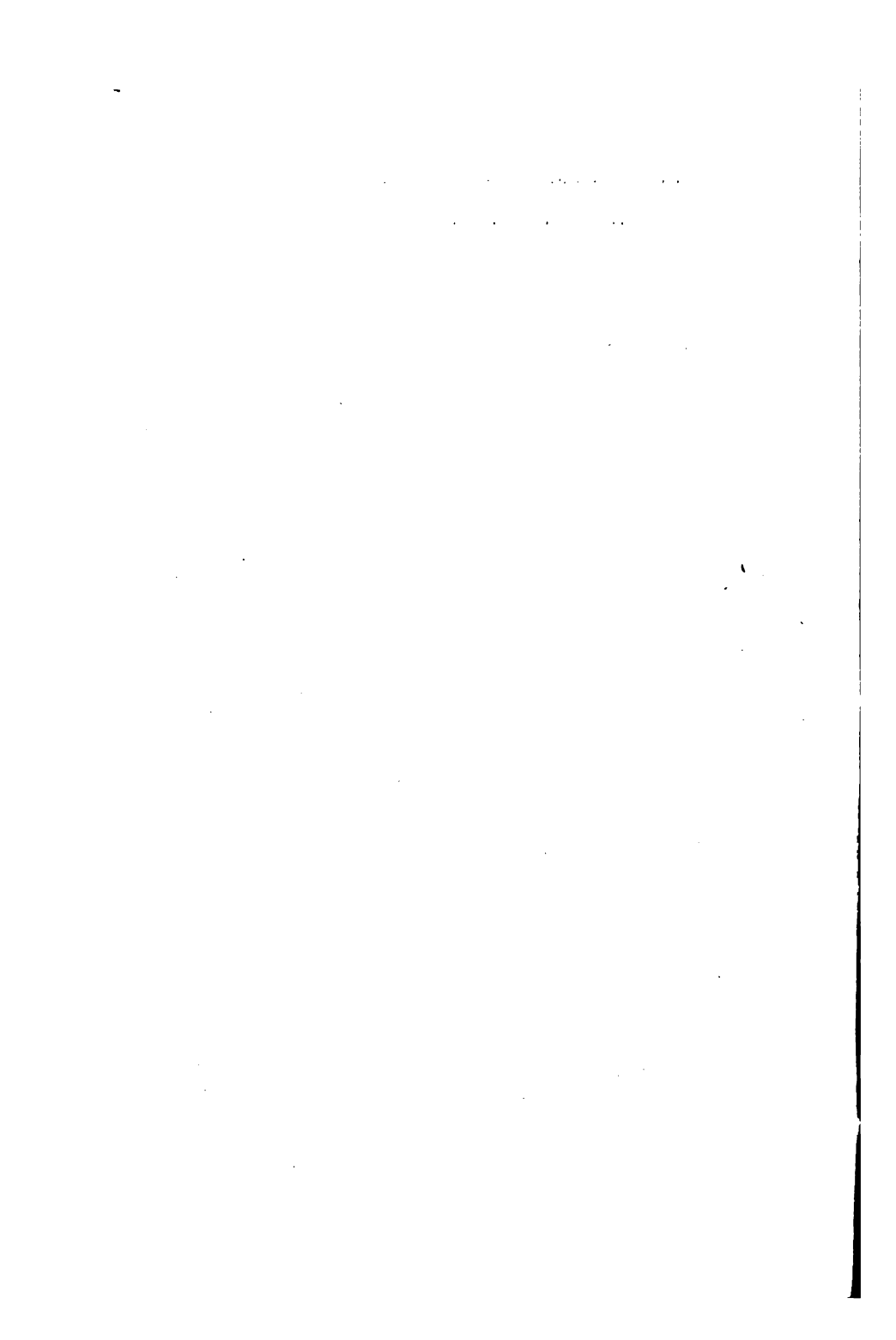
‘एवंविधां वासनां यो भावयेत् स महेश्वरः’

इति सर्वं शिवम् ॥

इति श्रीमन्नाथनवरत्नमालाभिधस्तुतेः

मञ्जूषा भासुरानन्दनाथेनाकारि गुप्तये ॥





कैलासवर्णनप्रबन्धः

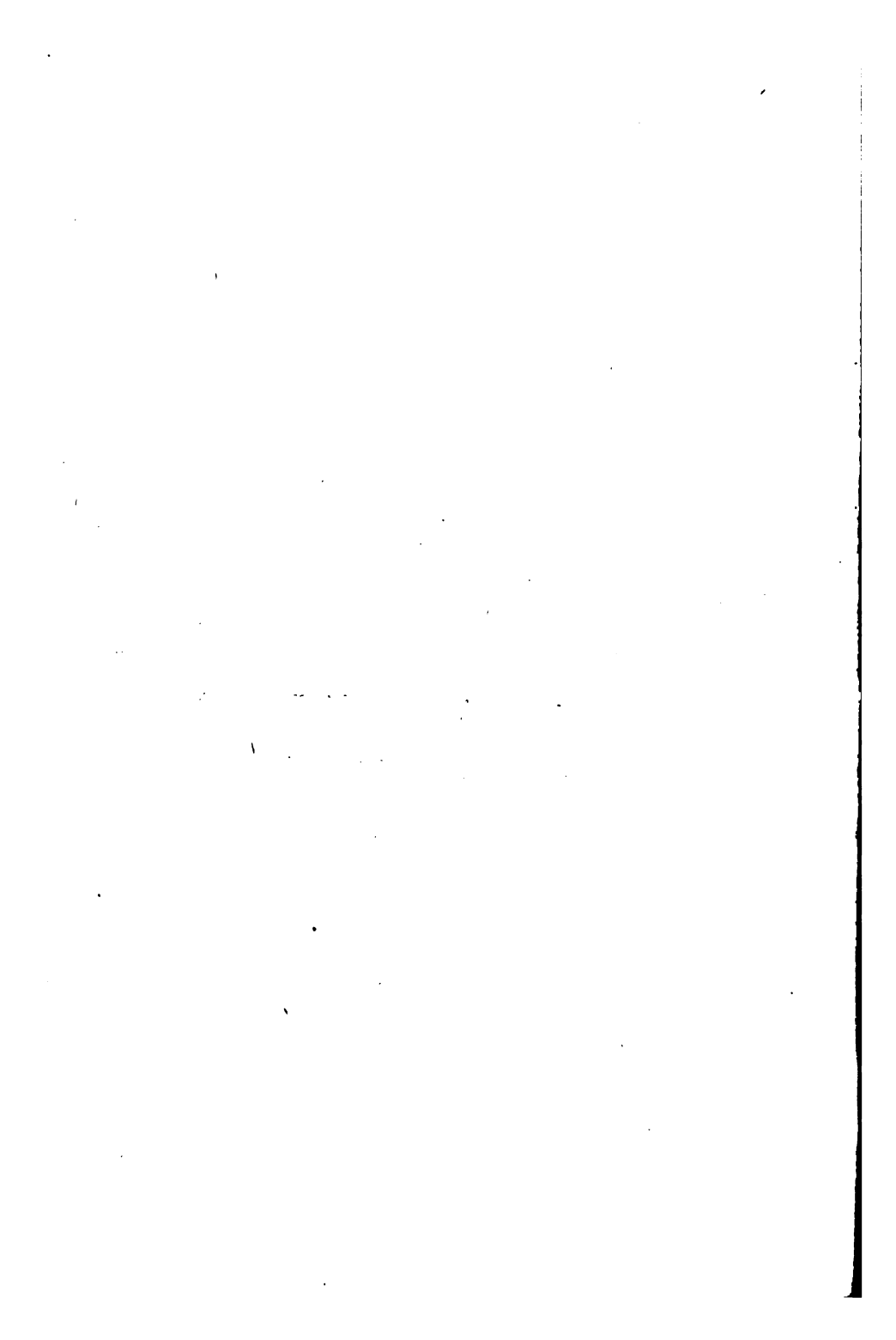
नारायणभट्टकृतः

अथ विमतजनविलासिनीनयनवारिनिर्झरप्रवर्धनकलाकौशलधुरीणदोर्दण्ड-
चण्डिमा स पाण्डवसूनुः आरादेव दूरतरविसारिणीभिर्नारायणभुजबललोह्य
(वीम? मान) मन्दरमहीधरन्दोलितकलशाम्बुराशिकल्लोलमालापरस्परान्मर्द-
निष्पत्त(र? त्)-फेनकूटमाण्डित्यपाटञ्चरद्युतिभिः उत्तालताण्डवाडम्बरप्रसृमरप्र-
मोदत्रिपुरहरवदनसरसिजोदित्व (रम? रा) दृहासद्युतिनिवहसचरिणीभिः अवि-
रतसन्निहितपशुपतिमकुटशशाङ्कलेखासौहृदय्यसमापतितसकललोककैलासक-
न्तिकदम्बकविडम्बिनीभिः प्रभामण्डलीभिः अपहितापरवर्णाधिकरणधावैर्य-
द्वैतविद्यासिद्धान्तमध्यापयन्तमाशाविभागान्, अन्तरिक्षपरिमाणजिघृक्षयेवं स्वी-
कृतनिरतिशयौन्नत्यपरिणाहैः अतिवेलनैर्मल्ययोगादविभाव्यमानरूपैः स्वेच्छा-
नुरूपसञ्चाररसिकदिविजविमानसरभससंघट्टसाध्वस (I?) ध्वस्त (मान) मानिनी-
स्वयंग्रहसुखायमानवैमानिकाभिनन्द्यमानैः अपेनसंघ्यैः शिखरैः उल्लिखितो-
ध्वण्डकटाहम्, अमरनगरतरङ्गिणीतुङ्गततरङ्गभङ्गशीकरभारिबालसमीरणसञ्च-
रणसुभगलताभवनविहरण (मना?) सु(?) चारणकिन्नरसीमन्तिनीवदनसरसिञ्ज-
निर्गच्छदच्छिन्न [भवदवदात] गर्भनिर्भरमनोहरसंसीताकर्णनसमुत्सुकस्तिमितोत्क-
र्णकुरङ्गयूथम्, अमृतकरकरावमर्शदुतशशिकान्तमणिनिष्यन्दक्षरीसहस्रोपकण्ठ-
प्ररुद्धैः इतरेतराश्लेषनिबिडविटपदुर्वहफलकुसुमकलिकाकिसलयमुलुच्छच्छदभरा-
वनम्रैः पादपैः उपशोभितोपान्तदेशम्, अभ्यर्शविक्रीडदमरेश्वरोपवाह्यसाध-
र्म्यदुर्वहैः स्फटिकमणिगण्डशैलैरुपरुद्धैकभागम्, क्वचिद् अतिचिरारब्धतपोयो-

गविगलितमहामोहमहिमोज्ज्वलहृदयपुण्डरीकमध्यप्रतिष्ठापितपरमशिवस्वरूपैः
 अशेषकलुषराशिचूर्णीकरणनिपुणवृद्धाक्षबलयदिलक्षितप्रकोष्ठैः पञ्चाङ्गपरिस्फु-
 रितभसितत्रिपुण्ड्राभरणैः शतरुद्रीयमध्यमुप्रतिष्ठितपरमरहस्यमन्त्रोद्धजपैकता-
 नमानसैः तापसैः उद्धासमानम्, क्वचिच्च स्मरान्तकपदाम्बुजसेवामहोत्सव-
 कूतूहलिभिः अनेकलोकान्तरापतितैः असमानवेषभाषाकारपरिचितैः अत्य-
 न्तभक्तिभरनम्रकन्धरैः अवसरमभिलषद्भिः उद्भिन्नपुलकनिचुलिताकृतिभिः
 उत्तमाङ्गनिवेशितकरकमलकोरकैः त्रिपुरदहनमदनसहननभासितकारिवारणा-
 मुरदण्डभरदम्भखण्डनप्रति (घान्ति? बन्धी) भवदन्तकवधकालकूटकवलनप्रमुखप्र-
 वरचितचरित्रस्तोत्रवाचालितदिशाकूलैः महाजनैः महनीयमानम्, अपरत्र च
 तपोवनप्रियतमा नैसर्गिकमपि विरोधं दूरिकुर्वाणैः अस्खलितसौहार्दसारस-
 माहितहृदयैः, अचलवृत्तिभिः नानामृगैः परिवृतम्, निखिलभुवनकोशसुच-
 रितपरिपाकमिव (संभूयन्त? सम्भूतं,) आनन्दस्याप्यानन्दमारतन्त्र्यसंदापिनम्,
 उच्चाटनौषधमिव समस्तदुश्चरितानां, सहायमिव गुणगणस्य, अरातिमिव
 दुराचाराणां, अवतारमिव सुचरितानां सवितारमिव साधुजनमानससरसी-
 रुहाणाम्, आत्मानमिव अधःकृताशेषमहीभृ (तं? तां), रघुपतिमिव खरविरोधिनं,
 सरसिजसम्भवमिव सत्यावासम्, अभिमन्युमिव सुभद्रोद्धतिं, भृगुपतिमिव
 अर्जुनकुलध्वंशोल्ललितं, हरिमिवानन्तभोगमुखोविष्टं, हरमिव सर्वमङ्गलो-
 ल्लसितं, अपरिगणितकन्दरोपेतमप्येकगुहाधिष्ठानं, सर्वप्रियमप्यत्यन्तमहितम्,
 अवाङ्मनसगोचरम्, अनवरतवात्सल्यमात्रगृहीतविग्रहेण यथाजाताग्रहेण परि-
 कल्पितशिरोजङ्कारं कैलासशैलमालोकयामास ॥

अध्यात्मिकता

(contd from vol. XXI - part I)



न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात् ।

तत्र निश्चयि तत्कुर्याद् वर्जयित्वा महानिशाम् ॥

इति वचनात् । अत्यशक्तेन तु जागरान्ते प्रातरेव पारणं कार्यम्-
“तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्” इति कात्यादशोदाहृत-
वचनात् ।

अथ संक्षेपतो व्रतानुष्ठानप्रकारः —

प्रातः कृतनित्यक्रियः सूर्यादिदेवताभ्यो व्रतं निवेद्याचम्य प्राणानाय-
म्योदङ्मुखो वारिपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वा मासाद्युल्लिख्यामुष्णफलकामः
पापक्षयकामो वा जन्माष्टमीव्रतमहं करिष्ये इति । तस्य

वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।

उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ॥

अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम् ।

अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि ॥

एनसो भोक्षकामोऽस्मि यद् गोविन्द! त्रियोनिजम् ।

तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शौकसागरे ॥

आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

तत्प्रणाशय गोविन्द! प्रसीद पुरुषोत्तम! ॥

इति पठित्वा जलमुत्सृजेत् । ततो मध्याह्ने तिलैः स्नात्वा अर्धरात्रे

a. Portion from “अद्य कृष्णाष्टमीं” to “जानुभ्यां सरणीं गत्वा चन्द्रायार्ध्यं
निवेदयेत् (Page 61) is omitted in Ms. B

पूर्ववद् "अद्य सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये" इति संकल्प्य समीपप्रसूतस्तनपायि-
श्रीकृष्णप्रतिमोपेतां लक्ष्म्या देवक्याश्चरणौ संवाहयन्त्या चोपेतां देवकी-
प्रतिमां प्रसूतां भस्त्रकोपरि स्थापयेत् । प्रतिमापूजनं च प्राणप्रतिष्ठा-
पूर्वकं कर्तव्यम् ।

प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वा हरेः ॥

अकृतार्थं प्रतिष्ठायै प्राणानां प्रतिमासु च ।

कृता पूर्वं तथा भावः स्कर्णादीनां न देवता ॥

अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव ! ।

प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥

वासुदेवस्य बीजित्र तंष्टिणोरित्यनेन च ।

तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शंखं च मंत्रवित् ॥

एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेऽपि समाचरेत् ।

अस्मै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्मै प्राणाः क्षरन्तु च ।

अस्मै देवत्वसंख्यायै अंगमन्त्रैर्यजुरीस्मन् ।

अंगमन्त्रैरंगिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ॥

प्राणप्रतिष्ठां सवत्र प्रतिमासु समाचरेत् ।

इति कालिकापुराणात् । बीजेन मूलमन्त्रेण । इदं च प्रकृतविष्ण्वभिप्रायेण ।

यदा स्वहृदये पूजा क्रियते तदा हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा मन्त्राः पठनीयाः ।

तेन अत्रापि प्रतिप्रतिमं कपोलौ स्पृष्ट्वा तत्तद्देवतानां मूलमन्त्रान् वैदिक-

मन्त्रान्, तदभावे प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनमोन्तनामानि, अस्मा इत्यस्य स्थाने तत्तद्देवतानां युक्तम् अस्मा इत्यादि स्नाहान्तं च, मन्त्रं पठन् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । तस्मात्तत्रैव पीठचतुसरि देवकीसहितं वसुदेवं यशोदासहितं नन्दं श्रीकृष्णसहितं बलदेवं चण्डिकां च प्रतिमासु पूजयेत् । तत्रादौ,

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-
भृङ्गारदिशंकुन्तप्रवरकृतकरैः किकरैः सन्ध्यमाना ।
पर्यङ्के स्वास्तुते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते ।
सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी देवरूपा ॥

इति देवकी ध्यात्वा,

मां चापि बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् ।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलवर्णचक्षुर्धरम् ॥

इति श्रीकृष्णं च ध्यात्वा ॐ देवक्यै नमः ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ नमो देव्यै श्रियै इति देवक्यादीन् मन्त्रकोपरि, ॐ देवक्यै नमः ॐ वसुदेवीय नमः, ॐ यशोदायै नमः, ॐ नन्दाय नमः, ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ बलदेवाय नमः, ॐ चण्डिकायै नमः इति पीठान्तरस्थान् देवक्यादीन् च षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

केषुचिदुपचारेषु मन्त्राः भविष्योत्तरपुराणे-

योगेश्वराय देवाय योगात्मा पत्न्ये विभो ! ।

योगोद्भवाय निरुपाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

इति स्नात्वे ।

योगेश्वरायै देवायै तथा यशोद्भवाय च ।

योगेश्वरायै पत्न्यै तुभ्यै गोविन्दायै नमो नमः ॥

इति धूपादौ ।

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।

विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः ।

इति नैवेद्ये । गारुडे तु

"यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः"
इत्यर्घ्यम्², "धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः"
इति स्वाहान्तो घृताक्ततिलहोमे, "सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसंभ-
वाय नमो नमः"³ इति चन्द्रपूजायां मन्त्राः⁴ उक्ताः । ततो गव्यघृतेनाग्नौ बसोर्धारा
कार्या । क्वचिद् गुडघृतेनेत्यपि । ततो जातकर्म⁵ नालच्छेदनं षष्ठीपूजनं नामकर्म
च संक्षेपेण कार्यम् । ततश्चन्द्रोदये रोहिणीयुतं चन्द्रं⁶ प्रतिमादौ संपूज्य,

शंखे तोयं समादाय समुष्मकुण्डलचन्दनम् ।

जानुभ्यां सरणीं गत्वा चन्द्रार्घ्यं निवेदयेत् ॥ इति ।

चन्द्रार्घ्यमन्त्रस्तु,

क्षीरोदारणवसंभूत! अत्रिनेत्रसमुद्भव! ।

गृहाणार्घ्यं शशांकेन रोहिण्या सहितो मम ॥

इति । ततो,

ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।

नमस्ते रोहिणीकान्त! शुधावास! नमोऽस्तु ते ॥

1. omitted in M. 2. ध्ये-य, ध्ये-य, 3. गत्रः-य. 4. रुः-य. 5. नेति ।
त-य, न. 6. कर्त-य. 7. ध-य. 8. This line is omitted
in Mss. क, ख, and ग. a. Portion from 'इति ततो' to 'कुण्डलचन्दनम्' नमोऽ
स्तु, ते- is omitted in Ms. द. 9. ज्योत्स्नायाः! नमस्तुभ्यं नमस्ते
ज्योतिषां पते! नमस्ते रोहिणीकान्त! अर्घ्यं ते प्रतिगृह्यताम्-य.

नमो मण्डलदीपाय शिखोरत्नाय धूर्जटेः ।

कलाभिवर्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे ॥

इति मन्त्राभ्यां प्रणमेत् । ततः

अनघं वामनं शौरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।

वासुदेवं हृषीकेश माधव मधुसूदनम् ॥

चाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ।

दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥

शोविन्दमभ्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।

अधोक्षकं जगद्बीजं सर्वस्थित्यन्तकारिणम् ॥

अनन्तदिग्बिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।

भरतकीर्तिवर्धनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥

कीर्तिम्वरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ।

श्रीवत्साङ्गं जगद्धेतुं श्रीकृष्णं श्रीधरं हरिम् ॥

प्रपद्येऽहं सदा देवं सर्वकामप्रसिद्धये ।

प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम् ॥

इति मन्त्रैर्नामकीर्तनपूर्वकं प्रणम्य,

त्राहि मां सर्वलोकेश! हरे! संसारसागरात् ।

त्राहि मां सर्वपापघ्न! दुःखशोकार्णवात् प्रभो! ॥

सर्वलोकेश्वर! त्राहि पतितं मां भवार्णवे ।

देवकीनन्दन! श्रीश! हरे! संसारसागरात् ॥

त्राहि मां सर्वदुःखघ्न! रोगशोकाणंवाहरे! ॥

दुर्गतेस्त्रायसे विष्णो! ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥

सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ।

पुष्कराक्ष! निमग्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे ॥

त्राहि मां देवदेवेश! त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता ।

यद्वात्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्द्धके ॥

तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं हर हलायुध! ।

इति मन्त्रैः प्रार्थयेत् । ततः स्तोत्रपुराणपठनाविभिः रात्रिशेषमतिवाह्य
परदिने प्रातः स्नानादिनित्यकृत्यं विघ्नघ्न पुनः सपरिवारं, श्रीकृष्णं यथासंभवं
संपूज्य चण्डिकायाश्च यथासंभवं महोत्सवं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान्
भोजयित्वा तेभ्यः सुवर्णमेदिनीधेनुवस्त्रादि यद्यदिष्टं तत्तत् “कृष्णो मे
प्रीयता”मिति दत्त्वा,

“यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।

भोमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

सुजन्म वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु” —इत्युक्त्वा

ब्राह्मणान् विसृज्य इष्टैः सह स्वयं पारणं कुर्याद् इति । इयं मन्वादिः ॥

इति श्रावणकृत्यानि ।

a. This and the following two lines omitted in Ms. १. तांस्त्रा-ब. २. दिक्-ब.

अथ भाद्रपदकृत्यानि ।

भाद्रपदामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं मदनरत्ने मरीचिना—

मासे नभस्येऽमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ।

अयातयामास्ते ज्ञेयाः विनियोज्याः पुनः पुनः ॥

इति । नभस्यमावास्येति पाठोऽर्थात्मासेन । भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरिता-
लिकाव्रतम् । तत्र सा मुहूर्तमात्रापि परा ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा बु तृतीयां द्विजसत्तम ! ।

अन्येषु सर्वकार्येषु शुण्ययुक्ता प्रशस्यते ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

^b द्वितीयया तु या विद्धा तृतीया न कदाचन ।

कर्तव्या व्रतिभिस्तात ! धर्मकामार्थतत्परैः ॥

¹ ² विहायैकां तु रम्भाख्यां तृतीयां पुण्यवर्धिनीम् । इति स्कान्दे ³ द्वितीयविद्वायाः

निषेधाच्च । निषेधप्रयोजकश्चात्र द्वितीयावेधो न त्रिमुहूर्तार्थकः⁴, किन्तु कला-
काष्ठादिरूपोऽपि । तदुक्तं स्कान्दे—

कला काष्ठापि या चैव द्वितीया संप्रदृश्यते ।

सा तृतीया न कर्तव्या कर्तव्या गुणसंयुता ॥ इति ।

a. This line is omitted in Ms. च. b. This stanza is omitted

in Ms. च. 1. 'तृतीया तु न कर्तव्या द्वितीयासंयुता विधिः' इति

स्कान्दे-च. 2. यैकान्तरां मुख्यं-ग. 3. विद्वानि-ग; संयुक्तानि-च.

4. मुहूर्तपरः-ख; मुहूर्तकः-ग; मुहूर्ती-घ.

अत एव स्वल्पापि तृतीया चतुर्थीयुता^१ एकादशीवद् ग्राह्या ।
अयं चाल्पवेधमुक्तोऽपि निषेधो गौरीव्रतविषयः ।

“विहायेकां तु रम्भाख्याम्” इति पर्युदासि तत्सदृशानामेव व्रतान्तराणां
प्रतीतेः, “नञ्जिवयुक्तमात्रसम्बन्धार्थे” इति न्यायात् । तत्रैव किञ्चिदसमाचाराच्चेति ।

इयं मन्वादिः ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्थ्या^६ सिद्धिविनायकव्रतमुक्तं^७ स्कन्दपुराणे ।^८ कृष्ण
उवाच—

गजवक्त्रं^९ हि शुक्लायां चतुर्थ्यां^{१०} तु प्रपूजयेत् ।
यदा चोत्पद्यते भक्तिस्तदा पूज्यो गणाधिपः ॥

प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ! ।
स्वशक्त्या गणनाथस्य स्वर्णरौप्यमयीकृतिम् ॥
अथवा मृण्मयीं कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।

गणनाथस्य—सिद्धिविनायकस्य । तस्त्वरूपमुक्तं तस्मैव—

एकवन्तं शूर्पकं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।

पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम् ॥ इति ।

एवं प्रतिमां कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । तद्विधिः कालिकापुराणे—

१. ता-च. २ व ग्रा-क, घ. ३. क्तो नि-ग, घ. ४. सेन
त-च. ५. इ.....वि omitted in Ms. घ. ६. जीं गजेत-
चतुर्थी । तत्र सिद्धि-घ. ७. स्वान्वे-घ, घ. ८. कु... वाई-omitted
Ms. घ. ९. तु—क, ग. १०. पूजयेन्नृप!-घ. ११ तस्य च रूप-घ. १२ omitted
in Ms. घ. a. Portion from 'एवं प्रतिमां' 'to' पठेदिति । ततः (Page 89)
omitted in Mss. क, घ and न.

प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वा हरेः ॥

अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च ।

यथा पूर्वं तथा भावः स्वर्णादीनां न देवता ॥

अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव ! ।

प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥

अथ प्राणप्रतिष्ठाप्रयोगः — गणेशप्रतिमायाः कपोलौ दक्षिणपाणिना स्पृष्ट्वा
“ॐ गणानां त्वे”ति मन्त्रं पठित्वा, गणेशाय प्राणाः प्रतिष्ठन्तु, गणेशाय
प्राणा रक्षन्तु, गणेशाय देवत्वसंख्यायै स्वाहा, अन्यदेवेषु तद्बीजमन्त्रौ पठित्वा
चतुर्थ्यां तत्तद्देवतापदयुक्तं पूर्वोक्तमन्त्रं पठेदिति । ततः,

कृत्वा पूजां प्रयत्नेन स्नाप्य पञ्चामृतैः पृथक् ।

गणाध्यक्षेति नाम्ना वै गन्धं दद्याच्च भक्तिः ॥

विनायकेति पुष्पाणि धूपं चोमासुतेति च ।

दीपं रुद्रप्रियायेति नैवेद्यं विघ्ननाशिने ॥

वस्त्रं सर्वप्रदे रक्तं युग्मं दद्यात्सुभावितः ।

ततो दूर्वाङ्कुरान् गृह्य विशर्ति चैकमेव च ॥

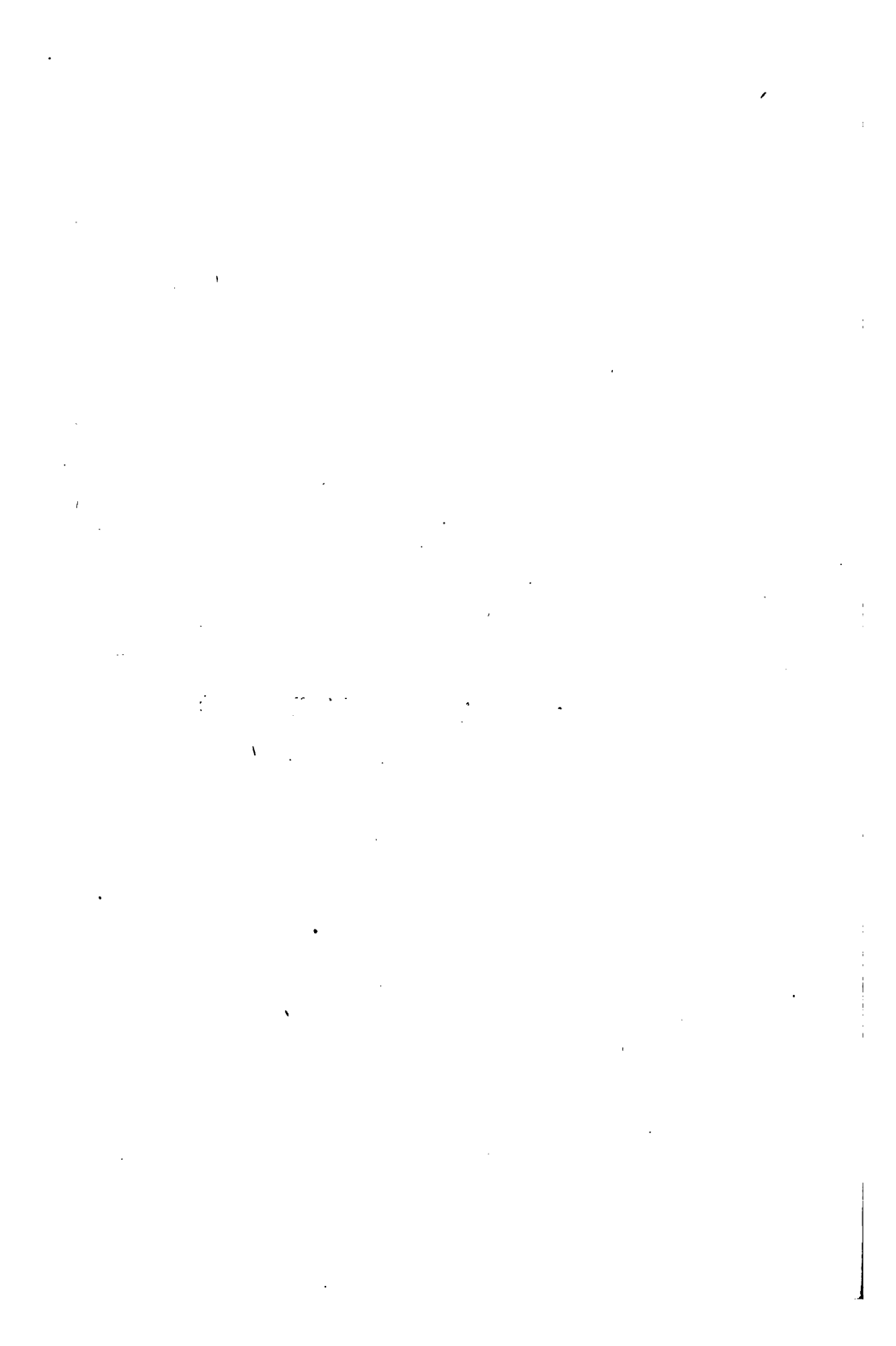
पूजनीयः प्रयत्नेन अभिनमिपदैः पृथक् ।

तानि वक्ष्यन्ते—

दूर्वायुग्मं गृहीत्वा तु गन्धयुक्तं प्रपूजयेत् ॥

एकैकेन तु नाम्ना वै दत्त्वैकं सर्वनामभिः ।

तथैकविंशतिं गृह्य मोदकान् घृतपाचितान् ॥



न रात्री पारणं कुर्यादिते वै रोहिणीव्रतात् ।

तत्र निश्यपि तत्कुर्याद् वर्जयित्वा महानिशाम् ॥

इति वचनात् । अत्यशक्तेन तु जागरान्ते प्रातरेव पारणं कार्यम्—
“तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्” इति कात्यादयोदित-
वचनात् ।

अथ संक्षेपतो व्रतानुष्ठानप्रकारः —

प्रातः कृतनित्यक्रियः सूर्यादिदेवताभ्यो व्रतं निवेद्याचम्य प्राणानाय-
म्योदङ्मुखो चारिपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वा मासाद्युत्तिष्ठ्यामुष्णफलकामः
पापक्षयकामो वा जन्माष्टमीव्रतमहं करिष्ये इति । तत्र

वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।

उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ॥

अथ कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम् ।

अर्चयित्वोपवासेन भोक्त्येऽहमपरेऽहनि ॥

एनसो भोक्षकामोऽस्मि यद् गोविन्द! त्रियोनिजम् ।

तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शौकसागरे ॥

आजन्मभरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

तत्प्रणाशश्च गोविन्द! प्रसीद पुरुषोत्तम! ॥

इति पठित्वा जलमुत्सृजेत् । ततो मध्याह्ने तिलैः स्नात्वा अर्धरात्रे

a. Portion from “अथ कृष्णाष्टमी” to “जानुभ्यां सरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं

निवेदेत् (Page 61) is omitted in Ms. b.

पूर्ववद् “अद्य सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये” इति संकल्प्य समीपप्रसूतस्तनपायि-
श्रीकृष्णप्रतिमोपेतां लक्ष्म्या देवक्याश्चरणौ संवाहयन्त्या चोपेतां देवकी-
प्रतिमां प्रसूप्तां मन्त्रकोपरि स्थापयेत् । प्रतिमापूजनं च प्राणप्रतिष्ठा-
पूर्वकं कर्तव्यम् ।

प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वा हरेः ॥

अकृतार्थं प्रतिष्ठायै प्राणानां प्रतिमासु च ।

कृता पूर्वं तथा भावः स्मरणादीनां न देवता ॥

अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिवः ।

प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥

वासुदेवस्य बीजिनं तद्विष्णोरित्यनेन च ।

तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शंखं च मंत्रवित् ॥

एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेऽपि समाचरेत् ।

अस्मै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्मै प्राणाः क्षरन्तु च ।

अस्मै देवत्वसंख्यासौ तन्मन्त्रेण यजुरीस्वन् ।

अंगमन्त्रैरंगिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ॥

प्राणप्रतिष्ठां सब्रतं प्रतिमासु समाचरेत् ।

इति कालिकापुराणात् । बीजेन मूलमन्त्रेण । इदं च प्रकृतविष्णवभिप्रायेण ।

यदा स्वहृदये पूजा क्रियते तदा हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा मन्त्राः पठनीयाः ।

तेन अत्रापि प्रतिप्रतिमं कपोलौ स्पृष्ट्वा तत्तद्देवतानां मूलमन्त्रान् वैदिक-

मन्त्रान्, तदभावे प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनमोन्तनामानि, अस्मा इत्यस्य स्थाने तत्तद्देवतानां युक्तम् अस्मा इत्यादि स्नाहान्तं च, मन्त्रं पठन् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । तस्मात् तत्रैव पीठान्तरे देवकीसहितं वसुदेवं यज्ञोदासहितं नन्दं श्रीकृष्णसहितं बलदेवं चण्डिकां च प्रतिमासु पूजयेत् । तत्रादी,

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-

भृङ्गारादशंकुन्तप्रवरकृतकरैः किकरैः सव्यमाना ।

पर्यङ्के स्वास्तुतै या मुदिन्नतरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते ।

सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी देवरूपा ॥

इति देवकी ध्यात्वा,

मां चापि बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् ।

श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलवर्णचन्द्रनिम् ॥

इति श्रीकृष्णं च ध्यात्वा ॐ देवक्यै नमः ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ नमो देव्यै श्रियै इति देवक्यादीन् मञ्चकोपरि, ॐ देवक्यै नमः ॐ वसुदेवीय नमः, ॐ यज्ञोदायै नमः, ॐ नन्दाय नमः, ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ बलदेवाय नमः, ॐ चण्डिकायै नमः इति पीठान्तरस्थान् देवक्यादीन् च षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

केषुचिदुपचारेषु मन्त्राः भविष्योत्तरपुराणे-

योगेश्वराय देवाय योगानां पक्षे विभो ! ।

योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो नमः ॥

इति स्नात्वे ।

यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।

योगेश्वराय पक्षेयैः सुप्रियैः गोविन्दाय नमो नमः ॥

इति धूपादी ।

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।

विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः ।

इवि नैवेद्ये । गारुडे तु

"यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः"
इत्यर्घ्यम्², "धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः"
इति स्वाहान्तो घृताक्ततिलहोमे, "सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसंभ-
वाय नमो नमः"³ इति चन्द्रपूजायां मन्त्राः⁴ उक्ताः । ततो गव्यघृतेनाग्नी बसोर्धारा
कार्या । क्वचिद् गुडघृतेनेत्यपि । ततो जातकर्म नालच्छेदनं षष्ठीपूजनं नामकर्म
च संक्षेपेण कार्यम् । ततश्चन्द्रोदये रोहिणीयुतं चन्द्रं प्रतिमादौ संपूज्य,

शंखे तोयं समादाय समुष्मकुञ्जचन्दनम् ।

जानुभ्यां सरणीं गत्वा चन्द्रार्घ्यं निवेदयेत् ॥ इति ।
चन्द्रार्घ्यमन्त्रेस्तु,

क्षीरोदार्णवसंभूत! अत्रिनेत्रसमुद्भव! ।

गृहाणार्घ्यं शशाकेम रोहिण्या सहितो मम ॥

इति । ततो,

ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।

नमस्ते रोहिणीकोन्त! मुधावास! नमोऽस्तु ते ॥

1. omitted in Ms. 2. ज्यो-य, ज्यो-य, 3. यज्ञ-य. 4. यज्ञ-य. 5. नेति ।
त-य, न. 6. यज्ञ-य. 7. यज्ञ-य. 8. This line is omitted
in Mss. क, ख, and ग. a. Portion from 'इति ततो' to 'मुधावास! नमोऽ
स्तु, ते'---is omitted in Ms. क. 9. ज्योत्स्नायते! नमस्तुभ्यं नमस्ते
ज्योतिषां पते! नमस्ते रोहिणीकोन्त! अर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्-य.

नमो मण्डलदीपाय विश्वोत्साय भूषणेः ।

कलाभिवर्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे ॥

इति मन्त्राभ्यां प्रणमेत् । ततः

अनघं वामनं शौरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।

वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥

चाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ।

दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥

शोविन्दमभ्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।

अधोक्षकं जगद्बीजं सर्वस्थित्यन्तकारिणम् ॥

अनन्दिमिथुनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।

भरतेश्वरं भक्तुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥

कीर्तिम्वरधरं जित्यं वनमालाविभूषितम् ।

श्रीवत्साङ्गं जगद्धेतुं श्रीकृष्णं श्रीधरं हरिम् ॥

प्रपद्येऽहं सदा देवं सर्वकामप्रसिद्धये ।

प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम् ॥

इति मन्त्रैर्नामकीर्तनपूर्वकं प्रणम्य,

त्राहि मां सर्वलोकेश! हरे! संसारसागरात् ।

त्राहि मां सर्वपापघ्न! दुःखशोकार्णवात् प्रभो! ॥

सर्वलोकेश्वर! त्राहि पतितं मां भवार्णवे ।

देवकीनन्दन! श्रीश! हरे! संसारसागरात् ॥

त्राहि मां सर्वदुःखघ्न! रोगशोकाणवाद्धरे! ॥
दुर्गतेस्त्रायसे विष्णो! ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥

सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ।
पुष्कराक्ष! निमग्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे ॥

त्राहि मां देवदेवेश! त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता ।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्द्धके ॥
तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं हर हलायुध! ।

इति मन्त्रैः प्रार्थयेत् । ततः स्तोत्रपुराणपठनाविभिः रात्रिशेषमतिवाह्य
परदिने प्रातः स्नानादिनित्यकृत्यं विघ्नघ्न पुनः सपरिवारं श्रीकृष्णं यथासंभवं
संपूज्य चण्डिकायाश्च यथासंभवं महोत्सवं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान्
भोजयित्वा तेभ्यः सुवर्णमेदिनी²धेनुबस्त्रादि यद्यदिष्टं तत्तत् “कृष्णो मे
प्रीयता”मिति दत्त्वा,

“यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

सुजन्म वसुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु”——इत्युक्त्वा

ब्राह्मणान् विसृज्य इष्टैः सह स्वयं पारणं कुर्याद् इति । इयं मन्वादिः ॥
इति श्रावणकृत्यानि ।

a. This and the following two lines ~~are~~ omitted
in Ms. ख 1. तांस्त्रा-ब. 2. दिक्-ख.

अथ भाद्रपदकृत्यानि ।

भाद्रपदामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं मदनरत्ने मरीचिना-

मासे नभस्योऽमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ।

अयातयामास्ते ज्ञेयाः विनियोज्याः पुनः पुनः ॥¹

इति । नभस्यमावास्येति पाठोऽमांतमासेन । भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरिता-
लिकाव्रतम् । तत्र सा मुहूर्तमात्रापि परा ।

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम !

अन्येषु सर्वकार्येषु शुण्ययुक्ता प्रशस्यते ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् ।

^b द्वितीयया तु या विद्धा तृतीया न कदाचन ।

कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात ! धर्मकामार्थतत्परैः ॥

¹ ² विहायैकां तु रम्भाख्यां तृतीयां पुण्यवर्धिनीम् । इति स्कान्दे ³ द्वितीयाविद्वायाः

निषेधाच्च । निषेधप्रयोजकश्चात्र द्वितीयावेधो न त्रिमुहूर्तविषयः⁴, किन्तु कला-
काष्ठादिरूपोऽपि । तदुक्तं स्कान्दे—

कला काष्ठापि या चैव द्वितीया संप्रदृश्यते ।

सा तृतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गुणसंयुता ॥ इति ।

a. This line is omitted in Ms. घ. b. This stanza is omitted in Ms. घ.

1. 'तृतीया' तु न कर्त्तव्या द्वितीयासंयुता विधिः इति स्कान्दे-घ. 2. यैकान्तरं मुख्यं-ग. 3. विद्वानि-ग; संयुक्तानि-घ.

4. मुहूर्तपरः-ख; मुहूर्तकः-ग; मुहूर्ती-घ.

वतारमभिधाय बलिनिग्रहान्ते “एतत्सर्वं समभवदेकादशीं मर्यादये”^१त्युक्त्वा
“एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव” इत्यभिधानात् ।

भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां^३ श्रवणयोगे पारणं न कार्यम् “आर्भाकासितपक्षे-
जि”^४ति पूर्वदाहृतवचनात् ।

उपोष्यैकादशीं मोहात् पारणं श्रवणे यदि ।

करोति हन्ति तत्पुण्यं द्वादश द्वादशीभवम् ॥

इति स्कान्दाच्च । अत्र च^२ त्रेधाविभक्तश्रवणमध्यभागे एव पारणं वर्ज्य-
मित्युक्तं विष्णुधर्मे^३ “श्रुतेऽत्र मध्ये परिवर्तमेति, सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव
वर्ज्यम्” इति । अत्रैव परिवर्तनोत्सवं कुर्यात् “श्रुतेऽत्र मध्ये परिवर्तमेति”^४ति
वाक्यात् । अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तमपराकं गर्गण-

द्वादश्यां तु सिते पक्षे सासि प्रौष्ठपक्षेऽपि वा ।^५

शक्रमुत्थापयेद्राजा विष्णुश्रवणवासरे ॥^६

इयमेव श्रवणद्वादशी । अस्याभ्याल्पश्रवणयोगेऽपि तन्निमित्तमुपवासादि
भवत्येव । तदुक्तं भास्वरे-^७

द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः ।

न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते ॥

इति । तत्रैकस्मिन्नेव दिने श्रवणयोगे यैव श्रवणमुक्ता सैव ग्राह्या । विद्वाधिकाया^८

१. आ-क, न. २. व. omitted in Ms. ख, ग. ३. तु-क. ४. वचनात्
ख. ५. वे तथा-ख. ६. विष्णु-क, ख, घ. ७. ति ।-क, ख, घ. ८. सा-ग.

¹ निम्नयेऽपि श्रवणयोगे, एकादशीयुक्तं ग्राह्यम् ।

द्वादशी श्रवणस्पृष्टा² स्पृशेदेकादशीं यदि ।

स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञितः⁴ ॥

उपोष्य विधिवत्तत्र नरः संक्षीणकिल्बिषः ।

प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥

⁵ इति मात्स्यात् । तथा नारदीये—

संस्पृश्यैकादशीं⁶ राजन् ! द्वादशीं यदि संस्पृशेत् ।

श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यप्रोहति ॥

⁶ इति । तन्त्रेण च तदेकादशीद्वादशीप्रयुक्तमुपवासद्वयं शुद्धाधिकाया द्विनद्वयेऽपि श्रवणयोगे उदये तद्योगवती ग्राह्या, 'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' इति बृहन्नारदीयात् । यदा तु एकादस्येव श्रवण-युक्ता न द्वादशी तदा तस्यामपि व्रतं भवति ।

यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् ।

एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता ॥

इति नारदीयात् । विद्धाया अपि श्रवणयोगे विद्धापि ग्राह्या ।

इत्येकादशीं स्रज्ज्वाला नोपोष्या भवेत्तिथिः ।

श्रवणेन तु संयुक्ता सा शुभा सर्वकामदा ॥

⁷ इति बृहद्भिपुराणात् । इयं च बुधवारं अतिप्रशस्ता । अत्र व्रतं काम्यम् ।

⁸ नित्यमिति केचित् । पारणे तु उभयान्तो मुख्यः । अन्यतरान्तो गौणः ।

-
1. ये अ-क, ख, ग, 2. दा-घ. 3. ष-घ. 4. संज्ञकः-ख. 5. नारदीया-
जात-घ. 6. जेव त-ख. 7. वासरे-ग. 8. जे-उ, ग.

² दिवान्यतरांतस्याप्यलाभेऽपि दिवैव पारणम्, 'न रात्रौ पारणं कुर्या'दिति सन्निपारणनिषेधात् । अत्र संगमस्नानादि कार्यम् ।

^b श्रावणे संगमाः सर्वे परव्युष्टिप्रदाः सदा ।

विशेषाद् द्वादशीयुक्ते बुधयुक्ते विशेषतः ॥

इति । तथा,

दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे ।

² वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ॥

न दुर्गतिमवाप्नोति मतिमग्न्यां च विन्दति । तथा,

स्नानं जप्यं तथा दानं होमं श्राद्धं सुरार्चनम् ।

सर्वमक्षय्यमाप्नोति तस्यां भृगुकुलोद्भवः ॥

इति । ब्रह्मवैवर्तेऽपि,

बुधश्रवणसंयुक्ता संगमे विजया स्मृता ।

वारिधानी प्रदातव्या दध्योदनसमायुता ॥

³ प्रेतयोनी न जायेत पूजयित्वात्र वामनम् ।

वंशः समुद्धृतस्तेन मुक्तः पितृऋणादसौ ॥

इति ।

⁴ अस्यामेव दुग्धव्रतारंभः । दुग्धव्रते पायसादिकं वर्ज्यम् । दधिघृतादय-

⁵ स्तद्विकारास्तु ग्राह्या एव ।

1. मे तु-ख, मे दि-ग. b. Portion from 'श्रावणे' to 'पितृऋणादसौ' is omitted in Ms. च. But the following lines only are found:

भाद्रपदश्रवणकावश्यां मध्याह्ने वामनावतारः । तत्र वामनपूजा-
प्रतिमादानादिकं व्रतकाण्डे द्रष्टव्यम् । 2. छात्-ख. 3. स्वा च-क. 4. दि
ख-क, ख, ग. 5. रा ग्राह्या-ग.

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तक्रतम् । तत्र पूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या
 १ देवकर्मत्वात् । “चतुर्दश्यां च पूर्णिमे”ति युग्मवाक्याच्च । न च “मध्याह्ने
 २ भोज्यवेलायां समुत्तीर्ये”तीतिहासे मध्याह्ने पूर्वमृहीतव्रतानां स्त्रीणां व्रताचरण-
 प्रतीतेः शीलायाश्च पूर्वव्रतारंभप्रतीतेर्मध्याह्नस्यैव तत्कालत्वात् मध्याह्न-
 व्यापिनी चतुर्दशी ग्राह्येति वाच्यम् । पूजाविधेः प्रत्यक्षत्वेनेतिहासरूपार्थ-
 वादोभेयत्वाभावात् । तत्र च मध्याह्नाश्रवणात् प्रत्यक्षविधिविहितदेव-
 कर्मज्ञत्वभूतपूर्वाधिविरोधे इतिहासे तन्मात्रकल्पनासंभवात् पूर्वाह्न एव तस्य
 कालः । न च “पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथि”रिति माधवोक्त-
 ३ वचनात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति युक्तम् ,

मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी ।

संपूर्णा तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥

इति निर्णयामृतोदाहृतस्कान्दविशेषवचनविरोधात् । माधवादयोऽप्येवम् ।

सिंहसंक्रान्तिदिनमारभ्यैकविंशतितमे दिने अगस्त्योदयः । तदुक्तं^b
 दिवोदासीये—

“उदेति माम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमे ह्यगस्त्ये” — इति ।

तत्र काशपुष्पमयीमगस्त्यप्रतिमां संपूज्यागस्त्यः खनमान इत्युच्चार्य दद्यात् ।

मन्त्रस्तु,

1. वत्वात्-ग. 2. लायामिति-क, ग. a. Portion from “न च मध्याह्ने”
 to “माधवादयोऽप्येवम्” is omitted in Ms. घ. But the following is
 added — केचित्तु मध्याह्ने भोज्यवेलायामिति तत्कालायां श्रवणात् मध्याह्नव्यापिनी
 ग्राह्येति वदन्ति । तस्य दूषणमन्यत्र मत्कृतौ द्रष्टव्यम्. 3. ते-ख.

4. न्तिम-क, घ, ग. b. तदुक्तं.....ह्यगस्त्ये-इति. omitted in Ms. ग.
 c. Portion from “मन्त्रस्तु” to “च पुत्रिणे”—found only in Ms. अ.

कश्चिदुपेक्ष्यतीतिवद्वा! तद्विमातृतसंज्ञम् । १ ।

मित्रकर्मणयोः-मुक्तं! कुण्डयोने! चान्तेऽस्तुते ॥

कातापी भक्षिती धेम समुद्रः शीषितः पुरा ।

लोफामुद्रापतिः श्रीमान् तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

येनोदितेन पापानि यान्ति च व्याधयो लयम् ।

तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥

इत्यादि व्रतकण्डे द्रष्टव्यम् ।

भाद्रपदपौर्णमास्यां भविष्योत्तरोक्तं ब्रह्मसावित्रीव्रतम् ।

त्रयोदश्यां भाद्रपदे क्षन्तधाचमपूर्वकम् ।

द्विद्वत्त्रयं नियमं कुर्यादुपवासस्य भक्तितः ।

१ । २ । ३ । ४ ।
इति । अस्यां कन्यार्कयुतायां प्रभित्तमहात्परंस्त्रीमुद्दिश्य आहं कार्यम् ।
तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे-

नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ ।

पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥

इति । नान्दीमुखत्वं दर्शितं तत्रैव-

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

ज्ञानो ह्यध्वरुणा ज्ञेयो पितरः सकिरीटित्तः ॥

1. ण्डे तु स्पष्टम्-क. 2. omitted in Ms. 3. त्यागेन कन्य-क.
4. स्ना-ग.

तैम्यः पूर्वतप ये च प्रजावन्तः सुवेभिन्नः ।
ते तु नान्दीमुखा नान्दी सपृद्धिरिति कथ्यते ॥

इति । एतच्च नित्यं "प्रत्यब्द"^२मित्युक्तेः । मित्यस्याच्च यस्मिन् वर्षे
भाद्रपद्याः कन्यार्कयोगाभावास्तदा अश्वयुजायां कन्यार्कयुक्तायां कार्यम्,
हेमाद्रयुक्तभाद्रपद्युपलक्षणत्वस्यायुक्तत्वात् । एतच्च पार्वणविभावेन कार्यम् ।
विष्णुधर्मोत्तरे-

गोदानं प्रोष्टपद्यां च पौर्णमास्यां महाफलम् ।
मदनरत्ने मात्स्ये —

कृत्तधिकृतम् अग्न्यतीं नप्यते धर्मविस्तरः ।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥

लिखित्वा तच्च यो ह्यष्टादशमहोदयमभितम् ।

पौर्णमास्यां प्रोक्ष्यपञ्चं त याति परमं पदम् ॥

अष्टादशमहोदयमि पुराणं तत् प्रकीर्तितम् । इति ॥

इति चात्रपदकृत्यम् ॥

अथ महोदयजाः ।

तत्र षट् पक्षाः । कृष्णप्रतिपदादिशुक्लप्रतिपदन्त
एकः १ । प्रतिपदादिदशान्तो द्वितीयः २ । पञ्चम्यादि ३ अष्टम्यादि ४
दशम्यादि ५ चतुर्दशीवर्जं दशान्तमित्यपरे । दशसप्तपञ्चतिथिपक्षाः एक-
दिनपक्षश्चेति । तत्र अथममाह शास्त्राचार्यः—

नभस्तस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकस्तु नः ।

कन्यागताग्नितश्चेत् स्यात् स कालः क्षाद्रकर्षणि ॥

1. ये-क. 2. ति श्रुतेः- अ a. Portion from "मित्यस्याच्च" to "इति" चात्र
पदकृत्यम्" is omitted in Ms. B.

इति । चेदित्यसंदिग्धे संदिग्धवचनम् 'शास्त्राणि चेत् प्रमाणं स्युः प्राप्तास्ते परमां गतिम्' इतिवत् । नभस्य इत्यभान्तभासेन । 'तिथिषोडशकश्चाभावा-
स्त्वोत्तरां प्रतिपदमादाये'ति देवलेनोक्तम् ।

अहःषोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह ।

चन्द्रक्षया विशेषेण सापि दक्षात्मिका स्मृता ॥

इति । पञ्चदशदशसप्तपञ्चतिथिपक्षाः ब्रह्मपुराणे-

अश्वयुक् कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने ।

त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा ॥

इति । तृतीयो भागस्त्रिभागः । पक्षस्य तद्धीनता चाद्यानां चतसृणां चतु-
दश्याश्च वर्जनात् । एवमर्धत्रिभागयोरपि चतुर्दशीवर्जनम् ।

नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने ।

नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यान्नैव वर्ज्या चतुर्दशी ॥

इति वचनेन प्रतिपदादिपक्ष एव चतुर्दशीवर्जननिषेधादितरपक्षेषु तद्वर्जन-
प्रतीतेः । नन्दादिवर्जनं तु न भवति संख्याहानिप्रसङ्गात् । गौतमः-
'अथापरपक्षे¹ श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् पञ्चम्यादिसर्वस्मिञ्चेति । एकदिनपक्षो
नागरखण्डे-

आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे ।

यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादिकस्मिन्नपि वासरे ॥

तस्य संवत्सरं यावत् तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ।

इति । अस्मिंश्च पक्षे नन्दादिवर्जनमपि भवति । अत्र तदप्रवृत्तौ कारणा-
भावात् । नन्दादिवर्जनमाह नारदः-

न नन्दासु भृगोवरि रोहिण्यां च त्रिजन्मसु ।

रेवत्यां च मघायां च कुर्यादापरपक्षिकम् ॥

¹ इति । नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादशयः । त्रिजन्मानि आद्यदशमैकोनविंशानि
नक्षत्राणि । यत्तु “कर्तुश्च पुत्रदाराणां च यानि त्रीणि जन्मक्षाणि वर्जयेत्”
² इति क्वचिल्लिखितं वचनं तद्यदि स्वाकरं तदैवं व्याख्येयम् । कर्तुश्च
³ पुत्रदाराणां च यानि त्रीणि जन्मक्षाणि आद्यदशमैकोनविंशानि तानि वर्जयेदिति ।
अन्यथा त्रिशब्दस्य बहुवचनस्य च वैयर्थ्यात् । कैश्चित् त्रिजन्मानि इत्यत्र
जन्मतत्पूर्वोत्तरनक्षत्राणीति व्याख्यातं तत्पूर्वोत्तरनक्षत्रयोर्जन्मशब्दवाच्यत्वा-
भावात् मूलालेखनाच्च उपेक्षितम् । अन्यत्रापि,

“नन्दाश्चकामाख्यारभृग्वग्निपितृकालभे ।

गण्डे वैघृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः” ॥

इति । अश्वः सप्तमी, कामस्त्रयोदशी, भारो भौमः, अग्निपितृकालभानि
कृतिकामघाभरण्याख्यानि नक्षत्राणि । पिण्डदानग्रहणं श्राद्धोपलक्षणम्,
एकमूलकल्पनालाघवात् । अस्यापवादः प्रयोगपरिजातोदाहृते संग्रहवचने—

⁵ अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके ।

तिथिं वारं च नक्षत्रं योगञ्च न विचारयेत् ॥

इति । मृततिथिसमानजातीयायामपि चतुर्दशीभिन्नायां तिथौ निषेधप्रयोजक-
मुक्तायामपि यावत्संभवं महालयश्राद्धमाचरन्ति । आधुनिकग्रन्थे वचनान्यपि
लिखितानि । नागरखण्डे—

आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे ।

मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ॥

तस्य संवत्सरं यावत् संतुष्टाः पितरो ध्रुवम् ।

1. Omitted in Ms. छ. 2. णां त्रिजन्म-क. 3. ति व-व. 4. गमेव,-व.
5. मायां च भ-ख.

कात्यायनः—

या तिथिर्यस्य तातस्य मृताहे तु प्रवर्तते ।
 सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥ तथा,
 अशक्तः¹ पितृपक्षे तु करोत्येकदिने यदा ।
 निषिद्धेऽपि ब्रिजे कुर्यात् पिण्डदानं यथाश्रद्धि ॥

² इति । एतानि^a वचनानि महानिबन्धेष्वदर्शनादनाकराणि । तथा³ च
 मार्कण्डेयः—

कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च ।
 पार्वणेनैव विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥ यस्तु,
 विवाहे विहिते मासे⁴ त्यजेयुर्द्वादशैव हि ।
 सपिण्डं⁵ पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ॥

⁶ इति विवाहानन्तरं पिण्डदाननिषेधो ज्योतिःशास्त्रे प्रामाण्येन उक्तः
 तस्यापवादः स्मृतिसंग्रहे—

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतैः हनि ।
 यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ।
 कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वापणं सुतः ॥

इति । संन्यासिनां तु महालयश्राद्धं द्वादश्यां कर्तव्यम् ।

यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः ।
 द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥

1. पक्षमध्ये तु—ग. घ. 2. Omitted in क. a. This sentence is omitted in क and घ. 3. Omitted in ख and घ. 4. तत्र श्राद्धं—क.
 5. सांस्त्य—ख. ग. 6. हेतुतरं—ख; हाद्यन—घ.

इति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः । वायुपुराणेऽपि—

संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद् यथाविधि ।

महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यामेव तद्भवेत् ॥

इति । इदं चाग्नेनैव कर्तव्यम् ।

मृताहं¹ च सपिण्डं च गयाश्राद्धे² महालये³ ।

आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमानेन कर्हिचित् ॥

इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः । अथान्न देवताः—

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि ।

अविशेषेण कर्तव्यं विशेषात्तरकं ब्रजेत् ॥

तथा,

अष्टकासु च वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरं तथा ।

महालये⁵ गयायां च सपिण्डीकरणात् कुरा ॥

मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह ।

इति । हेमाद्रौ—

महालये⁶ गयाश्राद्धे वृद्धावन्वष्टकासु च ।

नवदैवत्यमन्त्रेष्टं शेषं षट्पौरुषं विदुः ॥ इति ।

सप्तलमातुस्तु माता सहैकतन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवत् । निगमे—

a. This; and the stanza following it are omitted in क and घ.

1. हे—ग. 2. ष्ठे—ग. 3. द्व—क, ख, घ. 4. यं—क, ख, घ. 5. This

line is omitted in क, ग and घ. 5. याश्राद्धे स—क, ख. c. Portion

from "महालये" to "निगमे" is omitted in Ms. ख. 6. द्वौ चान्व—घ.

7. तमन्त्रेष्ट—ग; तमन्त्रेण—क. 8. तमात्रा—क.

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च ।

ज्ञेयं द्वादशदेवत्यं तीर्थे^१ प्रोष्ठे मघासु च ॥

तथा हेमाद्रौ^२—

उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः ।

श्वशुरभ्रातृतत्पुत्र^३श्रृत्विक्क्षिष्याप्तपोषकाः ॥

भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः ।

पितरौ^४ पितृपत्नीनां^५ पितुर्मातुश्च या स्वसा ॥

सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये ।

एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ इति ।

संग्रहवाक्यं तु ऋषिवचनासंवादादनादृतम् । अत्र प्रत्येकोऽष्टब्राह्मणभेद इति मुख्यः पक्षः । अशक्तौ चतुर्विंशतिमते एकस्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूजयेदिति । “दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु” । विधवायास्तु विशेषः स्मृतिसंग्रहे—

चत्वारि पार्वणानीह विधवायाः सदैव हि ।

स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥

ततो मातामहानां च श्राद्धं देयमनुक्रमात्^७ इति । तथा,

श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च । इति ।

अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्—

स्वभर्तृप्रभृति त्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च ।

विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥ इति ।^९

१. तिषौ—क. २. द्विः—क. ३. गुरुशि—क. ४. रः—क. ५. पुत्रप—न.

६. दाभादृतम्—व. ७. श्राद्धदानमनुक्रमात्—ख; श्राद्धदानमुपक्रमेत्—ग, घ.

८. च । तस्याः षड्देवत्ये विशेषः स्मृ—ख, ग. ९. Omitted in क and घ.

विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वा अन्यद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते ।
 अत्र चैकः पाकः वैश्वदेवं तन्त्रम्² । पृथग्वा । एकोद्दिष्टे ह्यग्नी करणं
 नास्ति । कर्तव्यमिति गृह्यकाराः । पुरुरवमाद्रवसंज्ञको विश्वेदेवौ ।
 यत्तु “अपि कन्यागते सूर्ये श्राद्धे तु धुरिलोचनौ” इत्यादि पुराणसमुच्चयवचनं⁵
 तत्काम्यबुध्यादिक्रियमाणं महालयविषयमिति हेमाद्र्यादयः⁷ । केचित् नित्येऽपि
 महालयश्राद्धे ताविच्छन्ति । मह्यं चेत्तन्न रोचते, यतः नात्र महालयपदं
 श्रूयते । किन्तु कन्यागते सूर्ये श्राद्ध इत्येव । तत्र किं कन्यागते सूर्ये
 इतीयमधिकरणसप्तमी, उत निमित्तसप्तमी ? आद्ये कन्यागताधिकरणकेषु
 वार्षिकादिष्वतिप्रसंगः । द्वितीये महालयश्राद्धस्य तन्निमित्तकत्वाभावेन तत्र
 धुरिलोचनौ न स्याताम् ।

आषाढीमवधि कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।

श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत कन्यां गच्छतु वा न वा ॥

आगतेऽपि रवौ कन्यां श्राद्धं कुर्वीत यत्नतः ।

आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः प्रशस्तः पितृकर्मसु ॥

इति जातूकर्णजाबालवचनाभ्यां महालयश्राद्धस्य केवलपञ्चमपक्षप्रयुक्तत्वात् ।
 तत्रैव,

शक्रध्वजनिपातांको यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।

स विज्ञेयोऽपरः पक्षः श्राद्धं तत्र विधीयते ॥

-
1. दिति प्र-ख, ग. 2. तन्त्रम् । एकोद्दिष्टे तु पाणिहोमः । पुरू-क, घ.
 3. वार्द्रसं-ख. 4. जौ वि-ख, ग. 5. णवचनं-ख, घ. 6. वाक्यं-क.
 7. मदनरत्ने पारिजाते-क, घ; Portion upto 'द्वितीये महालय' is also omitted
 in these Mss. 8. omitted in Ms. ख. a. From “महालयश्राद्धस्य”
 to “महालयश्राद्धे इति” (Page 90) is-missing in Ms घ. 9. व-ख, ग.

पुत्रानायुर्धनं धान्यमारोग्यं भूतिमेव च ।

प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामास्तिथापरान् ॥

एतान्यपि हि हिंसन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत् ।

तस्मान्नातिक्रमेद्विद्वान् पञ्चमे पेतृकं विधिम् ।

इति । कन्यायोगस्तु प्राशस्त्यार्थः । न तु तस्य निमित्तत्वम् । किंविषयं तर्हीदं वचनमिति चेत् श्रूयतामवधानेन,—

“नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवी

पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं”—

इति वचनविहिते श्राद्धे कन्याकयुक्तपौर्णमास्यानिमित्तत्वेन तत्र कन्याकस्यापि निमित्तत्वात्तत्र भवेतां धुरिलीचनी । यद्वा कन्यासंक्रान्तिश्राद्धे भवेतां । न तु कदापि नित्ये महालयश्राद्धे इति । अत्र च प्रतिदिनप्रयोगभेदादक्षिणाभेदः । यत्तु हेमाद्रिणाभ्यासपक्षेऽन्ते दक्षिणादानमित्युक्तं तत्कर्मैष्येऽपि प्रतिदिनं प्रयोगभेदात् दक्षिणायाश्च प्रयोगा-
हृत्वादयुक्तम् । एतच्च गुविणीपतिना पिण्डरहितं युक्तं कार्यम् । तथा च दक्षः —

कुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः १

न जीवत्पितृकः कुर्यात् गुविणीपतिरेव च ॥

इति । जीवत्पितृकस्यान्वष्टक्यं मातृवार्षिकादौ वचनात् भवति । नान्यत्रेति केचित् । श्राद्धाङ्गं तर्पणं पक्षश्राद्धे श्राद्धोत्तरं प्रत्यहं, सकृन्महालये तु परेद्युः । तदुक्तं नारदीये—

मक्ष्मादं यदा कुर्यात्तर्पणं तु द्विने द्विने ।
सकृन्महालये चैव परेऽहनि तिलोदकम् ॥ इति ।

प्रयोगपारिजाते गर्गः—

¹ कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् ।
² पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धेऽपि च तर्पणम् ॥

एतच्च श्राद्धं नित्यम् ।

आषाढश्राद्धः पञ्चमे पक्षे यः श्राद्धं न करिष्यति ।
शाकेनापि दरिद्रोऽपि सोऽन्त्यजत्वमुपेक्ष्यति ॥

आसनं शयनं भोज्यं स्पर्शनं भाषणं तथा ।
तेन सार्धं करिष्यन्ति ये ते पापतरा नराः ॥

³ इति नागरखण्डेऽकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । काम्यं च,
पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा ।

प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामांश्च पुष्कलान् ॥

इति काष्ठाजिनवचनात् । मलमासे सत्युत्कर्षः ।

यावुद्भानुश्रियो मासः कर्त्तव्यार्कं जायते यदा ।
दैवं पितृयं तदा कर्म उत्तरे मासि युज्यते ॥

इति । यदुक्तं ^a तदाश्विनेऽधिमासे तत्र गौणकाले प्राप्तस्य महालय-
श्राद्धस्योत्कर्षार्थमित्याद्यन्यत्र मत्कृतौ द्रष्टव्यम् । पितृमरणप्रथमान्दे तु

1. ण-क. 2. द्वे दिवसेऽपि च-ग. 3. ण्डे प्र-ग. a. This sentence is omitted in Ms. घ. 4. द्विके मा-क.

कृताकृतम् । कृतेऽभ्युदयोऽकृते प्रत्यवायो नास्ति । अत्र भरण्यां
श्राद्धमतिप्रशस्तम् ।

भरणी¹ पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता ।

तस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥

इति मात्स्यात् । इदं पिण्डरहितं कर्तव्यम् । तथा च पुलस्त्यः —

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ।

भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं न हि ॥

पाद्मेऽपि “संक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते” इति । पृथ्वीचन्द्रोदये—

नभस्यकृष्णपक्षे तु द्वितीया यदि याम्यभे ।

तृतीया त्वञ्जिताराभिः सहिता प्रतिपदा पितुः ॥

इति । अस्मिन्नेव पक्षे कपिला षष्ठी । तदुक्तं बाराहे—

नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणी पातभूसुतैः ।

युता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥

व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् ।

कपिलां च द्विजाग्याय दत्त्वा ऋतुफलं लभेत् ॥

इति । अत्रैव ‘हस्ताकं फलातिशयः’ इति निर्णयामृते । इयमेव चन्द्रषष्ठी ।
तदुक्तं भविष्ये—

तद्वद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे

चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात् पूर्ववेधः प्रशस्यते ।

a. This sentence is omitted in Ms. च. 1. श्राद्धप-ख. b. portion from “इदं पिण्ड” to “निर्वपणादृते, इति” is omitted in Ms. च. 2. कर्तव्यम्-ख.
3. स्यापरपक्षस्य-ग. 4. तृतीया पात-ख. 5. या तु ष-ख.

चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वा वाप्यपरेऽहनि ।

¹
चन्द्रषष्ठी सिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥

^a
इति । अत्रापि भाद्रपदोऽमान्तमासेन । इयमेव तत्पुरुषकल्पादिः ।

अत्रैव षष्ठ्याम् आश्वलायनेन मध्यावर्षसंज्ञश्राद्धमुक्तम्, “एतेन मध्या-
वर्षं प्रोष्ठपद्या अपरपक्ष” इति । इदं च ‘सप्तम्यादिषु त्रिष्वहस्सु
अष्टकावत् कार्यमेतेनै’ति कृत्स्नातिदेशादिति वृत्तिकृतम् । हरदत्तस्तु
^b
माघावर्षमिति पाठमङ्गीकृत्य माघयुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति
व्याचक्ष्यौ ।

²
अत्रैवाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतसमापनम् । तत्र चन्द्रोदययोगिनी ग्राह्या ।
तत्काले चन्द्रार्घ्यदानविधानात् । चन्द्रोदयव्रतत्वेन “चन्द्रोदयव्रते चैव तिथि-
स्तात्कालिकी स्मृता” इति वचनादुभयत्र चन्द्रोदये सत्त्वेऽसत्त्वे वा,

^c
कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

³
पूर्वविद्वैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् ॥

इति वचनात् पूर्वा । यद्युत्तरदिने चन्द्रोदयोत्तरं त्रिमुहूर्ता तदोत्तरैव । पूर्वा
परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये तु ‘त्रिमुहूर्ता तु सा पूज्या परतश्चोर्ध्व-
गामिनी’ इति पुराणसमुच्चयवचनात् ।

अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः ।

तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा ॥

1. छ्यसि-छ, ग. a. ‘अत्रापि..... कल्पादि’:-omitted in घ.

b. ‘माघावर्ष’... कृत्य’-omitted in घ. 2. व्यापिनी-घ. c. कृष्णपक्षे

.....इति वचनात् omitted in Ms. घ. 3. कर्हिचित्-ग.

इति वचनाच्च । अस्यामेवाष्टम्यां^a श्राद्धं गयाश्राद्धतुल्यफलम् । तथा च¹
ब्रह्माण्डे—

आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे² गयामध्याष्टमी स्मृता ।

त्रयोदशी गजच्छाया गया तु पितृपैतृके ॥

इति । अत्रैव नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः—

अन्वष्टकासु नवभिः³ पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् ।

पित्तादिमातृमध्यं च ततो मातामहान्तकम् ॥

हेमाद्रौ छागलेयः—

केवलास्तु क्षये कार्याः⁴ वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः ।

अन्वष्टकासु मध्यस्थाः नान्त्याः कार्याः कदाचन ॥

इति । दीपिकायां तु मातुः श्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तं निर्णयामृते मैत्रा—
यणीयगृह्यपरिशिष्टे—

अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि ।

मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात् पितर्यपि च जीवति ॥

यद्यपि जीवत्पितृकस्य पञ्चाप्यन्वष्टकाः नित्यास्तथापि आचारादशक्तस्येय-
मावश्यकीति केचित् । मातामहचरणैस्तु नवम्यां क्रियमाणं मातुः

a. Portion from 'अस्यामेव' to 'पितृपैतृके ॥ इति' is omitted in ग.

1. omitted in Miss क and ग. 2. तुल्येति पि-ख. 3. गम्यं—क.

4. चैव-घ.

श्राद्धं प्रतिपदि क्रियमाणं मातामहश्राद्धं च महालयापरपक्षनिमित्तकमेवेति
 कालतत्त्वविवेचने ¹ सप्रपञ्चं निरूपितम् । अत्र स्वमातरि जीवन्त्यामपि
 सपत्नमातृभ्यो दद्यादित्युक्तमाधुनिकग्रन्थेषु—

सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ ।

नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा हि ताः ॥

इति । अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैकोऽर्थः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवच-
 नादिप्रयोग इति वृत्तिकृत् ² । भर्तुर्मरणोत्तरं श्राद्धं न कार्यम् 'श्राद्धं नवम्यां
 कुर्यात्तन्मृते भर्तारि लुप्यत' इति वचनादिति केचित् । अन्ये तु एतद्व-
 चनस्य निमूलत्वात् कर्तव्यमित्याहुः ^a । मातामहचरणास्तु मृतपितृकेण पितृ-
 श्राद्धदिन एव पृथक् पृथग्वा मातृतृप्तेरपि संवादितत्वाज्जीवत्पितृकेणैव
 कर्तव्यमित्याहुः ⁵ । सर्वं चैतत् कालतत्त्वविवेचने ⁴ द्रष्टव्यम् । इदं जीव-
 त्पितृकेणापि सपिण्डकं कार्यम् ⁶ । हेमाद्रौ विष्णुपुराणे— 'अन्वष्टकादिषु
 स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च' इत्युपक्रम्य 'पिण्डनिर्बपणं कार्यं तस्यामपि
 नृसत्तम!' ⁸ इत्युक्तत्वात् ^b । तस्यामन्वष्टकायामित्यर्थः । अपिशब्देन
 तीर्थमहालयप्रत्याब्दिकादीनां ग्रहणम् ⁹ । तेन गुर्विणीपतेरप्येतेषु पिण्डदानं
 न भवत्येव । अत्रातिदेशादेव पिण्डदाने प्राप्ते गुर्विणीपतित्वादि-

-
1. सोपपत्तिकमुक्तम्—घ. 2. कारः—घ. a. This sentence is missing in ग. 3. कर्तृकपि—ख. 4. स्पष्टम्—घ. 5. सपिण्डं—क, पिण्डकं—घ. 6. कासु च स्त्री—ख, ग. 7. यमित्युक्तत्वात्—घ. 8. क्तम्—क. b. This and the 2 sentences following it are omitted in Ms घ. 9. कानां—ख.

प्रयुक्तनिषेधप्रतिप्रसवार्थत्वाद्वचनस्य । मातृ¹श्राद्धे सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्क-
ण्डेयपुराणे—

मातुः श्राद्धे तु संप्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम् ।
सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

भोजनं भोज्यमन्नम् ।

भर्तुरग्रे मृता नारी सहदाहेन वा मृता ।
तस्याः स्थाने³ वियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनीम्⁴ ॥

इति । तत्रैव मदालसावाक्यम्—

स्त्रीश्राद्धे पुत्र! देयाः स्युरलङ्काराश्च योषिते ।
मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकङ्कणादयः ॥

इति । अस्यामेव नवम्यां बिल्वशाखायां देवीप्रबोधनमुक्तं देवीपुराणे—

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाद्रभे दिवा ।
नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः ॥

इति । अत्रैव त्रयोदश्यां श्राद्धं महाफलं मघायुक्तायां त्वतिप्रशस्तम् ।
“मघायुक्ताथ तत्रापि शस्ता राजन्! त्रयोदशी”ति वचनात् । अत्र मल-
मासेऽपि श्राद्धं कार्यम्, अनन्यगतिकत्वात् ।

मघात्रयोदशीश्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् ।
अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलिम्लुचः ॥

1. स्य च-क, घ । 2. अत्र मा-घ. 3. ने तु यु-ख. 4. नीः-घ.
5. ताम्-ख, तः-घ. a. This sentence and the stanza following
it are omitted in Ms. घ

इति काठकपृष्ठात्¹ । इदं च युगादिविशेषप्रयुक्तत्वात् पिण्डरहितं कार्यम् ।

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ।

युगादिषु च कर्तव्यं पिण्डनिर्वपणादृते ॥

इति वचनात्² । अपिण्डकश्राद्धे विशेषमाह छागलेयः—

पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथञ्चन ।

संकल्पं तु तथा कार्यं नियमाद् ब्रह्मवादिभिः ॥

संकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् ।

नावाहनाग्नौ करणे न पिण्डान्विकिरं² न च³ (?) ॥

अशक्त्या सपिण्डश्राद्धाकरणेऽप्येवमेव ।

अशक्त्या पार्वणश्राद्धं यथावत् कर्तुमक्षमः ।

पिण्डार्घ्यादिबिहीनं तु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ॥

इति वचनात् । एतच्च पुत्रवतान्तरोद्देशेन न कार्यम् ।

कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां यः श्राद्धं कुरुते नरः ।

पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥

इति वचनात् । अत एव,

यो वाञ्छति नरो मुक्तिं पितृभिः सह चात्मनः ।

असन्तानश्च यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी ॥

1 ह्योक्तेः—घ. a. Portion from 'अपिण्डकश्राद्धे' to 'निश्चितम्' ।

इति वचनात्' is omitted in Ms. घ. 2. ण्डान्विक-क. 3. च न-ख

इति नागरखण्डे ¹ । तत्रैव,

अद्यप्रभृति यः श्राद्धं त्रयोदश्यां करिष्यति ।
कन्यासंस्थे सहस्रांशौ तस्य स्याद् वंशसंक्षयः ॥

इति । बहुभिर्वचनेर्बहुफलार्थतया ² विहितस्यात्यन्तनिषेधायोक्तद्विषयभेदे वक्तव्ये
पिण्डदानयुक्तत्वरूपविस्तरराहित्यरूपस्तावदेकस्तद्विषयो ³ नागरखण्डे उक्तः—

अतः श्राद्धं विना देयं तद्विना ⁴ घघुमायसम् ।
खड्गमांसं कालशाकं मांसं वाघ्रीणसस्य च ॥
तस्याभावेऽपि दातव्यं क्षीरोदनमनुसमम् ।
तस्मिन्नहनि विप्रेभ्यः पितॄणां तुष्टये नृप ! ॥
तस्याभावेऽपि दातव्यं जलं तिलविमिश्रितम् ।

इति । अत्र श्राद्धशब्दः ⁴ पिण्डदानपरः, तस्यापि पितृदैवत्यत्वेन श्राद्धशब्द-
वाच्यत्वात् । अग्रे ब्राह्मणभोजनस्योक्तत्वेन तन्निषेधासंभवात् । अन्योऽ-
प्येकवर्गोद्देश्यकरूपो ⁵ निषेधविषयः ⁶ कार्णार्जिनिनोक्तेः—

श्राद्धं न चैकवर्गस्य त्रयोदश्याभुमक्रमेत् ।
न तृप्तास्तत्र ते यस्य प्रजां हिंसन्ति तस्य ते ।

इति । एकवर्गस्य पितृवर्गमात्रस्य न कुर्यात् । किन्तु मातामहवर्गस्यापि
कुर्यादिति विधेर्विषयः । न च दर्शश्राद्धातिदेशादेव तत्रोदशीश्राद्धे माता-
महवर्गस्यापि प्राप्तत्वादेकवर्गोद्देश्यकश्राद्धनिषेधानुपपत्तिः । दर्शश्राद्ध एव

1. खड्ग-क. 2. वि. ख. 3. स्तावदेतद्वि-ख. a This stanza is missing
in Ms. ख. 4. तस्य-पि-ख. 5. कवच-ग. 6. ते-ग. 7. तस्य-ख.

मातामहश्राद्धानांषड्भ्यक्तव्यस्म मिताक्षराम्यामुक्तत्वात् । तदनावश्यकत्वे तु त्रयोदश्यामेकवर्गश्राद्धनिषेधो वृद्धिश्राद्धादिषु च “षड्भ्यःपितृभ्यस्तदनु श्राद्ध-दानमुपक्रमे”दित्यादिमातामहश्राद्धपुनर्वचनमेव मूलम् । हेमाद्रिचुदाहृतवचनेऽपि-

नेच्छेत् त्रयोदशीश्राद्धं पुत्रवान् यः सुतायुषे ।

एकस्यैव न कुर्यात् स पार्वणं तु समाचरेत् ॥

एकस्यैव-एकवर्गस्यैव । पार्वणं- पर्वणि दशे क्रियमाणेनामावास्याश्राद्धेन सदृशं ²षड्देवत्यमित्यर्थः । केचित्तु ³“न तृप्तास्तत्र ते यस्ये”ति दोषश्रवणात् पितृव्यादीनामपि महालयवत् श्राद्धं कर्तव्यमिति वदन्ति । तद्दूषणं काल-तत्त्वविवेचने द्रष्टव्यम् । तेन कृष्णत्रयोदशीमात्रे “पुत्रवत् गृहिणा त्रयो-दश्यां बहुप्रजा” इति वचनविहितं बहुपुत्रेच्छया श्राद्धं न कर्तव्यम् । भाद्रपदकृष्णत्रयोदश्यां तु पितृवर्गमात्रस्य न कर्तव्यं, किन्तु मातामहवर्गस्यापि । तत्रापि पिण्डदानं न कर्तव्यम् । किन्तु ब्राह्मणभोजनमात्रं मधुघृतकलूप्ता-पायसादिना इति सामान्यविशेषरूपविधिनिषेधवचनानां व्यवस्था सिद्धा । अस्मिन् पक्षे केवलमघापि श्राद्धकालः । तथा च कश्चिच्छः—

पिता पितामहश्चैव तत्रैव प्रपितामहः ।

उपासते सुतं जातं पिप्पलं शकुन्त इव ॥

मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च ।

एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥

इति । इदं चाविभक्तेरपि पृथक् कार्यम् । तथा च हेमाद्रौ—

विभक्ता वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः ।
मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना ॥

इति । नित्यं चात्र श्राद्धम् ।

प्रौष्टपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी । इत्युपक्रम्य,
एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः ।
श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

इति विष्णुधर्मोत्तराच्च । इयमेव योगविशेषेण गजच्छाया । तदुक्तं बाहे-

योगो मघात्रयोदश्याः कुञ्जरच्छायसंज्ञकः ।
भवेन्मघायां संस्थे च शशिन्यर्के करे स्थिते ॥

इति । अस्मिन्नेव पक्षे चतुर्दश्यां दुर्मरणमृतानां श्राद्धं कार्यम् । तथा
च मरीचिः—

विषसर्पश्चापदादितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् ।
चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिते ॥

इति । नागरखण्डे—

अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा ।
उपसर्गमृतानां च विषमृत्युमुपेयुषाम् ॥
वह्निना च प्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम् ।
सर्पव्याघ्रहतानां च शृङ्गैरुद्धबन्धनैरपि ॥
श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप !

इति । मार्कण्डेयपुराणे—

युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ।

तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥

इति । प्रायोपशानाभ्यां मृतानां तु विधितोऽपि भवति । “प्रायोपशानशस्त्राग्नि-
विषोद्वन्धनानम् तथा चतुर्दश्यां भवेच्छ्राद्धं”मिति ब्रह्मपुराणात् । प्रायो
महाप्रस्थानं युद्धमृतानां च, ‘प्रीयन्ते पितरश्चास्य ये च शस्त्रहता रणे’
इति वृद्धमनुस्मरणात् । एतच्च शस्त्रघातादिनिमित्तम् । चतुर्दशीश्राद्धं पित्रा-
दीनामप्येकोद्दिष्टमेव भवति, न तु पार्वणम् । तथा च गार्ग्यः—

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् ।

एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥ इति ।

²
पित्रादित्रिष्वपि शस्त्रहतेषु सर्वेषामेकोद्दिष्टान्येव कार्याणि पार्वणविधायक-
वचनाभावात् । यत्तु,

पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रघातदिभिर्हताः ।

स भूतेः पार्वणं कुर्यादाव्दिकानि पृथक् पृथक् ॥

इति वचनं प्रामाणिकग्रन्थेष्वदर्शनादनाकरम् । इदं चैकोद्दिष्टं सदैव
कार्यम् ।

प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः ।

दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत् ॥

इति प्रयोगपारिजातोदाहृतवचनात् । यस्त्वेतस्यामेव चतुर्दश्यां मृतस्तस्य
क्षयाहनिमित्तं श्राद्धं पार्वणमेव कर्तव्यम्,
³

¹
अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ।
पार्वणं तस्य कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन ॥

इति विज्ञानेश्वरधृतवचनात् । अमावास्यायां विशेषमाह अपरार्को यमः—

हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता ।
सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥ इति ।

अथ आश्विनकृत्यम् ।

²
आश्विनशुक्लप्रतिपद्यां चाराज्जीवत्पितृकेषु दौहित्रेण महालयापरपक्ष-
निमित्तकं मातामहश्राद्धं ³कार्यम् । तदुक्तं ⁴हेमाद्री—

जातमात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले ।
कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥

⁵
इति त्वनाकरम् । इयं च संगवव्यापिनी ग्राह्या ।

प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् ।
श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सिते ॥

इति वचनादिति निर्णयदीपे । इदमप्यनाकरम् । इदं च “मुण्डनं पिण्डदानं चे”ति दक्षवचनेन जीवत्पितृकं प्रति पिण्डदाननिषेधादन्वष्टकावच्च विशेष-
वचनाभावात् पिण्डरहितं कार्यमिति केचित् । अन्ये तु जीवत्पितृकं प्रति
पिण्डदानमात्रमनेन निषिध्यते । किन्तु,

1. अमायां च क्षयो यस्य प्रेतपक्षे तर्थात् च-ख. 2. राद् यदि जी-घ.
3. कर्तव्यम्-ख. 4. त.....द्री-Found only in Ms. घ. 5. This
sentence is omitted in Ms. घ. a. Portion from “किन्तु” to “निषिध्यते”
(Page 103, line 3)} is omitted in Ms. घ.

दर्शश्चादं गयाश्चादं श्राद्धं चापरपक्षिकम् ।
न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम् ॥

पितॄन् जीवत्पितुर्नेष्टमिति¹ वचनेनैकवाक्यतया श्राद्धमेव निषिध्यते । तद्वाक्य-
गतं दर्शादि उपलक्षणम् । एवं च तत्र विशेषवचनप्राप्तं² श्राद्धं
सपिण्डमेव भवतीत्याहुः ।

अस्यामेव नवरात्रव्रतारंभः । तत्र व्रतस्वरूपं भविष्योत्तरे-³

एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः ।
एकभक्तेन नक्तेन स्वशक्त्या याचितेन वा ॥

पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ।
गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥

स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः ।

वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैः⁴ म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥

स्त्रीभिश्च कुरुशादूलैः तद्विधानमिदं शृणु । इति ।

देवीपुराणेऽपि—

कन्यासंस्थे रवौ शुक्लामाश्विने प्राप्य नन्दिकाम् ।

अनाशी त्वथवैकाशी नक्ताशी वाथ वाय्वदः ॥⁵

भूमौ शशीत चामत्स्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा ।⁶

ब्रह्मालङ्कारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥

क्षत्रिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत् ।

त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः ॥

1. श्रित्वादिच-क. छ. 2. प्तं स-क, छ, घ. 3. ल्ये-घ. 4. तैः-ग.

5. वा कलशवदः-घ. 7. वा-छ.

¹
इति । अत्र देवीपूजाप्रधानमुपवासादिकमङ्गम् ।

पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः ।

²
एवमन्यैरपि सदा देव्याः कार्यं प्रपूजनम् ॥

विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।

²
इत्यादौ पूजाया एव फलसम्बन्धात् । अत्र प्रतिपदः खण्डत्वे केचित्तावत्
परविद्धा ग्राह्येत्याहुः । तथा ³चोक्तं मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः—

पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत् प्रतिपदाश्विनी ।

नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ॥

देशभङ्गो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते ।

⁴
नन्दायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम् ॥

⁵
इति । तथा,

अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत्पूजने मम ।

मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीया द्विगुणान्विता ॥ तथा,

न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयगामिनी ॥

इति । शुद्धाधिका तु पूर्वैव ग्राह्या, संपूर्णत्वात् अमायोगाभावाच्च ।

यदा चामाविद्धा प्रतिपत्परदिने नास्ति तदा विद्धापि ग्राह्या । एतद्विष-
याण्येव “अमायुक्ता प्रकर्तव्ये”ति नृसिंहप्रासादोदाहृतानि वचनानि । माता-
महचरणैस्तु माधवहेमाद्रयुक्तनक्तव्रतत्वानुरोधेन खण्डाप्रतिपत्प्रदोषव्यापिनी

-
1. omitted in Ms. अ. a. This and the following line are
omitted in Ms. अ. 2. omitted in Ms. अ. 3. यपुराणदेवी-अ.
4. स्यात्पूजायं मम-अ. 5. omitted in अ. 6. omitted in अ.

ग्राह्येत्युक्तम् । नक्तव्रतत्वं न नक्तभोजनरूपत्वात् तस्य पाक्षिकत्वादंगत्वाच्च ।
किन्तु पूजारूपस्य प्रधानस्य नक्तकालसाध्यत्वात् । तच्च “निशि भ्रमन्ति
भूतानि शक्तयः शूलभृद्यत” इत्यादिसामान्यवचनात् ,

आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद् या तिथिर्भवेत् ।

तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं प्रपूजयेत् । तथा,

रात्रिव्रतमिदं देवि! सर्वपापप्रणाशनम् ।

रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते ॥

इत्यादि देवीपुराणादिवचनेभ्यश्चावगम्यते । एवं च पूजारूपस्य प्रधा-
नस्य रात्रिकालत्वे स्थिते “कर्मणो यस्य यः काल” इति वचनात् प्रदोषव्यापिनी
प्रतिपन्नवरात्रयते ग्राह्या । तत्र पूर्वदिने एव प्रदोषव्याप्ती पूर्वा ।
एतद्विषयाप्येव,

अमायुक्तैव कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

न ग्राह्या परसंयुक्ता शुद्धसन्तानकांक्षिभिः ॥

इति नृसिंहप्रसादोदाहृतवचनानि । तल्लसंहितायामपि,

द्वितीया शेषसंयुक्ता प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

मोहादथोपदेशाद्वा कृता पुत्रविनाशकृत् ॥

आरंभे नवरात्रस्य द्वितीया त्रुटिसम्मिता ।

न केवलं तिथिं हन्ति वेधात्सा पुत्रसंपदम् ॥ तथा,

द्वितीयादिकलोपेता प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

वर्जनीया प्रयत्नेन विषलेशो यथाम्भसि ॥

1. omitted in Ms. अ. a This line is omitted in Ms. ग.

b Portion from ‘प्रदोषव्याप्ती’ to ‘रात्र्यभंगः प्रजायते (page 106) is omitted in Ms. अ. 2. संयुक्ता-अ.

धवलनिबन्धे देव्युवाच—

प्रतिपच्छेषसंयुक्तद्वितीयार्या ममार्चनम् ।

कृतं धर्मं नाशयति सन्तति पुत्रपौत्रिकीम् ॥

अमायुक्तैव सा ग्राह्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

अन्यथाकरणे तावद्राज्यभंगः प्रजायते ॥ इति ।

दिनद्वये तद्व्याप्तावुत्तरा । दिनद्वये तद्व्याप्तावुत्तरैव, सायाह्नरूपगौणकालव्या-
प्तिलाभात् । एतद्विषयाण्येव^a द्वितीयायुक्तनिषेधकानि च वचनानि । द्विमु-
हूर्तापि इत्यपिशब्देन कैमुत्यन्यायप्रदर्शनात्² कालादिशब्दा अविरुद्धाः । यत्तु,

आद्यास्तु नाडिकास्त्याज्याः षोडश द्वादशाणि वा ।

अपराह्णे च कर्तव्यं शुद्धसन्ततिकांक्षिभिः ॥

इति वचनं, तद्

आद्याः षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः ।

कलशस्थापनं तत्र अरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥

इति वचनान्तरैकवाक्यतया कुलाचारप्राप्तकलशस्थापनविषयम् । एवं^b
द्वितीयाविद्धाप्रतिपद्विधायकानि अमायुक्तनिषेधकानि³ च वचनानि वस्तु-
तस्तद्विषयाण्येव ।

अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निन्दिता तथा ।

तत्र चेत् स्थापयेत् कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥

1. अ-क, अ. a This sentence and the sentence following it are omitted in Ms. अ. 2. यद-अ. b. "विषयम्।....स्तद्विषयाण्येव"— omitted in Ms. अ. 3 नि वस्तु-अ

प्रतिपत्सद्वितीया तु कुंभारोपणकर्मणि ।

इति रुद्रयामलवचनात् । यदपि “प्रारम्भं नवरात्रं स्याद्वित्वा चित्रां च वैधृत”मिति वचनं तदपि,

चित्रा वैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

तयोरन्ते¹ विधातव्यं कलशारोपणं गृहे ॥

इति वचनात् कलशस्थापनविषयमेव । तत्र विशेष उक्तः कात्यायनेन—

प्रतिपद्याश्रिने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः ।

आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम् ॥

अचिष्ये—

चित्रा वैधृतिसंयुक्ता प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप !

त्याज्याः⁴ ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे⁵ तु पूजनम् ॥

इति । तथा रुद्रयामले—

संपूर्णा प्रतिपद्यैव चित्रायुक्ता यदा भवेत् ।

वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा माध्यन्दिनै रवी ॥

अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते ।

इति । तथा,

न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुंभाभिषेचनम् ।

विष्णुधर्म—

भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः ।

प्रातःकाल इति¹⁶ प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ॥

1. प्रकर्तव्यं—घ. 2. नमेव विषयम्—क. 3. यमाह दुर्गोत्तरे कात्यायनः—घ.

4. स्वरांशा—घ. 2. ‘तथा च’ to ‘स्थापनमिष्यते, इति’ omitted in Ms. घ. 5. सा त—क. 6. कथातः—ग.

इति । रुद्रयामले-

स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् ।
 शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥
 यवान् वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् ।
 तत्र संस्थापयेत् कुंभं विधिना मन्त्रपूर्वकम् ॥
 सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृण्मयजं तु वा ।

इति । देवीपूजा च जयन्तीमन्त्रेण कार्या ।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
 दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ॥
 अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमादि कारयेत् ।

इति देवीपुराणात् । दुर्गालिङ्गको वैदिक आगमिको वा ।

तल्लिङ्गैः पूजयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान् समाहितः ।

इत्यग्निपुराणात् ।

‘प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं नमोन्तं देवताम् वा ।

नाम्ना सर्वं समापयेद्’ इति साधारणवाक्यात् । पूजा च षोडशोपचारैः
 षण्चोपचारैरन्यैश्च राजोपचारैश्छत्रचामरादिभिः । सा च त्रिकालं प्रदोषे
 विशेषेण । पूजानन्तरं च मार्कण्डेयपुराणादिगतं देवीमाहात्म्यं पठेच्छृणुयाद्वा ।

माहात्म्यं भगवत्याश्च पुराणादिषु कीर्तितम् ।

पठेद्वा शृणुयाद्वापि सर्वकामसमृद्धये ॥

इति वचनात् । तथा,

-
1. केवैदिकैरागमिकेर्वा-ख. 2. नामवाचि वा-क. ग. 3. वचनात्-ख.
 4. ख-ख, घ.

एकोत्तराभिवृद्धा तु नवमी वाचदेव हि ।

चण्डीपाठं पठेद्वापि आपयेद्वा विधानतः ॥

इति । भवणं च ब्राह्मणादेव कर्तव्यम् ।

“वाचकं ब्राह्मणं विद्याभ्रान्यवर्णजमादरात्” ।

इति भविष्यपुराणात् । पौराणस्त्रोत्रपाठश्च नारायणादीन् नमस्कृत्य कर्तव्यम् ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

इति वचनात् । जयशब्दार्थश्च भविष्ये-

अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा ।

विष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्च भारत ! ॥

कात्स्नं च पूज्यो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम् ।

शैवाश्च धर्मा राजेन्द्र ! मानवोक्ता महीपते ॥

जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ।

इति । पाठप्रकारश्च मत्स्यसूक्ते-

आदौ च प्रणवं स्तोत्रं वा संहितां पठेत् ।

अन्ते च प्रणवं दद्यादित्पुत्राचादिपूरुषः ॥

सर्वत्र पाठे विज्ञेयो ह्यन्यथा विफलं भवेत् ।

शुद्धेनानन्यचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः ॥

न कार्यासक्तमनसा कार्यं स्तोत्रस्य वाचनम् ।

आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्पुष्पीः ॥

हस्तसंस्थापनादेव यस्मादङ्गुलं भवेत् ॥ १५ ॥

स्वयं च लिखितं यत्, कृत्वा लिखितं च यत् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि लिखितं भवेत् ॥ १७ ॥

ऋषिच्छन्दादिकं त्यक्त्वा पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः ॥ १८ ॥

स्तोत्रेण दृश्यते यत् प्रणवन्यासमाचरेत् ।

साङ्कल्पिकस्तोत्रपाठे संख्यां कृत्वा पठेत् सुधीः ॥ १९ ॥

अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन ।

कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादि पठेत् पुनः ॥ २० ॥

इति । दुर्गमन्त्रं वैदिकमागमिकं वा जपेज्जापयेद्वा ।

दुर्गाग्रतो जपेन्मन्त्रमेकचित्तः समाहितः ।

इति देवीपुराणात् । कुमारीपूजनं च प्रत्यहं यथाशक्ति एकद्वयादि-

क्रमेण कार्यम् । तत्प्रकारं देवीपुराणे-

ब्रह्मोवाच-

न तथा तुष्यते शक्र! होमदानजपेन तु ।

कुमारीभोजनेनात्र यथा देवी प्रसीदति ॥ १ ॥

प्रक्षाल्य पादौ सर्वासां कुमारीणां च क्लृप्तम् ॥ २ ॥

सुलिप्ते भूतले रम्ये तत्र ता आसने स्थिताः ॥ ३ ॥

पूजयेद् गन्धपुष्पैश्च सगन्धैश्च मनोरथैः ॥ ४ ॥

पूजयित्वा विधानेन भोजनं तासु दापयेत् ॥ ५ ॥

a. Tols and the succeeding line are omitted in Ms. c.

I. सङ्कल्पितस्तो-क, सङ्कल्पिते स्तोत्र-घ.

तासां देयं कुमारीणां शनैर्भुञ्जन्त्येव शुभम् ॥

पानीयं याचितं, देयम् वा याचितं शुभम् ।
तास्तृप्तास्तु यदा सर्वास्तदा स्वाचमनं ददेत् ॥

आचम्य चाक्षतान् दत्त्वा त्वया क्षातमग्निमुत्तु ।
दातुः शिरसि क्षतव्याः कथं काभिर्यक्षताः ॥

तेनापि प्रणिपातस्तु कर्तव्यो भक्तिपूर्वकः ।
अनेन विधिना शक्र! देवी क्षिप्रं प्रसीदति ॥

ददाति विविधान् कामान् मनोभीष्टान् सुराधिप !
राज्यं कृत्वा ततः पश्चदेवस्मेकं च मुञ्चति ॥

इति । स्कान्दे—

एकैकां पूजयेत् कन्यामेकवृद्धया तथैव च ।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवर्कं वरम् ॥

नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु ।
एकवृद्धया लभेत् क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत् ।
गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥

द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधि क्रमात् ।

तासां च क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका
शाम्भवी दुर्गा सुभद्रेति नामान्युक्तानि स्कान्दे—

कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा तु त्रिमूर्तिनी ।

चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ॥

षड्वर्षा तु भवेत् काली सप्तवर्षा तु चण्डिका ।

अष्टवर्षा शाम्भवी तु दुर्गा तु नवमी स्मृता ॥

दशवर्षा सुभद्रेति नामभिः परिकीर्तिता ।

अत ऊर्ध्वं तु या कन्याः सर्वकार्येषु वर्जिताः ॥

आसां क्रमेण फलान्याह स एव—

दुःखदरिद्रघनाशाय शत्रूणां नाशनाय च ।

आयुष्यबलवृद्धयर्थं कुमारीः पूजयेन्नरः ॥

आयुष्कामस्त्रिमूर्ति तु त्रिवर्गस्य फलाप्तये ।

अपमृत्युव्याधिपीडादुःखानामपवृत्तये ॥

सौख्यधान्यघनारोग्यपुत्रपौत्राभिवृद्धये ।

कल्याणीं पूजयद्दीमान् नित्यं कल्याणवृद्धये ॥

आरोग्यसुखकामी तु धनकामस्तथैव च ।

यशःकामी नरो नित्यं रोहिणीं परिपूजयेत् ॥

विद्यार्थी च जयार्थी च राज्यार्थी च विशेषतः ।

शत्रूणां च विनाशार्थी कालिकां पूजयेन्नरः ॥

संग्रामे जयकामी च ^१प्रसिद्धिनां प्रसिद्धिनाम् ।

दुःखदास्त्रिचक्रशाय नृकृष्णोद्भावा ॥

महापापविनाशाय शाम्भवीं च प्रपूजयेत् ।

सबलोत्कटशत्रूणामुग्रसाधनकर्मणि ॥

दुर्गा दुर्गतिनाशाय पूजयेद् यत्नतो बुधः ।

सौभाग्यधनधान्यादिवाञ्छितार्थकलाप्तये ॥

सुभद्रां पूजयेन्मर्त्यो दासीदासविवृद्धये ।

^२
पूजाप्रकारश्च तत्रैव उक्तः—

प्रातःकाले विशेषेण कृताभ्यंगो विशेषतः ।

आवाहयेत्ततः कन्यां मन्त्रेणानेन भार्गव ! ॥

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधरिणीं ।

^३
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ॥

रत्यावाहनमन्त्रः—

ततः संपूजयेद्दीमान् मन्त्रैरेभिः पृथक् पृथक् ।

^४
पूजामन्त्राः—

जगत्पूज्ये! सर्ववन्द्ये! सर्वशक्तिस्वरूपिणि! ।

पूजां गृहाण कौमारि! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ कुमार्याः ॥

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम् ।

त्र्यैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ त्रिमूर्तेः ॥

कलात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् ।
कल्याणजननीं नित्यं कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥ कल्याण्याः ॥

अणिमादिगुणाधारामकाराक्षरात्मिकाम् ।
अनन्तशक्तिकां देवीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥ रोहिण्याः ॥

कामचारां शुभांकां तां कालचक्रस्वरूपिणीम् ।
कामदां कण्ठोदारां कालीं सम्पूजयाम्यहम् ॥ काल्याः ॥

चण्डचारां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमां ॥ चण्डिकायाः ॥

सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥ शाम्भव्याः ॥

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ दुर्गायाः ॥

सुन्दरीं स्वर्णवर्णां सुखसौभाग्यदायिनीम् ।
सुभद्रां जननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ सुभद्रायाः ॥

एवमभ्यर्चनं कुर्यात् कुमारीणां प्रयत्नतः ।
कञ्चुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥

नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत् पायसादिभिः ।
हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठादिविकारां कुकुलां तथा ॥

ग्रन्थिस्फुटितगर्भाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम् ।
जात्यन्धां केकरीं काणां कुरूपां तनुरोमशाम् ॥

एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यग् प्रपूजयेत् ।

ब्राह्मणी सर्वकार्येषु अयर्थं नृपवंशजाम् ॥

लाभार्थं वैश्यवंशोत्थां सुतार्थं शूद्रवंशजाम् ॥

दारणे चान्त्यजोत्तीयां पूजयेद्विधिना नरः ॥

इति । क्वचित्तु सर्वासामेक एव मन्त्र उक्तः—
मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ॥

नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ।

इति । अत्र वेदपारायणमुक्तं रुद्रयामले—

एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् ।

तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै ॥

तथा देवीपुराणे—

यदाद्ये दिवसे कुर्यान्चण्डिकापूजनादिकम् ।

द्विगुणं तद् द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽह्नि ॥

नवमीतिथिपर्यन्तं बृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।

इति । अशक्तौ पूजादिकमन्येन करणीयम् ।

स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत् पूजयेत वा ।

इति देवीपुराणात् । इदं च शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।

नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।

कार्या चैव स्वदेवार्चा प्रत्यहं कुलधर्मतः ॥

1. अ-क 2. अ-ख. 3. अ-ख 4. omitted in Ms. न. 5. एतेषां
अ-ख. 6. जाय वा-ग; जाय च-घ,

इति धर्मप्रदीपात् । अत्र ¹ साश्वत्समाश्रितमुक्त्वा सकलस्तोत्राहारे वेदीपुराणे-

अश्वयुक्शुक्लप्रतिपत्स्वातियुक्ते सुशोभने ।

² पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं सूर्यमावहत् ॥

तस्मात् साश्वेनरैस्तत्र पूज्योऽसौ श्रद्धयान्वितैः ।

पूजनीयाश्च तुरगा नवमीं यावदेव हि ॥

शान्तिस्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने दिने ।

धान्यं भल्लातकं कुष्ठं वचासिद्धार्थकांस्तथा ॥

पञ्चरंगेण सूत्रेण कण्ठे तेषां तु बन्धयेत् ।

वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शक्तैर्यन्त्रैः सबैष्णवैः ॥

वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कर्ष्यो दिने दिने ।

तुरगा रक्षणीयास्तु पुरुषैः शस्त्रपाणिभिः ॥

दारिद्र्यतः क्वचित्तत्र न च वाह्याः कथञ्चन ।

इति । तथा,

ज्येष्ठा येऽपि पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः ।

पृथिवीमावहन् पूर्वं सशैलवमकानमाम् ॥

³ कुमुदेरावतः पद्मः पुण्यदन्तोऽथ वामनः ।

सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलस्तस्मात्संस्तव पूजयेत् ॥

शाक्रादृक्षात्समारभ्य नवम्यन्त्रं च पूर्ववत् ।

इति । अत्रैव प्रतिपदाद्यष्टमीपर्यन्तं जयार्थिना नृपेण लोहाभिसारिकाख्यं ⁵
कर्म कर्तव्यम् । तथा च भविष्योत्तरे—

1. मस्ते अश्व-घ. 2. जस्तो प्र-ख. 3. जः-ख, घ. a. From "अश्वेय" to "अश्वपूर्वकम् । इति" (Page 117) omitted in Ms. घ.

4. बाण्ट-क, घ. 5. ह्यं कर्त-क, ग.

जयभिलाषी नृपतिः प्रतिपद्भृति क्रमात् ।

लोहाभिसारिकं कर्म कारयेद् यावदष्टमीम् ॥

प्रागुदक् प्रवणे देशे पताकाभिस्लंकृतम् ।

मण्डपं कारयेद्विष्यं नवसप्तकरं शुभम् ॥

षोडशकरमित्यर्थः ।

आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रे सुशोभनम् ।

मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्चत्थदलाभया ॥

राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ।

आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्येवाधिवासयेत् ॥

ततस्तु ब्राह्मणैः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।

ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्जुहुयाद् घृतम् ॥

लोहनामाभवत् पूर्वं दानवः सुमहाबलः ।

स देवैः समरे क्रुद्धैः बहुधा शकलीकृतः ॥

तदङ्गसंभवं सर्वं लोहं यद् दृश्यते क्षितौ ।

लोहाभिसारिकं कर्म तेनैतदृषिणा स्मृतम् ॥

शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायंसं घृतसंयुतम् ॥

हुतशेषं तुरंगाणां राजानमुपहारयेत् ।

बद्धपर्याणकान् तत्र गजाश्वान् समलंकृतान् ।

भ्रामयेन्नगरे नित्यं नन्दिघोषपुरःसरान् ॥

प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा संपूज्य विष्टुर्वेत्तः ।

पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यानुलेपनैः ॥

हुतशेषं प्रदातव्यमौपनायनिके गजे ।

तस्याभिहरणाद्राज्ञो विप्रयः समुदाहृतः ॥

पूजामन्त्रान् प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव ।

यैः पूजिता प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम् ॥

छन्दमन्त्रः—

यथा चन्द्रश्छन्दयति शिवायेमां वसुन्धराम् ।

तथा छन्दय राजानं विजयारोम्भद्वये ॥

चामरमन्त्रः—

¹ शशाङ्ककरसङ्काश! ² श्रीहिडिडीरपाण्डुर! ॥

प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ! ॥

तत्र प्रथमं रेवंतपूजा सदाचारात् कर्तव्या ।

पूजामन्त्रः—

नमो देवादिदेवाय तुरंगबलचारिणे ।

सूर्यपुत्राय देवाय तुरंगाम्नां हित्तय च ॥

तुरंगपरिषद्यस्य नृपतेः परिधावति ।

सस्वर्गं साधिपं रक्ष्य शरणं त्वां व्रजाम्यहम् ॥

a. In mss क and ग the names of Mantras are written in the end of each of them. 1. शशिनः कर-क, ग. 2. हिमडि-क, ग.

b. From 'तत्र' to 'अथाभ्यपूजा'— omitted in Mss. क and ग.

मन्त्रान्तरम्—

सूर्यपुत्र! महाबाहो! छायाहृदयनन्दन!
शान्तिं कुरु तुरंगाणां केन्तस्य नमोऽस्तु ते ॥

अथाश्वपूजा । अश्वमन्त्रः—

गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः ।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥

प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धयस्व तुरंगमान् ।
तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तम् ॥

रुद्रस्य ब्रह्मवीर्येण पवनस्य बलेन च ॥
स्मर त्वं राजपुत्रत्वं च कौस्तुभं च मणिं स्मर ।

यां गतिं पितृहा गच्छेत् ममवृहत् भूमिस्तु ॥
भूमिहानृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ।

सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत् पश्यन्ति दुष्कृतम् ॥
व्रज त्वं तां गतिं क्षिप्रं तव पापं भवेत्तदा ।

निष्कृतो यदि वा छन्नो युद्धेऽध्वनिं² तुरंगमम्¹ ॥
रिपून् विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ॥

ध्वजमन्त्रः—

शक्रकेतो! महावीर्य! श्यामवर्णार्चयाम्यहम् ।
पतत्रिन्! वैनतेय! त्वं तथा नारायणध्वज! ॥

काश्यपेभामृतत्नातर्नागारै! विष्णुधाहन! ।
अप्रमेय! दुराध्वर्ष! रणे देवारिसूदन! ॥

गरुत्मन्! मारुतगतिस्त्वयि सन्निहिता यतः ।
अस्त्रचर्मयुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह ॥

गजमन्त्रः—

कुमुदैरावणः पद्मः पुष्यदन्तोऽथ दामनः ।
मुप्रतीकोऽञ्जनो नील एते वै देवयोनयः ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः ।
भद्रो मन्दो मृगश्चैव राजा संकीर्ण एव च ॥

वने वने प्रसूतास्ते स्मरय्योनि महागजाः ।

यूथानि सुमहान्ति च — इति मदनरत्ने पाठः ।

पान्तु त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ॥

भर्तारं रक्ष नागेन्द्र! स्वामी च प्रतिपाल्यताम् ।
अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो ब्रज ॥

श्रीस्ते सोमाद् बलं विष्णोर्स्तेजः सूर्यज्जिवोऽनिलात् ।
युद्धे रक्षन्तु नागाश्च दिशश्च सह दैवतैः ॥

अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ।

पताकामन्त्रः—

हुतभुग् वासवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।
नागकिन्नरगन्धर्वा यक्षभूतगणा ग्रहाः ॥

प्रमत्तास्तु महादेव्यो भूतेशो मातृभिः सह ।
शक्रसेनापतिः स्कन्दो वरुणभ्राश्रितास्त्वयि ॥

प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राज्ञा विजयमृच्छतु ।
यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि समन्ततः ॥

पतन्तूपरि शत्रूणां हृतानि तव तेजसा ॥
कालनेमिवधे यद्वत्तद्वत् त्रिपुरघातने ॥

हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवाभुरे तथा ।
शोभितासि तथैवाद्य शोभया समरे स्मर ॥

नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः ।
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥

पूतना रेवती गौरी कालरात्रीति या स्मृता ।
दहत्वाशु रिपून् सर्वान् पताके! त्वं मया स्मृता ॥

खड्गमन्त्रः—

असिर्विशसनः खड्गो विकर्मा च दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्माधारस्तथैव च ॥

इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ।
कृत्तिका ऋक्षमाहुस्ते गुरुर्देवो महेश्वरः ॥

हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः
पिता पितामहो देवस्तन्मां पालय सर्वदा ॥

साक्षां च क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका
शाम्भवी दुर्गा सुभद्रेति नामान्युक्तानि स्कान्दे—

कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा तु त्रिमूर्तिनी ।

चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ॥

षड्वर्षा तु भवेत् काली सप्तवर्षा तु चण्डिका ।

अष्टवर्षा शाम्भवी तु दुर्गा तु नवमी स्मृता ॥

दशवर्षा सुभद्रेति नामभिः परिकीर्तिता ।

अत ऊर्ध्वं तु या कन्याः सर्वकार्येषु वर्जिताः ॥

अस्मां क्रमेण फलान्याह स एव—

दुःखदरिद्रघनाशाय शत्रूणां नाशनाय च ।

आयुष्यबलवृद्धयर्थं कुमारीः पूजयेन्नरः ॥

आयुष्कामस्त्रिमूर्ति तु त्रिवर्गस्य फलप्राप्तये ।

अपमृत्युव्याधिपीडादुःखानामपवृत्तये ॥

सौख्यधान्यधनारोग्यपुत्रपौत्राभिवृद्धये ।

कल्याणीं पूजयद्दीमान् नित्यं कल्याणवृद्धये ॥

आरोग्यसुखकामी तु धनकामस्तथैव च ।

यशःकामी नरो नित्यं रोहिणीं परिपूजयेत् ॥

विद्यार्थी च जयार्थी च राज्यार्थी च विशेषतः ।

शत्रूणां च विनाशार्थी कालिकां पूजयेन्नरः ॥

संग्रामे जयकामी त्रिशूलिनीं प्रविभूजयेत् ।

दुःखदास्त्रिचक्रशाय नृकल्लस्योहनाय ॥

महापापविनाशाय शाम्भवीं च प्रपूजयेत् ।

सबलोत्कटशत्रूणामुग्रसाधनकर्मणि ॥

दुर्गा दुर्गतिनाशाय पूजयेद् यत्नतो बुधः ।

सौभाग्यधनधान्यादिवाञ्छितार्थकलाप्तये ॥

सुभद्रां पूजयेन्मर्त्यो दासीदासविवृद्धये ।

²
पूजाप्रकारश्च तत्रैव उक्तः—

प्रातःकाले विशेषेण कृताभ्यंगो विशेषतः ।

आवाहयेत्ततः कन्यां मन्त्रेणानेन भार्गव! ॥

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीं ।

³
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ॥

रत्यावाहनमन्त्रः—

ततः संपूजयेद्दीमान् भर्तारंभिः पृथक् पृथक् ।

⁴
पूजामन्त्राः—

जगत्पूज्ये! सर्ववन्द्ये! सर्वशक्तिस्वरूपिणि! ।

पूजां गृहाण कौमारि! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ कुमारी! ॥

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिबर्गज्ञानरूपिणीम् ।

त्र्यैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ त्रिमूर्तेः ॥

कलात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् ।
कल्याणजननीं नित्यं कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥ कल्याण्याः ॥

अणिमादिगुणाधारामकाराक्षरात्मिकाम् ।
अनन्तशक्तिकां देवीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥ रोहिण्याः ॥

कामचारां शुभांकां तां कालचक्रस्वरूपिणीम् ।
कामदां करुणोदारां कालीं सम्पूजयाम्यहम् ॥ काल्याः ॥

चण्डचारां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमां ॥ चण्डिकायाः ॥

सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥ शाम्भव्याः ॥

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ दुर्गायाः ॥

सुन्दरीं स्वर्णवर्णां सुखसौभाग्यदायिनीम् ।
सुभद्रां जननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ सुभद्रायाः ॥

एवमभ्यर्चनं कुर्यात् कुमारीणां प्रयत्नतः ।
कञ्चुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥

नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत् पायसादिभिः ।
हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठादिविकारां कुकुलां तथा ॥

ग्रन्थिस्फुटितगर्भाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम् ।
जात्यन्धां केकरीं काणां कुरूपां तनुरोमशाम् ॥

एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यग् प्रपूजयेत् ।

ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु¹ उपायै² नृपवंशजाम् ॥

लाभार्थे² वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे³ शूद्रवंशजाम् ॥

दारणे चान्त्यजोतीयां पूजयेद्विधिना नरः ॥

इति । क्वचित्तु सर्वासामेक एव मन्त्र उक्तः—

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ॥

नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ।

इति । अत्र वेदपारायणमुक्तं रुद्रयामले—

एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् ।

तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै ॥

तथा देवीपुराणे—

यदाद्ये दिवसे कुर्यान्चण्डिकापूजनादिकम् ।

द्विगुणं तद् द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽह्नि ॥

नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।

इति । अशक्तौ पूजादिकमन्येन करणीयम् ।

स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत् पूजयेत वा ।

इति देवीपुराणात् । इदं च शुक्रास्तादावपि कार्यम् ।

नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।

कार्या चैव स्वदेवार्चा प्रत्यहं कुलधर्मतः ॥

1. अ-क 2. अ-ख. 3. अ-ख 4. omitted in Ms. B. 5. एतेषां

अ-ख. 6. जाय वा-न; जाय अ-घ.

इति धर्मप्रदीपात् । अत्र ^१ साश्वत्सवाभ्युक्तमुक्तं ~~सकृत्सकृद्विद्वत्~~ वेदीपुराणे-
अभ्युक्तशुक्लप्रतिपत्स्वातियुक्ते सुशोभने ।

^२ पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं सूर्यमावहत् ॥

तस्मात् साश्वैर्नरेस्तत्र पूज्योऽसौ श्रद्धयान्वितैः ।

पूजनीयाश्च तुरगा नवमीं यावदेव हि ॥

शान्तिस्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने दिने ।

धान्यं भल्लातकं कुष्ठं वचासिद्धार्थकांस्तथा ॥

पञ्चरंगेण सूत्रेण कण्ठे तेषां तु बन्धयेत् ।

वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शक्तैर्यन्त्रैः सबैष्णवैः ॥

वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कस्मिन् दिने विद्वेत् ।

तुरगा रक्षणीयास्तु पुरुषैः शस्त्रपाणिभिः ॥

दारिद्र्यतः क्वचित्तत्र न च वाह्याः कथञ्चन ।

इति । तथा,

ज्येष्ठा येऽपि पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः ।

पृथिवीमावहन् पूर्वं सशैलवमकाननाम् ॥

^३ कुमुदैरावतः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ।

सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलस्तस्मात्तस्मात् पूजयेत् ॥

शाक्रादृक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत् ।

इति । अत्रैव ^४ प्रतिपदाद्यष्टमीपर्यन्तं जयार्थिना नृपेण ^५ लोहाभिसारिकाभ्यं
कर्म कर्तव्यम् । तथा च भविष्योत्तरे—

1. मत्से अश्व-घ. 2. जातो प्र-ख. 3. जः-ख, घ. a. From "अश्वे" to "अश्वपूर्वकम् । इति" (Page 117) omitted in Ms. घ.

4. द्वाष्ट-क, घ. 5. ह्यं कर्तं-क, घ.

जयाम्बिलाषी नृपतिः प्रतिपद्भृति क्रमात् ।

लोहाभिसारिकं कर्म कारयेद् यावदस्मिन् ॥

प्रागुदक् प्रवणे देशे पताकभिल्लंकृतम् ।

मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं शुभम् ॥

षोडशकरमित्यर्थः ।

आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।

मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्चत्थदलाभया ॥

राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ।

आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्येवाधिवासयेत् ॥

ततस्तु ब्राह्मणैः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।

ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्बुध्याद् धृतम् ॥

लोहनामाभवत् पूर्वं दानवः सुमहाबलः ।

स देवैः समरे क्रुद्धैः बहुधा शकलीकृतः ॥

तदङ्गसंभवं सर्वं लोहं यद् दृश्यते क्षितौ ।

लोहाभिसारिकं कर्म तेनैतदृषिणा स्मृतम् ॥

शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पाथसं धृतसंयुतम् ॥

हुतशेषं तुरंगाणां राजानमुपहारयेत् ।

बद्धपर्याणकान् तत्र गजाश्वान् समलंकृतान् ।

भ्रामयेन्नगरे नित्यं नन्दिघोषपुरःसरान् ॥

इति । अष्टाष्टचत्वारिंशद्दूर्वाकुरान् हस्ते गृहीत्वा मन्त्रेण पूजयेदित्युक्त्या
 “एवमेवंविधां पूजामष्टाचत्वारिंशद्वारं समाचरे”दिति वचनादेकैकादृती अष्ट
 चत्वारिंशद् दूर्वाः विज्ञायन्ते । “स्वयमद्यात्तदेवाग्नम्” इति अग्नान्तर-²
 परिसंख्या क्रियते । न च त्रैदोष्यम्, एवकारेणाभ्यनिवृत्तिरुक्तत्वात् ।
 “अत्र ह्येवापतन्तीतिवत्” । अत्र केचित् “व्रतस्यास्य फलं प्रोक्तं जागरे
 मुनिसत्तमे”ति वचनात् जागरणं प्रधानं तत्र रात्रिव्यापिनी ग्राह्यति ।
 वस्तुतस्तु व्रतस्य जागरभिन्नत्वेन प्रतीतिस्तस्मैव जागरे सति फलसम्बन्धाभि-
 धानात् तस्यांगत्वमेव । वचनं तु इतरांगापेक्षयावश्यकत्वद्योतनार्थम् । “युग-
 भूताना”मिति युग्मवाक्यात् ।

चतुर्थीसंयुता कार्या, पञ्चमी परया न तु ।
 देवकर्मणि पितृये च शुक्लपक्षे तथा सिते ।

इति हारीतवचनात्,

भुक्त्वा जागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्धव्रते तथा ।
 ताराव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगे विशिष्यते ॥

इति वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्यति वक्तुं युक्तम् । ममं तु प्रतिभाति, ‘पूजा-
 व्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथि’रिति वचनान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।
 उभयत्र तथात्वे अतथात्वे वा पूर्वोदाहृतवचनेभ्यः पूर्वैति ।

आश्विनशुक्लसप्तमी बृहत्कल्पादिः । अस्मिन् पक्षे भूलगक्षत्रे सरस्वती
 स्थापनमुक्तं देवीपुराणे—

-
1. दंकु-ख 2. न्नपरिसंख्यम्—क; न्नान्तरसंख्या परिक्रि-ख. 3. ध्यं-ख.
 a. From ‘पूर्वविद्धा’ to बृहत्कल्पादिः omitted in Ms. घ. b. This
 sentence is omitted Ms. ख. 4. त्वं वा अत-क, ख.

मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् ।
उत्तरासु बलिं दद्यात् श्रवणेन विसर्जयेत् ॥

इति । रुद्रयामले—

मूले ऋक्षे सुराधीश! पूजनीया सरस्वती ।
पूजयेत् प्रत्यहं देवीं यावद्वैष्णवमृक्षकम् ।
नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन ।
पुस्तके स्थापिते देव! विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥

इति । षष्ठ्यादिपक्षोऽप्युक्तः कालीपुराणे—

बोधयेद्विल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च ।
सप्तम्यां विल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥
पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ।
जागरं च स्वयं कुर्याद्वलिदानं महानिशि ॥
प्रभूतबलिदानं च नवम्यां विधिवन्चरेत् ।
ध्यायेद्दशभुजां देवीं दुर्गां मन्त्रेण पूजयेत् ॥
विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै शाबरोत्सवैः ।
धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥
भगर्लिगाभिधानैश्च भगर्लिगप्रगीतकैः ।

इति । देवीपुराणे—

-
1. व!—क, ख, न. 2. लिकापु—म, घ. 3. शाखायां तामाहृत्य प्रपू—ख, ग.
4. गौम—ख, घ. a. This stenz is omitted in Ms. न. 5. omi-
tted in Ms. ग.

ज्येष्ठनक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् ।

सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्त्रिकायाः प्रवेशनम् ॥

पूर्वषाढयुक्ताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् ।

उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥

श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।

इति । अत्र च तत्तत्तिथीनां तत्तन्नक्षत्रयोगः शुभफलातिशयार्थो, न तु स एवा-
हरणीयः । तदुक्तं लेङ्गे—

मूलाभावेऽपि सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् ।

तथा तिथ्यन्तरेष्वेवमृक्षे वृत्ते फलोच्चयः ॥

देवलः—

तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् ।

योगाभावे तिथिर्गाह्या देव्याः पूजनकर्माणि ॥

इति । सप्तम्यादिपक्षो भविष्ये—

व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये । इति ।

भविष्योत्तरेऽपि—

त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् । इति ।

अष्टमीनवम्योरेव वा पूजनं कर्तव्यम् ॥

अष्टम्यां च नवम्यां च जन्ममोक्षप्रदां शिवाम् ।

पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः ॥

इति वचनात् । केवलाष्टमीपूजोक्ता ब्राह्मो—

तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयेज्ञविनाशिनी ।
प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह ॥

अत्यर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः ।
उपोषितैर्धूपदीपवस्त्रैर्मलिनानुलेपनैः ॥

इति । अयं च केवलाष्टम्युपवासः पुत्रवतो निषिद्धः ।

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ।
यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत् ॥

इति कालिकापुराणात् । केलनवमीपूजा भविष्ये—

लब्धाभिषेका वरदा शुक्ले चाश्वयुजस्य च ।
तस्मात् सा तत्र संपूज्या नवम्यां चण्डिका बुधैः ॥

इति । उपवासोऽप्यस्यामुक्तः—

तस्मिन्दिनं महापुण्या नवमी पापनाशिनी ।
उपोष्या तु प्रयत्नेन सततं सर्वपापिनैः ॥

इति । पत्रिकापूजायामाश्विनकृष्णनवम्यां बोधनासामर्थ्यं नवरात्रान्तर्ग-
ताष्टम्यां तत्कर्तव्यम्, “षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायंसन्ध्यासु कारयेत्”
इति भविष्यवचनात् । अत एव षष्ठी सायंसन्ध्याव्यापिनी ग्राह्या । आम-
न्त्रणं तु पत्नीप्रवेशाव्यवहितपूर्वदिने कुर्यात्—

व्रती प्रवेशात् पूर्वेषु¹ सायाह्ने बिल्ववासिनीम् ।
चण्डीमामन्त्रयेद्विद्वान् नात्र षष्ठीपुरस्क्रियाः ॥

²
इति । मत्स्यसूक्ते-

ज्येष्ठा वाप्यथवा षष्ठी सायंकाले न चेद् भवेत् ।
सायमेव तथापि स्याद्विल्वशाखाभिमन्त्रणम् ॥

पूर्वा षष्ठीं सनक्षत्रां सायं प्राप्तामपि त्यजेत् ।
यदा तु पत्रिकापूजा न परेषुर्भविष्यति ॥

सन्निकृष्टं तु यत् पूर्वं पत्रिकादिवसस्य तु ।
तद्दिने वरणं कृत्वा परे शाखां प्रवेशयेत् ॥

⁴ इति । पत्रिकापूजायां प्रातःकालीनमुत्तरोत्तरतिथिविद्वमैव ग्राह्यम् ।

भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः ।
तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥

⁶ इति नन्दिकेश्वरपुराणात् । अष्टमी तु पत्रिकापूजातिरिक्तेऽपि देवीपूजने च
नवमीविद्वैव ग्राह्या, "वसुरन्ध्रयो"रिति युग्मवाक्यात् ।

शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा ।
सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी ॥

⁷ सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि च ।
महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

-
1. शायिनीम्-ग. 2. इति तत्स्वरूपोक्तेः-ख. 3. सायाह्ने यदि चेद्भवेत्-क.
4. याः-ख. 5. नम् न तूत्त-क. 6. पत्नीपू-ख, ग. 7. वा-ग.

इति मदनरत्नधृतस्मृतिसंग्रहाच्च । स्मृतिसमुच्चये-

सप्तमी शल्यसंबिद्धा बर्जनीया सषाष्टमी ।

स्तोकापि सा तिथिः पुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत् ॥

दुर्गोत्सवे-

²
मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याष्टमी बुधैः ।

³
लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता ॥

अत एव गौरीतृतीयान्वेकाष्टम्या अल्पसप्तमीयमेव त्याज्यत्वम् । शल्याया
अप्युत्तरस्या अष्टम्याः ग्राह्यत्वं द्रष्टव्यम् । यदा तु परदिने नवमी
सूर्योदयं न स्पृशति तदाष्टमी सप्तमीविद्देव ग्राह्या ।

यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि

⁴
तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितामपि ॥

⁵
इति स्मृतिसंग्रहात् । तथा च,

अहं भद्रा च भद्रा च नवयोरेत्तरं क्वचित् ।

तस्माद्वै सप्तमीविद्वा कार्या दुर्गाष्टमी तिथिः ॥

इत्युक्तमिदं चान्येकस्मिन्निधायान्वेच्य । इयं भीमेवतिप्रशस्त्या,

अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत् ।

कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः ॥

1. संग्रहे-ख. 2. मूलसंज्ञापि त्रिमु-ख. 3. मूलं यथा स्या-व. a. From
'सप्तम्या' to 'परिति सप्तम्याः' (Page 135) omitted in Ms.
ग. 4. ग्रहे-ख

इति मदनरत्नधृतवचनात् । अत्र विशेषेण पूजा कार्या ।

पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ।

जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिधि ॥

इति कालिकापुराणात् । बलिदानप्रकारस्तु देवीपुराणे—

कन्यासंस्थे रवौ शुक्रशुक्लाष्टम्यां प्रपूज्य तु ।

द्रोणपुष्पैश्च वित्वाभ्रजातीपुंनागचम्पकैः ॥

पञ्चादं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम् ।

विधिवत् कालि कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् ॥

अ च मन्त्रः—‘ॐ कालिका यज्ञेश्वरी लोहदण्डायै नमः’ इति ।

तदुत्थं रुधिरं मांसं गृहीत्वा पूतनादिषु ।

नैऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम् ॥

मन्त्रो वक्ष्यते, कालिकापुराणे—

उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।

निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

a. Portion from “बलिदानप्रकार” to ‘सर्वत्रैवं विधिः स्मृतः [Page 135]—is omitted in Ms. c. But the following lines are found there:-

तथा, पशुघातः प्रकर्तव्यो गबलाश्ववधस्तथा । तथा,

देवीं तु पूजयित्वा ये अर्घरात्रेष्टमीषु च ।

घातयन्ति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः ॥

बलिं च ये प्रयच्छन्ति सर्वभूतहिनाशनम् ।

तेषां तु कुम्भ्यते देवी यावत्कल्यं तु साङ्करम् ॥

इति ।

1. त्व-क. 2. ते-क.

पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥

चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् ।
चामुण्डाबलिरूपाय बले! तुभ्यं नमोस्तु ते ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे बधोऽवधः ॥

ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्यरूपिणम् ।
चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि चैतस्य भैरवः ॥

आभषिच्य बलिं पश्चात् करवालं च पूजयेत् ।
रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधिका ॥

ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं तु पूजयेत् ।
पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रकैः ॥

गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद् बलिमुत्तमम् ।
ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति मन्त्रेणाप्यायतामिति ॥

स्थाने नियोजयेद्रक्तं शिरश्च सप्रदीपकम् ।
एवं दत्त्वा बलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः ॥

बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रैवं विधिः स्मृतः ॥

इति । इदं च बलिदानं अग्नीषोमीयपशुहिंसान्यायेन धर्म्यमपि क्षत्रियादि-
विषयमेव । ब्राह्मणस्य तु,

“सात्त्विकी जपयज्ञाद्यैर्नैवेद्यैश्च निरामिषैः” इतीयमेव पूजा भवति । तस्य सात्त्विककर्मस्वेवाधिकारस्य भगवद्गीतादिषु प्रसिद्धत्वात् । स्पष्टमुक्तं राजकर्तृत्वं देवीपुराणे—

तदर्घ्यामिनीशेषे विजयाश्रं नृपोत्तम ! ।

पञ्चादं लक्षणोपेतं गन्धधूपस्रगचितम् ॥

विधिवत् कालि कालीति जप्त्वा खड्गेन घ्रातयेत् ।

एवं सुरया स्वगात्ररुधिरेण च पूजा ब्राह्मणस्य न भवति ।

स्वगात्ररुधिरं दत्वा ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ।

मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥

इति कालिकापुराणात् । माषभक्तादिना तु ब्राह्मणस्य बलिदानं भवति ।

माषकुल्माषमांसाद्यैर्देवो दिक्षु बलिर्निशि ।

एते बलिस्त्रिमा ज्ञेयास्तृप्तौ छागस्रग्माः स्मृतः ॥

इति कालिकापुराणात् ।

एतेष्वपि ब्राह्मणस्य मद्यमांसव्यतिरिक्तत्वमेव भवति,

राजसी बलिदानाद्यैर्नैवेद्यैः सामिषैस्तथा— इति मांसबलिदानादेः राजसत्वाभिधानात् । रुद्रयामले ।

छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् ।

वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना ॥

इति । होमस्तु,

1. तुक्तव-क. a. This line is omitted in Ms. b. 2. कृतेषु भ-ब.

श्री

धातुरत्नावली

श्रीनारायणमिश्रश्रीगुरुचरणारविन्दयुगलमहम्

श्रीनारायणमिश्रश्रीगुरुचरणारविन्दयुगलमहम् ।
निःशेषविबुधपटलीशेऽश्रयितं शश्वदाश्रये मनसा ॥१॥

वृकोदराक्षरदितेष्वानेक-

दियाश्रिता ये खलु धातुसङ्घाः ।

गुरुत्तितस्तानखिसानुदाह-

त्यारोपितप्राबन्धिह त्रयामः ॥२॥

Ms. utilised for this publication--1038. G.

Abbreviations:-

- 1 क— कविकल्पद्रुमः
- 2 श्री— श्रीरतरङ्गिणी
- 3 धां. का—धातुकाव्यय
- 4 प्र— प्रक्रियासर्वस्वम्
- 5 प्र-क- प्रक्रियासर्वस्वे कल्पद्रुमेऽधिका धातवः
- 6 मा—माधवीयधातुवृत्तिः

• बाहुल्येनोदाहृतिषु उदाहरणेषु आरोपितं यथा स्वात् तथेति संबन्धः ।

§

पदमिह त्रितां णिचामप्येकं द्वे वा यथार्हमितरेषाम् ।

कथयामि लुगादेर्लावित्याद्यप्यनुक्तिं देवम् ॥३॥

भू सत्ताजननादिषु भवति विपाचनविमिश्रणविचिन्तासु ।

चो भावयतीत्यथ चो प्राप्ती तर्हि भावयेत भवते भवति ॥४॥

वेदे जनिस्त्वन्मृगोऽपि कुक्षमं शनौ,

गत्यामगात शपि शब्दगतस्य गायेत् ।

ज्यानी जिनास्ति निमसोपवपक्तादे-

शेषु ज्यवेत तर्हि शप्यमाद्यविमः किं ॥५॥

जानातीत्यवबोधने शिन पुनरस्माण्णो पुकि ज्ञापयेत्

प्रेक्षायां च निशातनश्रवणयोः सन्तोषणं मारणे ।

- ४ भू सत्तायाम् । I. प. 'सत्तायार्थमित्यर्थोक्तिरपि सिद्धम् । पुत्रो भवतीति जानने । भवत्यसावित्यर्थोक्तिरपि प्राप्ती । भवत् शब्दरस्तीति भूतिलिप्सायाम् । प्र. भुवोऽवकल्कने X. आ 'अस्यावकल्कने णिच् स्यात् । तच्च मिश्रीकरणम् । अत्ये तु चिद्वने विपाचनेऽवकल्कने चेत्पुनः । प्र. 'भुवमसौ प्राप्त्यर्थः प्र. 'भूधातुः प्राप्त्यर्थे वा णिज्जुत् । णिज्जुत्तः बाल्यनेपथी च स्यात् । णिज्जुत् आत्मनेपदं नेत्येके । धातुकाव्यव्याख्या । एतदनुसारेण प्रयोगः— 'आमन्त्रयन्ति' बभूवुः धा, का. ३. ५२.

- ५ गा स्तुती III प. छान्दसः । 'गा स्तुती । जन्मनि च इमे' प्र. 'गा लि स्तुती जन्मनि' क. ४९. गाड गती I. आ गे शब्दे I. प. ज्या वयोहानी IX. प. ज्यानिर्वयोहानिः । 'ज्युङ् उपनयननियमव्रतोपदेशेषु । ज्यवते माणवको मुनिर्वह्यचारी च' । प्र. क. अयं गत्यामेव मुद्रिते द्रुमे । 'ज्युङ्-युज्युङ् गत्यां' क. ५८.

§ त्रितां सर्वेषां णिचां केषाञ्चित्तोष्यपदित्वात् तदुदाहरणान्यत्र क्वचित् ए- स्मैपदरूपं क्वचित्त्रातनेऽस्मैपदम् ।

मित्त्वेन जपयेन्नियोगवचनादाज्ञापयेतेति च ।
ज्ञानज्ञापनबोज्ञेज् जपयति वा मित्त्वतो ज्ञापयेत् ॥६॥

अपि दाने यच्छति लुकि सवनेष्वाद् भित्तरणेष्वाद् ।
दत्ते, दाने कृते लुकी दायति अपि, स्वप्ने प्रीतिरप्ये ॥७॥

द्रो लुकि पलायनेष्वात् स्वप्ने न्यद्रादिहैव निद्रायत् ।
धारणपोषणदानेष्वदधाद् दत्तेऽथ चूषणे धयति ॥८॥

पा पाने पिबतीत्यस्य पा रक्षायाम्पात्लुकि ।
शोषणार्थस्कुः शैघ्रालोः पायत्वाच्चास्तिषी अपि ॥९॥

६ ज्ञा अवबोधने । IX. प. 'अनुपसर्गज्ज्ञः' (१-३-७६) इति कर्तृभिप्राये
क्रियोक्ते तत्र बोध्यः । जानीति । 'ज्ञा ग बोधने । ज्ञायाम् भारण आलोके
भित्ताने तोषणे स्तुती । ज्ञाक् प्रेरणे' क, ४१, ४२. 'भारणहीनोपनिषादनेषु
ज्ञा । एषु ज्ञानातिर्गन्तुं शक्नोति' शा. 'निष्ठाग्रमं प्रदर्शना । निशातनेष्वित्येके
प्र. 'ज्ञा विद्योने । अत्र नियोगः प्रेषणम् । स्वप्नादयमाज्ञाज्ञः । 'ज्ञाज्ञमयति'
मा. 'ज्ञप मिच्च । अस्य ज्ञानज्ञप्ते अर्थो इति स्थितम् । वृद्धी पुनर्मित्त्वात्
ह्रस्वः जपयति धर्मं स्वयम् । जपयति धर्मं शिष्यम् । अस्य वा मित्त्वं
द्रुमे । जपयति धर्मं स्वस्मिन्पुत्राय' । ३

७ दाप् दाने I. 'पाश्चाध्मा'— (७-३-७८) इति यच्छादेशः । दाप् लबने
II. प. अदाविति दापो लङ् । कुदाक्षो लुङ्अपि तथैव रूपम् । कुदाश्
III. उ. क्य दानगतिरक्षणहिंसाद्वयिषु I. आ. हेन् बोधने I. प. दो
अवखण्डने IV. प.

८ द्रः लुकीति छेदः । द्राघातोरित्यर्थः । 'द्रा कुत्सायां गती II. प. सा च
पलायनस्वापी । स्वापे निपूर्वः' प्र । इहैव-स्वप्ने इत्यर्थः । द्रं स्वप्ने I. प.
डुधाश् धारणपोषणयोः III. उ. 'दाने'प्येके मा. घेद् पाने I. प.

९ पा पाने I. प. 'पाश्चाध्मा'— (७-३-७८) इति पिबादेशः । पा रक्षणे II, प.
प शोषणे I. प.

ज्येष्ठनक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् ।

सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्निकायाः प्रवेशनम् ॥

पूर्वषाढयुक्ताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् ।

उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवम् ॥

श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।

इति । अत्र च तत्तत्तिथीनां तत्तन्नक्षत्रयोगः शुभफलातिशयार्थो, न तु स एवा-
हरणीयः । तदुक्तं लेङ्गे—

मूलाभावेऽपि सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् ।

तथा तिथ्यन्तरेष्वेवमृक्षे वृत्ते फलोन्वयः ॥

देवलः—

तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् ।

योगाभावे तिथिर्गाह्या देव्याः पूजनकर्माणि ॥

इति । सप्तम्यादिपक्षो भविष्ये—

व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये । इति ।

भविष्योत्तरेऽपि—

त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् । इति ।

अष्टमीनवम्योरेव वा पूजनं कर्तव्यम् ।

अष्टम्यां च नवम्यां च जन्ममोक्षप्रदां शिवाम् ।

पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः ॥

इति वचनात् । केवलाष्टमीपूजोक्ता ब्राह्मे—

तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी ।

प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह ॥

अत्यर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः ।

उपोषितैर्धूपदीपवस्त्रैर्माल्यानुलेपनैः ॥

इति । अयं च केवलाष्टम्युपवासः पुत्रवतो निषिद्धः ।

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ।

यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत् ॥

इति कालिकापुराणात् । केलनवमीपूजा भविष्ये—

लब्धाभिषेका वरदा शुक्ले चाश्वयुजस्य च ।

तस्मात् सा तत्र संपूज्या नवम्यां चण्डिका बुधैः ॥

इति । उपवासोऽप्यस्यामुक्तः—

तस्मिन्दिनं महापुण्या नवमी पापनाशिनी ।

उपोष्या तु प्रवृत्तेन सततं सर्वपापिणैः ॥

इति । पत्रिकापूजायामाश्विनकृष्णनवम्यां बोधनासामर्थ्ये नवरात्रान्तर्ग-
ताष्टम्यां तत्कर्तव्यम्, “षष्ठ्यां बिल्वतरो बोधं सायंसन्ध्यासु कारयेत्”
इति भविष्यवचनात् । अत एव षष्ठी सायंसन्ध्याव्यापिनी ग्राह्या । आम-
न्त्रणं तु पत्नीप्रवेशाव्यवहितपूर्वदिने कुर्यात्—

व्रती प्रवेशात् पूर्वोद्युः सायाह्ने बिल्ववासिनीम् ।
चण्डीमामन्त्रयेद्विद्वान् नात्र षष्ठीपुरस्क्रियाः ॥

²
इति । मत्स्यसूक्ते-

³
ज्येष्ठा वाप्यथवा षष्ठी सायंकाले न चेद् भवेत् ।
सायमेव तथापि स्याद्विल्वशाखाभिमन्त्रणम् ॥

पूर्वा षष्ठीं सनक्षत्रां सायं प्राप्तामपि त्यजेत् ।
यदा तु पत्रिकापूजा न परेद्युर्भविष्यति ॥

सन्निवृष्टं तु यत् पूर्वं पत्रिकादिवसस्य तु ।
तद्दिने वरणं कृत्वा परे शाखां प्रवेशयेत् ॥

⁴ ⁵
इति । पत्रिकापूजायां प्रातःकालीनमुत्तरोत्तरतिथिविद्वमेव ग्राह्यम् ।

भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः ।
तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥

⁶
इति नन्दिकेश्वरपुराणात् । अष्टमी तु पत्रिकापूजातिरिक्तेऽपि देवीपूजने च
नवमीविद्वैव ग्राह्या, "वसुरन्ध्रयो"रिति युग्मवाक्यात् ।

शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा ।
सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी ॥

⁷
सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि च ।
महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

-
1. शायिनीम्-ग. 2. इति तत्स्वरूपोक्तेः-ख. 3. सायाह्ने यदि चेद्भवेत्-क.
4. याः-ख. 5. नम् न तूत्त-क. 6. पत्रीपू-ख, ग. 7. वा-ग.

इति मदनरत्नघृतस्मृतिसंग्रहाच्च । स्मृतिसमुच्चये-¹

सप्तमी शल्यसंबिद्धा वर्जनीया सप्ताष्टमी ।

स्तोकापि सा तिथिः पुण्या यस्याः सूर्योदयो भवेत् ॥

दुर्गोत्सवे-

²मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याष्टमी बुधैः ।

³लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता ॥

अत एव गौरीतृतीया⁴ अष्टम्या अल्पसप्तमीमेवेन त्याज्यत्वम् । अल्पाया
अप्युत्तरस्या अष्टम्याः ग्राह्यत्वं द्रष्टव्यम् । यदा तु परदिने नवमी
सूर्योदयं न स्पृशति तदाष्टमी सप्तमीविद्धेव ग्राह्या ।

यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि

⁵तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितामपि ॥

⁶इति स्मृतिसंग्रहात् । तथा च,

अहं भद्रा च भद्रा च नवयोरेन्तरं क्वचित् ।

तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी तिथिः ॥

इत्येवमत्रान्येदमभिधायाम्नेव । इयं भौमेवतिप्रशस्तः,

अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत् ।

कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रसूतः ॥

1. संग्रहे-ख. 2. मूलार्शेणापि त्रिभु-ख. 3. मूलं यस्या सप्ता-व. a. From
'सप्तम्या' to 'परिति सप्तम्याः' (Page 135) omitted in Ms.

ग. 4. ग्रहे-ख

प्रीती च कामनायां प्रीयेत छित्तोऽय कामनातर्पणकौ ।

त्रित् प्रीणात्यन्त्यार्थे प्रीयति प्रायस्कृत् प्रयते यौ ॥२२॥

मित्र प्रक्षेपे मिनोति स्त्री मरणे मीयते तद्धि ।

वधे मीनाति मीनीते गतौ यौ माययेन्मयेत् ॥२३॥

स्त्री हिंसायामरिणोद् गमने शेऽरियदथ श्यति श्रवणे ।

स्त्रवणे च रीयते वृकशब्दे गमनेऽरिणात् प्वादी ॥२४॥

ली श्लेषणेऽस्य लीयेत स्वादेः प्वादिजुषोऽलिनात् ।

ली द्रवीकरणे यौजादिको लाययते सयेत् ॥२५॥

गत्यां शे वियतीत्यर्थैतिकथितक्षेपादिसप्ताधिनः

स्याद् वेदीति परिग्रहश्चदनयोर्वीथित देवादिकात् ।

२२ प्रीङ् प्रीती IV. आ. 'कामनायां च इमे । प्रीयते हरिः । प्रीयते हरि-
राधा' । प्र. 'प्री ङ् तर्पणे । प्री क् च. प्री गङ् कान्ती च, प्रीङ् प्रीती तु'
क. ५३. 'प्रीङ् तर्पणे कान्ती च X उ. कान्तिः कामना । प्रीणाति
प्रीणीते हरि राधा । तर्पयति कामयते इति वार्धः' । प्र. 'प्रीङ् तर्पणे X उ
(आधृषीयः । धूङ्प्रीङ्गोर्नुक् । प्रीणोरिति पाठे नुक् नेति विकल्पः कसितः ।)
प्रीणयति प्रायस्कृत् प्रयति प्रयते यौ विप्रान्' । प्र.

२३ इमिङ् प्रक्षेपे V. उ. श्रीङ् हिंसायाम् VI. आ. हिंसात्र प्राणवियोगः । मीङ्
हिंसायाम् XI. उ. मी गतौ X. उ. आधृषीय

२४ रि हिंसायाम् V. प. छान्दसः । रि गतौ VI. प. रीङ् स्त्रवणे IV आ.
'श्रवणे इत्येके' प्र. री गतिरेषणयोः IX. प. प्वादित्कादिश्च । 'रेषणं वृक-
शब्दः मा.

२५ लीङ् श्लेषणे IX. आ. ली श्लेषणे IX प. ली द्रवीकरणे X. उ. आधृषीयः

ब्रीणाति शिन पुनर्ब्रीणाति तु भवेत् प्वादेरथ व्ली गतौ
व्लीनाति शिन, परिग्रहच्छदनयोः श्लेषे गतौ चाव्लिनात् ॥२६॥

शिञ् निशाने सिनोति शनौ शीङ् स्वप्नेऽप्नेत, सेवने ।
श्रयति श्रयते, पाके श्रीणाति शिन भवेज्जितः ॥२७॥

षिञ् बन्धने सिनोति शनौ सिनाति शिन ष्मिङ् स्मिते ।
स्मयते हेलनार्थे स्यात् तडेव स्माययेत चौ ॥२८॥

२६ 'वि गतौ' VI. ब. प्र. 'पि' इत्येवान्यत्र सर्वत्र पाठः । 'पियन्नाधित' (धा. का. २-८३) इति पाठश्चिन्त्यः । 'वी' गतिप्रजननकान्त्यशनखादनेषु । II. प व्याप्ति क्षेपयोश्च द्रुमे' । प्र. १७ तमे श्लोके ईधातुरुक्तः । व्रीङ् वृणो-
त्यर्थे IV. आ. 'छादनं परिग्रहो वा तद्' । प्र. व्री वरणे IX. प. व्ली गतौ
इत्यनन्तरं वृत्करणं 'त्वादिपरिसमात्यर्थम्' । अन्ये तु प्वादीनामपि परिसमा-
त्यर्थमिति माधवीयधातुवृत्तौ । प्वादिरिति ब्रीणाति । अन्यत्र व्रीणाति ।
व्ली गतौ IX. प. 'केचिदमुं दन्त्योष्ठ्यादि (व्ली) पठन्तो व्ली वरणे इत्यमुं
न पेटुः' मा. प्वादित्वाद् दीर्घश्चिन्त्यः । व्ली वरणे IX. प. प्वादिः ।
वरणार्थः छादनं परिग्रहो वेति उक्तपूर्वम् । 'गतौ श्लेषणे च द्रुमे' प्र. 'व्ली
गि गत्यां च' क. ५६.

२७ शिञ् निशाने V. उ. शीङ् स्वप्ने II. आ. श्रिञ् सेवायाम् I. उ. श्रीञ्
पाके IX. उ.

२८ षिञ् बन्धने V. उ. षिञ् बन्धने IX. उ. 'ष्मिङ् ईषदसने I. आ. 'स्मिङ्' स्त्री.
स्मिट अनादरे इत्यत्र 'ष्मिङ् अनादरे इत्येके । डित्वात्तडेव । स्माययेत' प्र
(X. आ.) हेलनमनादरः ।

अव्यक्तशब्दे कवते रवेऽकौञ्चार्तस्वरे शे कुवतेऽकुषिष्ट ।

अव्यक्तशब्दे गवते पुरीषोत्सर्गेऽगुषीदप्यगुवीत् कुटाद्योः ॥२९॥

गतौ च्यवेतेति शपि क्षमायां हासेऽपि चौ च्यावयतेऽथ गत्याम् ।

जवेत वेगे जवति स्तुतौ लुक्यनौत् कुटादौ नुवतीति दीर्घात् ॥३०॥

शब्दे दवेत गत्यां दवति शपि द्वावथो दु उपतापे ।

अदुनोद्धनने दुनुते परितापे दूयते स्वादौ ॥३१॥

स्रवणे गमनेऽपि द्रोरद्धवद्धननेऽद्रुणोत् ।

द्रून् वधे स्वादिगाद् द्रूणोत्यद्रूणात् ऋयादिगात् क्रमात् ॥३२॥

२९ कुञ्ज शब्दे I. आ. 'अव्यक्तशब्दे इति न्यासे' मा. 'अयमव्यक्तशब्दाय' इति केचित् । प्र. कु शब्दे II. प. 'शब्दमात्रेऽदादौ' मा. कुञ्ज शब्दे VI. आ. 'अयमार्तशब्दे तुदादौ' मा. 'कुञ्ज आर्तशब्दे । कूष्ठित्येके । कुवते भीतः । उदन्तस्य सेदत्वं भेदः' । प्र. गुञ्ज अव्यक्ते शब्दे I. आ. गु पुरीषोत्सर्गे. VI प. 'गू' क्षी. ह्रस्वपाठेऽगुषीदिति अन्यत्र अगुवीदिति रूपद्वयसिद्धिः । उभावपि कुटादौ । 'गु शि ओ विष्टोत्सर्गे' क. ५८. गू ओशि विट्सूतौ क. ६३. शिः कुटादिः ।

३० च्युञ्ज गतौ I. आ. च्यु हसने X. उ. 'सहने इति केचित्' प्र. 'जुञ्ज गत्यां, जु रंहसि' क. ५८. 'जु वेगे जवति' प्र. क. 'जुञ्ज गतौ । जवते' प्र. क. णु स्तुतौ II. प. णू स्तुतौ VI प.

३१ 'दुञ्ज शब्दे । दवते' प्र. 'दुञ्ज' मा. क्षीरस्वामी उभौ न पठति । रि शि श्रिरि जिरि दाश दृ हिंसायाम् इत्यत्र माधवः- 'केचित्तु दुष्मपि पठन्ति द्रुते इति' इति । 'दुञ्ज इत्यप्येके' प्र. दूञ्ज परितापे IV. आ. स्वादौ दिवाद्यन्तर्गणे स्वादौ ।

३२ द्रु गतौ I. प. 'द्रु लुतौ गतौ' क. ५९. द्रु हिंसायाम् V. प. 'द्रूम् हिंसागत्योः V. उ. उदात्त उभयतोभाषः । द्रूणोति द्रूणुते' प्र. क. द्रूणाञ् वधे गतौ क. ६३. नः स्वादिः गः ऋयादिः । द्रूम् हिंसायाम् IX. उ.

धुञ् कम्पने श्नाषधुनोदिहैव धूनोति धूजोऽथ धुवोऽधुवीदिति ।
 धूजो धुनाति श्नि धुनोति, यो धवेद्वेषेत तद्ध धूनयते च धावयेत्
 ॥३३॥

स्थैर्ये ध्रुवति शपि गतावपि ध्रुवेच्छेऽथ शोधनाशुद्धयोः ।
 पवतेऽन्त्ये पूयेत श्यन्याद्यार्थे पुनाति च पुनीते ॥३४॥

अमिश्रणे मिश्रणेऽपि यौति युञ् बन्धनेऽयुनात् ।
 युनीते श्नि, जुगुप्सायां यावयेत तडेव ची ॥३५॥

गतौ वधे च रवते शुब्देऽरावीदसौ लुकि ।
 श्रु गतौ श्रवति, श्रुत्यां शृणोति श्नुशृभावतः ॥३६॥

३३ धुञ् कम्पने V. उ. धूञ् कम्पने V. उ. धू विधूनने VI. प. कुटादिः ।
 धूञ् कम्पने IX. उ. प्वादिल्वर्हिदिश्च । धूञ् कम्पने X. उ. आधृषीयः ।
 'धूञ्प्रीणो'रिति नुक् । धूनयति । नुगस्य नेति मते धावयति । अणिचि,
 धवति धवते । प्र. 'धूञ्प्रीणो'रिति हरदत्तकौमारादीनां पाठः । तन्मते प्रीणा-
 तिसाहचर्यम् धूजोऽपि क्रैयादिकस्यैव नुका भाव्यम् । अत एवात्र मैत्रेयो
 धावयतीत्युदाहरणम् । मा.

३४ धु स्थैर्ये I. प. धु गतिस्थैर्ययोः VI. प. कुटादिः । पूङ् पवने I. आ.
 'शोधनं तत् । पवते सोमम् । अयं द्रुमश्च नि च । श्नायां मित् ।' प्र.
 'पूङ् शोधे पूङ् य पूङ्गि च' क. ६४. 'गिः प्वादिरप्यपूः' क. ९. (परि-
 भाषा ।) 'पूङ् पवने' IV. आ. प्र. क. अन्त्ये (अर्थे) शुद्धौ । पूङ् पवने
 IX. उ.

३५ यु मिश्रणेऽमिश्रणे च. II. प. युञ् बन्धने IX. उ. यु जुगुप्सायाम् X. आ.
 आकुस्मीयः ।

३६ रुङ् गतिरेषणयोः I. आ. रेणं हिंसा । रु शब्दे II. प. अरावीत्-लुङि सिचि
 वृद्धौ 'इट ईटि' इति सिज्जलोपे च रूपम् । 'श्रु गतौ, श्रुन् गतौ श्रुतौ' क. ६९.
 श्रु श्रुतौ श्रवति' भवादौ प्र. अत्र श्रुताविति चिन्त्यम् । श्रु श्रवणे I. प.
 'श्रु वः श्रु च' (३-१-७४) शन्विषये श्रु इत्यादेशः श्नुश्च ।

षोः सोरप्यसवद् गतौ पुनरनुज्ञैश्वर्यं उत्पादने,

षुञ् सुञ् द्वौ गमने सवन्ति, षु अनुज्ञादिष्वसौत् स्नापने ।
षुञ् निष्पीडनमज्जने च सुनुते षूङ् गर्भमोक्षेऽस्य सू-
तेऽसूये प्रसवे च सूयत इति स्यात् प्रेरणे शे सुवेत् ॥३७॥

शपि गतिजीवनयोरप्यृच्छति गत्यामिर्यति हिंसायाम् ।
छन्दस्यृणोत्ययं श्नौ गत्यां प्वादेऽर्हणातीति ॥३८॥

कृञ् कृतौ शप्यकरद् वधेऽकृणोत्
कृतौ करोत्यप्यथ विक्षिपौ किरेत् ।

३७ 'षुञ् सुञ् गतौ । I. उ. सवति, सवते । सुषावेत्यादि सत्वे भेदः' । प्र. क. 'षु प्रसवैश्वर्ययोः I. प. सवति राजा । अनुजानाति ईश्वरो भवतीति वार्यः । गतौ चाह देवः ।' प्र. 'षु प्रसवैश्वर्ययोः II. प. प्रसवोऽनुज्ञा । 'या लीढा श्रवसापि सौति महतीमौत्सुक्यदुःखसिकाम्' इति प्रयोगादुत्पादनमपि प्रसवः । सौति राजा' । प्र. षुञ् अभिषवे V. उ. 'अभिषवः स्नपनपीडनस्नान-सुरासन्धानादिः' मा. 'निष्पीडनस्नपनसुरासन्धानस्नानादिः' प्र. षूङ् प्राणिगर्भ-विमोचने II. आ. षूङ् प्राणिप्रसवे IV. आ. 'अयमसूयार्थोऽपि । तेन देव-त्ताय सूयत इति 'ऋधद्रुह' इति चतुर्थी भवतीत्यात्रेयः' । मा. 'कृष्णाय सूयते चैद्यः' प्र. षू प्रेरणे VI. प.

३८ 'ऋ गतिप्रापणयोः I प. ऋच्छति व्रजं, मृच्छितं च' । प्र. मृच्छितमि-त्युदाहरणस्वारस्याज्जीवनार्थं इति भाति । ऋ गतौ III. प. 'ऋ वधे V, प. छान्दसः । ऋणोति' । प्र. क. 'ऋन् हिंसे' क. ६६. २ वैदिकः । ऋक्षि हिंसायामित्यत्र ऋ क्षि इति धातुद्वयपक्षे 'ऋणोति क्षिणोति इत्येके' क्षी. ऋ गतौ IX. प. प्वादिः ।

३९ कृञ् करणे I उ. करति करते' प्र. क. 'कृञ् कृतौ' क. ६६ कृञ् हिं-सायाम् V डुकृञ् करणे VIII. उ. कृ. विक्षेपे IV प.

वधे कृणाति श्न्यकृणत् कृणीत(तङ्?च)
ज्ञाने(करेत्?)कारयते तङ्गेव चौ ॥३९॥

गृपि सेचने गरति शे गरणे गिरतीति शब्दने श्न्यगृणात् ।
ज्ञानज्ञापनयोश्चौ तङ्गि गारयते गरेदितीह शपि ॥४०॥

घृ सेचनार्थे घरतीति शप्यथो
वेदेषु दीप्ती क्षरणे जिघर्त्यतः ।
दीप्त्यर्थतः स्वार्थिकणिच्यधारय-
च्चौ स्त्रावणे प्रस्रवणे च धारयेत् ॥४१॥

न्यक्करणे जरति वयोहानौ जीर्येन्मितः पितश्चैतत् ।
त्वादौ जृणाति यौजादिकाद् भवेज्जारयेज्जरति ॥४२॥

३९ कृ. हिसाशब् IX. प कृ. हिसायाम् X उ. प्वादिः । आद्यस्य 'पुनः पाठः कर्त्तव्यमिषाये
क्रियाफलेऽपि घृणातिवत् परस्मैपदार्थः ।' सा. 'कृ. विज्ञाने । कारयते' प्र. क.
आरभनेपदी । 'कृ. क ऊ विज्ञाने' क. ७२. दीर्घोक्तेणिज्ज्विकल्पः ।

४० गृ सेचने I. व. 'गृ. निगरणे VI. प. गृ. शब्दे IX. व. प्वादिः । 'गृ
विज्ञाने X. आ' सा. आकुस्मीयः । 'गृ. विज्ञाने । विज्ञापने च द्रुमे । गार-
यते, गरति शास्त्रार्थं गुहः शिष्यं च' । प्र. दीर्घोक्तेणिज्ज्विकल्पः । 'गृ. क् ऊ
विज्ञापे च' क. ७१.

४१ घृ सेचने I. प घृ. क्षरणदीप्त्योः III. व. छान्दसः । 'हिसाभासाभेभ्यः—
श्लो १२. इत्युक्तेः स्वार्थिकणिच् ।

४२ 'जृ. न्यक्करणे । जरति' प्र. क. 'जृ. न्यक्कारे' क. ६७. जृ. व. वयोहानौ
IV. प. 'जनोजृ. व. कन्धुरञ्जोऽमन्ताभ्र' (ग. सू) इति निश्चयम् । जृ. वयोहानौ
IX. प. त्वादः । जृ. वयोहानौ X. उ. आद्युपीयः ।

दृडादरे स्याद् द्वियते दृ. भवे मिदसौ दरेत् ।

विदारणे दीर्घंति श्यन्तदृष्ट्वात्वादिभिरिति ॥४३॥

धृङ् नाशने तङ् धरतेऽथ धारणे

धरेद्धरेतासन्धारणार्थयोः ।

ध्रियेत, चौ धारण एव धारये-

ज्यानी पुनः प्वादिबुषोऽधृणादिति ॥४४॥

शपि नृ गमनायामित्यनरत् प्वादितोऽनृणात् ।

शप्युक्तोऽसौ मिदन्त्यस्तु न मित् तेन द्विधैव णौ ॥४५॥

श्लौ पालनापूरणयोः पिपति

प्रीतौ पृणोतीत्यथ पृङ् प्रवृत्तौ ।

४३ दृङ् आदरे VI. आ. दृ. भये I. प. घटादिः । 'दृ. विदारणे । उदात्त-
परस्मैप्राथः । दीर्घंति' प्र. क. 'दृ. य गि । विदार' क. ७२. 'घिः' प्वादि-
रप्यपुः । स ह्वादिः' इति हुमपरिभाषा ।

४४ धृङ् अवस्थाने आ. 'धृताव' मिति धातुकाव्ये । 'उवस्तमीड'बिति तद्-
व्यञ्ज्या (२-३६) । धृङ् धारणे I. उ. धृङ् अवस्थाने VI. आ. 'धारणे च
दुधे' प्र. क. 'धृशङ् स्थितौ । धृङ् च धृत्यां' क. ६७. ६८. इति शे
स्थितिमात्रार्थो मुद्रिते । 'रिङ्शयगिङ्ङु' (७-४-२८) इति रिङ्गदेशः ।
इयङ् । 'धृ धारणे X. उ. धारयति' प्र. क. 'धृक् च' (धृत्यां) क. ६८.
धृ. बयोहानौ IX. प. प्वादिलंबादिभ्यः । ज्यानिर्व्योहानिः ।

४५ नृ. नये I. प. घटादिः । 'नृ. नये । नरति व्रजं पशुम् । जयं रिन च' । प्र.
नृ. नये IX. प. प्वादिलंबादिभ्यः । मितः नरवति अन्वत्स नारयति ।

४६ पृ. पालनपूरणयोः III. प. 'ह्रस्वान्त इत्येके' प्र. पृ. प्रीतौ V. प. पृङ् अव-
स्थाने VI. आ. 'अ च प्रकृतिप्राप्तम् । प्रावेत्त व्याकृष्योऽयम्' । प्र. पृ.
पूरणे X. उ. 'दीर्घोऽस्तिप्राप्तः पक्षिर्लोडमिष्येव व्यादिति निष्कृतिप्राप्तः' प्र. । हास्यां

प्रियेत, चौ पारयते परेद् द्वा-

भ्यां पूरणे, पूर्यवने पिपूर्यात् ॥४६॥

भृज् पूरणे च भरणे भरते भरेद् द्वौ

भृज् पोषणे च भरणे बिभृते बिभर्ति ।

भृ भर्त्सने च भरणे शिन् भृणात्यथो शे

मृत्यां म्रियेत तङ्गि मृ हनने मृणाति ॥४७॥

स्वीकारच्छदने वृणोति वृणुते, स्वीकारसंसेवने

श्नायां तङ्गयवृणीत, वृज् वरण इत्यस्माद् वृणीतेऽवृणात् ।

प्रोक्तादावरणे वरेत वरति द्वौ वारयेतापि यौ

वृवृज्रोर्वरणेऽवृणादिति त्रितः स्यातां वृणीतेऽवृणात् ॥४८॥

जिञ्जिष्म्याम् । पिपूर्यादिति पृष्ठातोः श्लुषिकरणस्य विधौ लिङ् । 'त्रिपृ-
गि-सि तु कालने । पृक् च पूर्तो' क. ७३. 'आत्मने तङ्गयामिति द्रुमपरि-
भाषा । ९.

४७ भृज् भरणे I. उ. 'अयं पूरणे षिविति भट्टिः ।' प्र. इभृज् धारणपोषणयोः
III. उ. भृ भर्त्सने IX. प. 'भरणे इत्येके' । प्र. 'भरणेऽप्येके' मा. मृङ्
प्राणत्यागे VI. आ. मृ हिंसायाम् IX. प. प्वादित्वादिश्च ।

४८ वृज् वरणे V. उ. 'स्वीकारः छादनं वा तत् ।' प्र. वृङ् संभक्ती IX. आ.
वृणीते ऋत्विजं, स्वीकरोतीत्यर्थः । सेवायां-वृणीते हरिम् । प्र. 'वृज् वरणे
IX. उ. उदात्त उभयतोभाषः । वृणाति वृणीते' प्र. क. 'वृ गिज् वृत्याम्'
क. ७४. इति वीर्धन्तो मुद्रिते । वृज् आवरणे X. उ. आघृषीयः । आव-
रणेऽर्थे प्रोक्तादित्यर्थः । वृ वरणे JX. प. वृज् वरणे IX. उ.

सृ गतौ सरति सिसर्ति तु वेदेष्वथ चावसारयेद् वरणे ।
स्तृञ् छादने स्तृणोति स्तृञ्ः प्वादौ स्तृणातीति ॥४९॥

प्रीत्युतिजूतिषु झनौ स्तृणुयाल्वादौ, वधे स्तृणा, त्याद्येषु ।
स्मृणुयाद्, विस्मरणस्मरणादौ स्मरत्ययं मिदाध्यानार्थे ॥५०॥

स्वीकृतिनाशनगमनाचौर्येषु हृञो हरेद्धरेतापि ।

श्रुतिषु प्रसह्य हरणे जिहृत्यञन्ताः क्रमादमी याताः ॥५१॥

४९ सृ गतौ I. प. सृ गतौ III. प. छान्दसः । 'सृ वरणे X. उ. सारयति' प्र. क
'स्तृ-न-ञ् स्तृतौ 'सृ क् च' क. ७०. चौरादिकस्य सृधातोः स्मृत्यर्थ एव
मुद्रिते द्रुमे । सृ आवरण इति पूर्वे पेटुः ।' क्षी. स्तृञ् आच्छादने V. उ.
स्तृञ् आच्छादने IX. प्वादिल्वादिश्च ।

५० स्मृः प्रीतिपालनयोः V. प. 'प्रीतिबलनयोरित्येके । बलनं जीवनमिति स्वामी ।'
प्र. ऊती रक्षणं जूतिर्बलनम् । 'प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । चलनं जीवनमिति
स्वामी' मा. 'स्मृ-स्मृ-न् प्रीतिरक्षाप्राणने' क. ७०. स्मृ हिंसायाम् IX. प. प्वादि
ल्वादिश्च । आद्येषु प्रीत्यादिषु त्रिषु । स्मृ प्रीतिपालनयोः V. प. बलनम-
त्रापि पूर्ववद् योज्यम् । स्मृ चिन्तायाम् I. प. 'स्मरति कृष्णम् । अयं
विस्मरणे चित्तादपक्रमणेऽपि । विस्मरति पठितम् । न स्मरति हरिभक्तस्य
चित्तान्नापगच्छतीत्यर्थः' , स्मृ अध्याने I. प. 'स्मृ चिन्तायामित्यस्याध्याने
मित्त्वार्थोऽयमनुवादः' । (घटादौ) मा. आध्याने- स्मरयति, अन्यत्र स्मा-
रयति ।

५१ हृञ् हरणे I. उ. 'हरणं प्रापणं स्वीकारः स्तेयं नाशनं च.' मा. हृ प्रसह्य
करणे III प. छान्दसः ।

अङ्केऽङ्कयतेऽङ्कति चावङ्कयतेऽङ्कापयेत् कथादौ स्तः ।

शपि गमने व्याङ्कत तङ्ग कुटिलगती स्यादकेद् घटादिगतात् ॥५२॥

चापल्यगर्वयोः शप्यककत गत्यामकङ्कतेदित्वात् ।

तृप्तिप्रतिहत्योः शप्यचकत चकति द्वयं विकल्पमितोः ॥५३॥

हासे तकत्यथातङ्के तङ्कति, श्वरवे पुनः ।

बुक्कतीति शपीमे'स्युर्बुक्कयेद् बुक्कयेत चो ॥५४॥

लोकृ दर्शन इत्येष तङ्गवान् लोकेत शप्यसौ ।

लोकृ उक्तौ दीपनायां लोकेल्लोकयेत चो ॥५५॥

कौटिल्ये वङ्कते गत्यां वङ्कते वस्कते शपि ।

वष्क दर्शन इत्यस्य पुकि वष्कापयेत चो ॥५६॥

५२. अकि लक्षणं X. उ. ली. 'अङ्क परे लक्षणे च' X. उ. मा. कथादिः ।
 'अङ्कादिगतिस्कायो नो पुग्लुग्वत्त्वम्' इति शाकटायनते पुक् । 'अकि लक्षणं'
 I. आ. गती च द्वे । अङ्कते पटं वजं च । अयं कथादौ च । अङ्क कुटिलायां गताविति
 घटादौ । प्र. अङ्क कुटिलायां गती I. प.

५३. कक लौल्यः I. आ. 'लौल्यं गर्वभाषणं च' मा. ककि गती आ. II. चक तृप्ती I. आ.
 प्रतिघाते चेति मैत्रेयादयः' मा. चक तृप्ती I. प. घटदिः । 'चक अङ्ग मि' क. द १

५४. तङ्ग हसने I. प. तङ्ग कुच्छजीवने I. प. बुक्क भाषणे I. प. 'भाषणमिह श्वरवः'
 मा. बुक्क भाषणे X उ.

५५. लोकृ दर्शने I. आ. लोकृ भाषा(सा)र्थः X. उ.

५६. वकि कौटिल्ये I. आ. वकि गत्यर्थः I. आ. वस्क गती I. आ. वष्क दर्शने X.
 उ. कथादिः ।

शङ्काभीत्योरशङ्किष्ठ क्षान्ती शक्यति शक्यते ।
अचिच्छोऽय शकिश् शक्तो शक्नोत्येष तु वेडिरित् ॥५७॥

शीकृ सेचनगत्योः शक्येष तद्ध्रस्वशीकृत ।
यो शीकृ मर्षणे शीकृत्यशीकृत्यत शीकृत्येत् ॥५८॥

गतौ षसाद्योस्तङ्गि सेकहो ष्टकि-
स्तक्षोः प्रतीक्षातद्विधौ स्तक्षेन्विधोः ।
तद्ध्र सेचनेऽसीकृत सादितः शपि
क्षान्तौ भवेत् सीकति सीकयित यौ ॥५९॥

गत्यामेखेदिह्वेदोखेदुह्वेत्, प्रशोषपर्याप्त्योः ।
ओखत्यथो कख कखे हासि काखसि द्वौह्वेदिहातयोः मिह्व ॥६०॥

५७. 'शकि शङ्कायाम् I. आ. त्रासे च द्वुमे' प्र. 'शकि ऊ त्रासशङ्कयोः' क. ५६.
शक विभाषितो मर्षणे IV. उ. 'विभाषित इति उभयपदिनां पूर्वाचार्यसंज्ञा' । प्र.
शक्लु शक्तौ V. प. अनिट् । 'शक्नोति कर्तुम् । अस्य तुमुनन्तधातुकर्मणा सकर्मक-
त्वात् कर्मणि लादयः स्मुः । शक्यते कर्तुं घटः । अस्य शक्नोति कर्तुम् । शक्नोति-
कल्पश्चास्तीति द्वुमे ।' प्र. 'शक् निरु शक्तौ' क. ५६. नः स्वादिह्वेत् इति कर्त्तव्यं
ऊर्वेटकत्वं च बोधयति । इरिस्वफलं च 'इरित्तो वा' (३-१-५७) इति श्लोकादि-
कल्पः ।

५८. शीकृ सेचने I. आ. सेकृ सेकृत्ववि शीकृति शीकृति शीकृति शीकृति शीकृति
शीकृ इत्यन्ये सेकृ इत्यन्ये प्र. एवं शीकृ, मर्षणे आध्यात्मिकता । शीकृ शीकृते
X. उ. आध्यात्मिकता ।

५९. सेकृ गतौ I. आ. 'सेकृ इत्यन्ये —' मा. ष्टक प्रतिघादे I. प. 'अल्लु इत्या-
विरपि क्वचित्पठ्यते' मा. ष्टादिः । शीकृ सेचने I. आ. 'सीकृ कर्षणे
दत्त्यादिः । सीकयति, सीकयते, सीकयति क. ष. 'सीकृ कर्षणे' क. ५९.

६०. शक गतौ I. प. इति गतौ I. प. उच गतौ I. प. उचि गतौ I. प. ओष-प्रशोष-
पर्याप्त्योः I. प. कख हसने I. प. कखे हसने I. प. ष्टादिः ।

णख णखि नख गत्यर्थाः कन्धान्खेभ्यस्त्विति प्रमखतीति ।
 गत्यां त्रखति त्रखति त्रखति मन्खतीति शपि सर्थे ॥६१॥
 पर्याप्तिशोषयो राखेत् गत्यां रखति रखति ।
 भाखयोर्लाखतीत्य (न्ते? न्त्ये) लेखेल्खेदेमी शपि ॥६२॥

गतावलिह्वच्छापि लेखने पुन-
 लिखेद् विलासे स्खलने च लेख्यति ।
 सुखानुभूतौ यकि सुख्यतीत्यम्
 कण्डवादिगौ चावसुखापयत् पुका ॥६३॥

गत्यां श्वाप्यङ्गलीति स्वात् कुटिलायां मतावमेत् ।
 असौ मिदङ्कयत्यर्थे चावङ्गापयते पुकि ॥६४॥

चौ संस्करणगमनयोर्मार्गयतेऽन्वेषणेऽत्र मार्गति च ।
 मार्गे, मृगेस्तडेव मृगापयते, मृग्यतीति कण्डवादेः ॥६५॥

६१. 'नख लिखि गती । प्रनखति लिखति ।' प्र. क. 'नख् सर्वणे' क. ९१.
 नख नखि गती । I. प. वख अखीत्यादी अत्र 'अत्र अन्धः त्रखिमपि पपाठ ।
 सम्मतायां तु त्रख त्रखि लिखि इति त्रयः पठ्यन्ते' मा. (I. प.) नख
 नखि-गत्यर्थाः I. प.
६२. राख् पर्याप्तिशोषणयोः I. प. रख रखि गती I. प. लाख् पर्याप्तिशोषणयोः I.
 प. लख लिखि गत्यर्थः । I. प.
६३. 'लिखि गती । लिखति' प्र. क. लिखि कृषि' क. ९१. लिख अन्ध-
 विन्यासे VI. प. 'लेखत स्वस्तने च । खाद् विलसति । कण्डवादिः । लेखायति ।
 अकारान्तोऽयमित्यन्ये । तत्रातो लोपे लेख्यति' प्र. 'सुख दुःख तदनुभवे' प्र. ।
 कण्डवादिः । सुख तरिक्रयायाम् X. उ. कषादिः ।
६४. अगि गती I. प. अग कुटिलायां गती I. प. अङ्ग पदे लक्षणे च X. उ.
 कषादिः ।
६५. त्रख मार्गसंस्कारगत्योः । X. उ. 'अत्र धनपालः—'मार्गे च इति पठति' । मा. वख
 खार्ज संस्कारगत्योः वख इत्येके प्र. मार्ग अन्वेषणे X. उ. आधृवीधः । मृग अन्वेषणे
 X. मा. अवन्तः कषादिरागर्थाः । 'मृग अन्वेषणे इति कण्डवादिपाठात् मृग्यतीति
 शेष' मिति माधवः' प्र.

गमने रङ्गतीति स्याच्छङ्कायामरगन्मिः ।
आस्वादने रागयते चावन्नाद्याबुधौ शपि ॥६६॥

सङ्गे लगेन्मिद् गमने तु लङ्गे-
दास्वादने लागयतीति चौ स्यात् ।
गत्यामलिङ्गच्छपि तद्वदाद्यौ
चित्रीकृतौ लिङ्गति लिङ्गयेच्चौ ॥६७॥

तिरोभावे शपि षगे सगे तद्वत् षगे स्थगे ।
षः सत्वे सगति द्वाभ्यां स्थगेद् द्वाभ्यां मितोऽखिलाः ॥६८॥

गत्यां गत्यारम्भे गतिनिन्दायां जवे च निन्दायाम् ।
आरम्भेऽप्यङ्केत तङ्घकरणेऽघापयेत् क्रमाच्छपि चौ ॥६९॥

त्यागेऽर्हिंसायां च दङ्घेदयं श-
प्यन्त्यौ? चाथ आश्वध्वोरदघ्नोत् ।

६६. रगि गतौ I. प. रगे शङ्कायाम् I. प. घटादिः । रग आस्वादने X. उ.

६७ लगे सङ्गे I. प. घटादिः । लगि गतौ I. प. लग आस्वादने X. उ. लिगि गतौ I. प. तद्वत् शपि । लिगि चित्रीकरणे X. उ. इतिस्वाण्णिविकल्पः ।

६८. षगे संवरणे I. प. 'तच्चत्र तिरोधानमेव' प्र. 'सगे स्थगे संवरणे' प्र. क. 'सग स्थम् मे संवृती' क. १५. षगे संवरणे I. प. सर्व एते घटादयः ।

६९. अघि गत्याक्षेपे I. आ. आक्षेपो निन्दा । 'गतौ गमनारम्भे च इति स्वामी' ना. निन्दारम्भजेषु च द्रुमे' प्र. 'अघि ङ गते निन्दारम्भजेष्वथ' क. १६. 'अघ तत्कृतौ इति द्रुमकथादौ' प्र. 'अघ त्क तत्कृतौ' क १५.

व्याजे याच्त्रायां च गत्यादिषट्के
तङ्ग (द?म) क्लृप्तालङ्कृतौ मङ्गतीति ॥७०॥

गत्या रङ्गते सामर्थ्ये राघते शपि, द्वीपदे ।

उक्ती च रङ्गयेद् रङ्गदास्वादे राघयेत चौ ॥७१॥

शोषे ललङ्घ शपि भुक्तिनिवृत्तिगत्यो-

लङ्घेत लाघत इतीह समर्थतायाम् ।

आस्वादने भवति लाघयतीति (भाषा-

दीप्त्यो) रलङ्घयत लङ्घयति लङ्घयेच्चौ ॥७२॥

शप्यर्चयामचति, गमनेऽप्यञ्चति, म्लिष्टवाक्ये

गत्यामञ्चेद्, गमनवचनादञ्चतेऽञ्चेन्नुमीमे ।

याच्त्रागत्योरचति तङ्चेताञ्चतेऽञ्चेदथ स्या-

च्चौ व्यावर्त...विधिगतादञ्चयत्यञ्चतीति ॥७३॥

७०. 'दधि पालने I. प. त्यागे च द्रुमे' प्र. दध घातने पालने च V. प. 'मधि कैतवे च I. आ. याचने द्रुमे' प्र. 'मधि भूषे' क. ९८. कैतवे चेति चकारेण अघे-
रुक्ता गत्यादयः षडर्थी अपि बोध्याः । मधि मण्डने I. प.

७१. रधि गतौ I. आ. राघृ सामर्थ्ये I. आ. रधि भाषा(सा)र्थः X. उ. इदित्वाद्वा
णिच् । 'रक लग आस्वादने' X. उ. इत्यत्र माधवः- 'रध लघ इत्येके' इति ।

७२. 'लधि शोषे' क. ९८, I. प. लधि गतौ I. आ. 'लधि भोजननिवृत्तौ च इत्येके' प्र.
साघृ सामर्थ्ये I. आ. लघ आस्वादने X. उ. लधि भाषा(सा)र्थः X. उ.

७३. 'अचं पूजायाम् I. प. अच इत्येके' प्र. मा. अञ्च गतिपूजनयोः I. प. 'अचि गतिम्लेच्छनयोः I. प.' प्र. क. 'अञ्च तु । म्लिष्टोक्तौ च' क. १००. 'अञ्च गतौ याचने च I. उ. (हिक्कादौ) अचु इत्येके । अचि गतौ इत्यन्ये' प्र. अञ्च विशेषे-
षणे X. उ. 'व्यवर्तनं तत्' प्र.

अर्चने शप्यर्चन्ति यावर्चतेऽर्चयतेऽर्चन्ति ।

ऋच स्तुतावृचत्यस्मात्प्राच्यर्चयतेऽपदम् ॥६४॥

बन्धने कचते दीप्तावपि कञ्चते काचति ।

शब्दे कचति श्रध्येति मध्यधोः स्वार्थणिच् भवेत् ॥६५॥

तारध्वनौ कोचति यानजैर्हृम्ययो-

ररालगत्यल्पतयोश्च कोचति ।

विलेख्ये रोधनजैर्हृम्यमिश्रणे

कोचन्ति सङ्कोचनवाचिनः कुचेत् ॥६६॥

क्षिन् शुद्धिभूत्योर्जनने नितान्तो-

त्पत्तौ च खञ्जात्यथ बन्धने चौ ।

७४. अर्चं पूजायाम् I प. अर्चं पूजायाम् X. उ. आधृषीयः । ऋच स्तुतौ VI. प.

७५. कच बन्धने I. आ. कचि काचि दीप्तिबन्धनयोः I. आ. 'कच बन्धने I. आ. दीप्ता च द्वमे' प्र. 'कच् ड बन्धत्वयोः' क. १०२. कच बन्धने इत्यत्र 'कच शब्दे उदातेत्' क्षी. मध्यधोः कचिकाच्योः- भासार्थत्वात् स्वार्थे णिच् ।

७६. कुच शब्दे तारे I प. 'गतावित्येके' प्र. कुच सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठम्भवि-
खनेयु' I. प. ज्वलादिः । 'कुचज् रोधपर्ककौटिल्यलेखने । कुच् तौल्यशब्दे- कुचाणि
सङ्कोचे' क. १०१. कुच संकोचने VI. प.

७७. खच भूतग्रादुभवि IX. प. 'स च नितान्तोत्पत्तिः । - भूतिशुद्धयोस्तत्ताविति द्वमे'
प्र. 'खच ग् भूतिपूत्योस्तत्तौ' क. १०२ 'खच बन्धने । 'खचयति' ऋ. क. (अक्षतः)

खचापयेन्चौर्यविधौ क्वप्ति स्याद्

गोचेद् गतौ ग्लुञ्चति नोपघोऽस्तौ ॥७५॥

शपि तर्जनपरिभाषणवधेषु चर्चेद् वधेतारार्थयुगे ।

शे चर्चत्यध्ययने चर्चयते चर्चयेदिति चौ ॥७६॥

गतौ तञ्चति सङ्कोचने तनक्त्यादिमः शपि ।

आद्ये त्वञ्चति शप्येव शे स्यात् संवरणे त्वचैत् ॥७७॥

व्यक्तीकृतौ शप्ञ्चत् कञ्चेत्

पञ्चेत् पाके पचते पचेद् द्वौ ।

सेण्मध्यमो विस्तरणे च विस्ता-

रोक्तौ च चौ षञ्चति षञ्चयेत् ॥८०॥

सम्पर्चने लुकि स्यास्तां पृक्ते पृङ्क्ते, रुक्ताङ्गिभुः ।

पृणक्ति यौ संयमने पर्चेत् पर्चयतीत्यपि ॥८१॥

‘ञ्चत् त्र क बन्धने’ क. २०. युच् स्तेयकरणे I प. ग्लुञ्च गतौ I प. ‘नकारजाव-
नुस्वारपञ्चमी शलि धातुषु’ इति बोध्यम् ।

७८ चर्च परिभाषणहिंसातर्जनेषु I. प. चर्च परिभाषणसन्तर्जनयोः VI. ऋ. चर्च अध्य-
यने X. उ.

७९. सञ्च गतौ I. प. तञ्च सङ्कोचने VII. म. त्वञ्च गत्यर्थः I. व. त्वञ्च संवरणे च. प.

८० पचि व्यक्तीकरणे I. आ. पचेति दुर्गः’ मा. ‘पचति व्यक्तीकरोतीत्यतश्चपि
‘स्यादोक्तम्’ प्र. उञ्चत् पाके I. उ. पचि विस्तारश्चने X उ. ‘विस्तारश्चने
च हुमे’ प्र. ‘पचिक् ततौ’ क १०४.

८१. लुकि सम्पर्चने II. ऋ. ‘रुचिक्त्ति दुर्गकाश्चपञ्चमालादयः’ म. पृङ्गी सम्पर्च-
ने III. ऋ. पृङ्गे पृङ्गञ्चने X. उ. आधुनीतः ।

शाठ्यकत्थनदम्भेषु मचते मञ्चते, गती ।

मञ्चेद्, धृत्युच्छ्रायार्चासु मचते मञ्चते शपि ॥८२॥

गती मुञ्चति, शाठ्यादी मोचते मञ्चते शपि ।

मोक्षे मुञ्चेत् मुञ्चेत्, प्रमोचने मोचयेत् चो ॥८३॥

विरेचने शनम्यरिणक् च रिङ्कते

यो मिश्रणामिश्रणयोररेचत् ।

अरेचयल्लोकिवदत्त लोचे-

अ लोचते शप्यथ लोचयेच्चौ ॥८४॥

कौटिल्यगत्योरपि च प्रलम्भने

वञ्चेद् वचौ वक्त्यथ, तङ् प्रलम्भने ।

चौ वञ्चयन्ते, परिभाषणे च स-

सन्देशे च यौ वाचयते वचेदिति ॥८५॥

८२. मच कल्कने I. आ. 'कल्कनं दम्भः शाठ्यं कत्थनं वा' प्र. 'मचि कल्कने मञ्चते' प्र. क. नायं मुद्रिते दुमे । तत्र-'मच् ड च कल्कने' (क. १०५) इति । 'मञ्चु गती I. प.' प्र. क. मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु I. आ. मचते इत्यस्या-करश्चिक्त्वः ।

८३. 'मुञ्चु गती' प्र. क. 'गत्यां, मुञ्च स्तुञ्च, मञ्च मुञ्चु च' । क. १०६-'मच मुचि कल्कने । मुञ्चेति चन्द्रः भा. 'मचि कल्कने' I. आ प्र. क. मुञ्चु मोक्षने VI. उ. मुच प्रमोचने X. उ.

८४. रिचिर् विरेचने VII उ. रिच विरेचनसम्पर्वनयोः X. उ. आधुकीमः । लोच दर्शने I. आ. लोच भाषायाम् X. उ.

८५. 'वञ्चु, वञ्चु गत्यर्थाः । वञ्चति । अयं कौटिल्येऽपि । वञ्चति सता । प्रलम्भनेऽपीति शङ्करः । वञ्चति वटुम् ।' प्र. वञ्च, प्रलम्भने X. भा. आङ्-

प्रौद्योगिकी विभाग वेबसाइट लिखित ग्रन्थ प्रसाधन कार्यालय प्रकाशित

अनन्तरीयन संस्कृत ग्रन्थावलि:—ग्रन्थाङ्कः—२४४

सर्वप्रसाधकः— डाक्टर के० राघवन् पिळ्ळ

उडुजातकोदयः



प्रसाधिका

के. विश्वेश्वरि अम्म एम्. ए०

१९७७/१९५९

मूल्यम्— रु० ३/-

अनन्तरीयने विज्ञानप्रबन्धसुप्रकाशने मुद्रितः

सृ गतौ सरति सिसर्ति तु वेदेष्वथ चावसारयेद् वरणे ।
स्तृञ् छादने स्तृणोति स्तृञ्ः प्वादौ स्तृणातीति ॥४९॥

प्रीत्युतिजूतिषु ऋनौ स्तृणुयाल्ल्वादौ, वधे स्तृणा, त्याद्येषु ।
स्मृणुयाद्, विस्मरणस्मरणादौ स्मरत्ययं मिदाध्यानार्थं ॥५०॥

स्वीकृतिनाशनगमनाचौर्येषु हृञो हरेद्धरेतापि ।
श्रुतिषु प्रसह्य हरणे जिहृत्यञन्ताः क्रमादमी याताः ॥५१॥

४९ सृ गतौ I. प. सृ गतौ III. प. छान्दसः । 'सृ वरणे X. उ. सारयति' प्र. क
'स्तृ-न-ञ् स्तृतौ 'सृ क् च' क. ७०. चौरादिकस्य सृघातोः स्मृत्यर्थ एव
मुद्रिते द्रुमे । सृ आवरण इति पूर्वे पेठुः ।' क्षी. स्तृञ् आच्छादने V. उ.
स्तृञ् आच्छादने IX. प्वादिल्वादिश्च ।

५० स्मृ प्रीतिपालनयोः V. प. 'प्रीतिबलनयोरित्येके । बलनं जीवनमिति स्वामी ।'
प्र. ऊती रक्षणं जूतिर्बलनम् । 'प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । चलनं जीवनमिति
स्वामी' मा. 'स्मृ-स्पृ-न् प्रीतिरक्षाप्राणने' क. ७०. स्मृ हिंसायाम् IX. प. प्वादि
ल्लादिश्च । आद्येषु प्रीत्यादिषु त्रिषु । स्मृ प्रीतिपालनयोः V. प. बलनम-
त्रापि पूर्ववद् योज्यम् । स्मृ चिन्तायाम् I, प. 'स्मरति कृष्णम् । अयं
विस्मरणे चित्तादपक्रमणेऽपि । विस्मरति पठितम् । न स्मरति हरिर्भक्तस्य
चित्तान्नापगच्छतीत्यर्थः' , स्मृ अध्याने I. प. 'स्मृ चिन्तायामित्यस्याध्याने
मित्त्वार्थोऽयमनुवादः' । (घटादौ) मा. आध्याने- स्मरयति, अन्यत्र स्मा-
रयति ।

५१ हृञ् हरणे I. उ. 'हरणं प्रापणं स्वीकारः स्तेयं नाशनं च.' मा. हृ प्रसह्य
करणे III प. छान्दसः ।

अङ्केऽङ्कयतेऽङ्कति चावङ्कयतेऽङ्कापयेत् कथादी स्तः ।

शपि गमने व्याङ्कत तङ्ग कुटिलगतौ स्यादकेद् घटादिगतात् ॥५२॥

चापत्यगर्वयोः शप्यककत गत्यामकङ्कतेदिस्त्वात् ।

तृप्तिप्रतिहत्योः शप्यचकत चकति द्वयं विकल्पमितोः ॥५३॥

हासे तकत्यथातङ्के तङ्कति, श्रवणे पुनः ।

बुक्कतीति शपीमे'स्युर्बुक्कयेद् बुक्कयेत चो ॥५४॥

लोक दर्शन इत्येष तङ्गवान् लोकेत शप्यसौ ।

लोक उक्ता दीपनायां लोकेल्लोकयेत चो ॥५५॥

कौटिल्ये वङ्कते गत्यां वङ्कते वस्कते शपि ।

वष्क दर्शन इत्यस्य पुकि वष्कापयेत चो ॥५६॥

५२. अकि लक्षणं X. उ. ली. 'अङ्क पदे लक्षणे च' X. उ. मा. कथादिः ।
 'कथादिगतिस्फायो जी पुग्लुग्वत्त्वम्' इति शाकटायनते पुक् । 'अकि लक्षणे'
 I. आ. गतौ च वृमे । अङ्कते पदं व्रजं च । अयं कथादी च । अक कुटिलायां गताविति
 घटादी । प्र. अक कुटिलायां गतौ I. प.

५३. कक लौली I. आ. 'लौलीयं गर्वभापत्यं च' मा. ककि गतौ आ. II. चक तृप्ती I. आ.
 प्रतिघाते चेति मैत्रेयावयः' मा. चक तृप्ती I. प. घटमदिः । 'चक अङ्ग मि' क. ८१

५४. तक हसने I. प. तकि कुच्छजीवने I. प. बुक्क भाषणे I. प. 'भाषणमिह श्रवः'
 मा. बुक्क भाषणे X उ.

५५. लोक दर्शने I. आ. लोक भाषा(सा)यः X. उ.

५६. वकि कौटिल्ये I. आ. वकि गत्यर्थः I. आ. वस्क गतौ I. आ. वष्क दर्शने X.
 उ. कथादिः ।

शङ्काभीत्योरशङ्कित् क्षाप्ती शक्नोति शक्नोति ।
अचिदोऽयं शक्ति शक्नोति शक्नोत्येष तु वेदिरित् ॥५७॥

शीकृ सेचनगत्योः शक्नोति तद्वत्तानशीकृत् ।
यो शीकृ मर्षणे शीकृत्यशीकृत्यत शीकृत्येत् ॥५८॥

गती षसाद्योस्तङ्गि सेकृते ष्टवि-
स्तङ्गोः प्रतीमातविद्योस्तङ्गेऽन्विद्योः ।
तङ्ग सेचनेऽसीकृत सादितः शपि
क्षान्तो भवेत् सीकृति सीकृत्यत यो ॥५९॥

गत्यामेखेदिह्वेदोखेदुल्लेत्, प्रशोषपर्याप्त्योः ।
ओखत्यथो कख कखे हासि कखसि द्वयोःप्राप्तयोः मिह् ॥६०॥

५७. 'शकि शङ्कायाम् I. आ. वासे च द्वुमे' प्र. 'शकि ङ् लासशङ्कयोः' क. ८६.
शक विभाषितो मर्षणे IV. उ. 'विभाषित इति उभयपदिनां पूर्वाचार्यसंज्ञा' प्र.
शक्लृ शक्ती V. प. अनिट् । 'शक्नोति कर्तुम् । अस्य तुमुनन्तधातुकर्मणा सकर्मक-
त्वात् कर्मणि लादयः स्मुः । शक्यते कर्तुं घटः । अस्य शकेरङ्गविकल्पः शङ्क-
कल्पश्चास्तीति द्वुमे ।' प्र. 'शक् निरु शक्ती' क. ८६. नः स्वार्थित्यं इति कल्पेनाङ्
ऊर्ध्वकृत्यं च बोधयति । इरित्त्वफलं च 'इरितो वा' (३-१-५७) इति श्लेषवि-
कल्पः ।

५८. शीकृ सेचने I. आ. सेकृ सेकृः सकि शक्नोति शक्नोति शक्नोति शक्नोति
शीकृ इत्यन्ये सेकृ इत्यन्ये' प्र. एवं शीकृ, मर्षणे अपत्येऽन्विद्योः शीकृ मर्षणे
X. उ. आधुषीयः ।

५९. सेकृ गती I. आ. 'सेकृ इत्यन्ये —' मा. ष्टक प्रतिघादे I. प. 'शक्नोति शक्नोति-
विरपि नचचित्पठयते' मा. घटादिः । शीकृ सेचने I. आ. 'शीकृ मर्षणे
दन्त्यादिः । शीकृत्यति, शीकृत्यते, शीकृत्यते क. ख. शीकृ मर्षणे क. ८६.

६०. शक्नोति गती I. प. इति गती I. प. उच गती I. प. उचि गती I. प. ओचु-प्रतोऽन्वि-
पर्याप्त्योः I. प. कख हसने I. प. कखे हसने I. प. घटादिः ।

णख णखि नख गत्यर्थाः कर्मान्त्वखेत्तुस्ति प्रणखतीति ।
 गत्यां त्रखति त्रखति त्रखति मन्त्रतीति शर्षि सर्षे ॥६१॥
 पर्याप्तिशोषयो राखेत् गत्यां रखति रखति ।
 भाद्ययोर्लाखतीत्य (न्ते? न्त्ये) लेखेत्लखेदमी शर्षि ॥६२॥

गतावलिङ्गच्छपि लेखने पुन—
 लिखेद् विलासे स्वलने च लेख्यति ।
 सुखानुभूतौ यकि सुखतीत्यभू
 कण्डवादिगौ चावसुखापयत् पुका ॥६३॥

गत्यां क्षप्पङ्गलेति स्वात् कुटिलायां भंतावमेत् ।
 असी मिदङ्कयत्यर्थे चावङ्गापयते पुकि ॥६४॥

चौ संस्करणगमनयोर्मार्गयतेऽन्वेषणेऽत्र मार्गति च ।
 मार्ग, मृगेस्तडेव मृगापयते, मृग्यतीति कण्डवादेः ॥६५॥

६१. 'नख लिखि गती । प्रनखति लिङ्गति ।' प्र. क. 'मख् सर्षणे' क. ९१.
 नख नखि गती I. प. नख उखीत्यादी अत्र 'अत्र अन्त्रः त्रिभिर्मपि पपाठ ।
 सम्प्रतायां तु नख त्रिभिः शिखि इति त्रयः पठ्यन्ते' मा. (I. प.) नख
 नखि—गत्यर्थाः I. प.
६२. राख् पर्याप्तिशोषणयोः I. प. रख रखि गती I. प. लाख् पर्याप्तिशोषणयोः I.
 प. लख लिखि गत्यर्थः । I. प.
६३. 'लिखि गती । लिङ्गति' प्र. क. लिखि कृषि' क. ९१. लिख अक्षर-
 विन्यासे VI. प. 'लेखत स्वलने च । खेद् विलासे । कण्डवादिः । लेखायति ।
 अकारान्तोऽयमित्यन्ये । तत्रातो लोपे लेख्यति' प्र. 'सुख दुःख तदनुभवे' प्र. ।
 कण्डवादिः । सुख तत्क्रियायाम् X. उ. कवादिः ।
६४. अगि गती I. प. अग कुटिलायां गती I. प. अङ्ग पदे लक्षणे च X. उ.
 कयादिः ।
६५. नख मार्गसंस्कारगत्योः । X. उ. 'अत्र घनपालः—'मार्गे च इति पठति' । मा. नख
 मार्गं संस्कारगत्योः अत्र इत्येके प्र. मार्गं अन्वेषणे X. उ. आधृषीभः । मृग अन्वेषणे
 XX. मा. अदन्तः कर्कशिराजर्षीभः । 'मृग अन्वेषणे इति कण्डवादिपाठात् मृग्यतीति
 ज्ञेय' मिति माघवः' प्र.

गमने रङ्गतीति स्याच्छङ्कायामरगन्मिः ।
आस्वादने रागयते चावन्नाद्यावुभौ शपि ॥६६॥

सङ्गे लगेन्मिद् गमने तु लङ्गे-
दास्वादने लागयतीति चौ स्यात् ।
गत्यामलिङ्गच्छपि तद्वदाद्यौ
चित्रीकृतौ लिङ्गति लिङ्गयेच्चौ ॥६७॥

तिरोभावे शपि षगे सगे तद्वत् षठगे स्थगे ।
षः सत्वे सगति द्वाभ्यां स्थगेद् द्वाभ्यां मितोऽखिलाः ॥६८॥

गत्यां गत्यारम्भे गतिनिन्दायां जवे च निन्दायाम् ।
आरम्भेऽप्यङ्घेत तङ्घकरणेऽघापयेत् क्रमाच्छपि चौ ॥६९॥

त्यागेऽर्हि सायां च दङ्घेदयं श-
प्यन्त्यौ? चाथ आश्वध्वोरदघ्नोत् ।

६६. रगि गतौ I. प. रगे शङ्कायाम् I. प. घटादिः । रग आस्वादने X. उ.

६७ लगे सङ्गे I. प. घटादिः । लगि गतौ I. प. लग आस्वादने X. उ. लिगि गतौ I. प. तद्वत् शपि । लिगि चित्रीकरणे X. उ. इतिस्वाप्तिज्विकल्पः ।

६८. षगे संवरणे I. प. 'तच्चन्न तिरोधानमेव' प्र. 'सगे स्थगे संवरणे' प्र. क. 'सप स्थम् मे संवृती' क. १५. षठगे संवरणे I. प. सर्व एते घटादयः ।

६९. अघि पत्याक्षेपे I. आ. आक्षेपो निन्दा । 'गतौ गमनारम्भे च इति स्वामी' ना. निन्दारम्भजेषु च द्रुमे' प्र. 'अघि ऊ गते निन्दारम्भजेष्वथ' क. १६. 'अघ तत्कृतौ इति द्रुमकथादौ' प्र. 'अघ त्क तत्कृतौ' क १५.

व्याजे याच्त्रायां च गत्यादिषट्के
तङ् (द?म)ङ्क्षेतालङ्कृतौ मङ्क्षतीति ॥७०॥

गत्यां रङ्क्षेत सामर्थ्ये राघते क्षपि, द्वीपदे ।
उक्ती च रङ्क्षयेद् रङ्क्षेदास्वादे राघयेत चौ ॥७१॥

शोषे ललङ्क्ष शपि भुक्तिनिवृत्तिगत्यो—
लङ्क्षेत लाघत इतीह समर्थतायाम् ।
आस्वादाने भवति लाघयतीति (भाषा—
दीप्त्यो) रलङ्क्षयत लङ्क्षयति लङ्क्षयेच्चौ ॥७२॥

शप्यर्चयामचति, गमनेऽप्यञ्चति, म्लिष्टवाक्ये
गत्यामञ्चेद्, गमनवचनादञ्चतेऽञ्चेन्नुमीमे ।
याच्त्रागत्योरचति तङ्चेताञ्चतेऽञ्चेदथ स्या—
च्चौ व्यावर्त...विधिगतादञ्चयत्यञ्चतीति ॥७३॥

७०. 'दधि पालने I. प. त्यागे च द्रुमे' प्र. दध घातने पालने च V. प. 'मधि
कैतवे च I. आ. याचने द्रुमे' प्र. 'मधि भूषे' क. ९८. कैतवे चेति चकारेण अघे—
रक्ता गत्यादयः षडर्था अपि बोध्याः । मधि मण्डने I. प.

७१. रधि गतौ I. आ. राघृ सामर्थ्ये I. आ. रधि भाषा(सा)र्थः X. उ. इदित्वाद्वा
णिच् । 'रक लग आस्वादाने' X. उ. इत्यत्र माधवः— 'रध लघ इत्येके' इति ।

७२. 'लधि शोषे' क. ९८, I. प. लधि गतौ I. आ. 'लधि भोजननिवृत्तौ च इत्येके' प्र.
साघृ सामर्थ्ये I. आ. लघ आस्वादाने X. उ. लधि भाषा(सा)र्थः X. उ.

७३. 'अचं पूजायाम् I. प. अच इत्येके' प्र. मा. अञ्च गतिपूजनयोः I. प. 'अचि
गतिम्लेच्छनयोः I. प.' प्र. क. 'अञ्च तु । म्लिष्टोक्तौ च' क. १००. 'अञ्च गतौ
याचने च I. उ. (हिक्कादौ) अचु इत्येके । अचि गतौ इत्यन्ये' प्र. अञ्च विशेषे—
षणे X. उ. 'व्यवर्तनं तत्' प्र.

अर्चने शप्यर्चन्ति यावर्चन्तेऽर्चयतेऽर्चन्ति ।

ऋच स्तुतावृचत्यस्मात्पाष्वाघष्वाघर्चयतेऽपदम् ॥७४॥

बन्धने कचते दीप्तावर्षि कञ्चते काञ्चति ।

शब्दे कचति मध्येति मध्ययोः स्वार्थेणिच् अवेच् ॥७५॥

तारध्वनौ कोचति यानजैर्हृम्ययो-

ररालगत्यल्पतयोश्च कोचति ।

विलेखने रोधनजैर्हृम्यमिश्रणे

कोचन्ति सङ्कोचनवाचिनः कुचेत् ॥७६॥

क्षिन् शुद्धिभूत्योर्जनने नितान्तो-

त्पत्तौ च खञ्ज्रात्यथ बन्धने चो ।

७४. अर्च पूजायाम् I प. अर्च पूजायाम् X. उ. आघृषीयः । ऋच स्तुतो VI. प.

७५. कच बन्धने I. आ. कचि काचि दीप्तिबन्धनयोः I. आ. 'कच बन्धने I. आ. दीप्ता च द्वमे' प्र. 'कच् ड बन्धत्विषोः' क. १०२. कच बन्धने इत्यत्र 'कच शब्दे उदात्ते' क्षी. मध्ययोः कचिकाच्योः- भासांश्वात् स्वार्थे णिच् ।

७६. कुच शब्दे तारे I च. 'गतावित्येके' प्र. कुच सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठम्भविषे-
खनेषु I. प. ज्वलादिः । 'कुचञ् रोधपर्ककौटिल्यलेखने । कुच् तौल्यलेखने-कुचति
सङ्कोचे' क. १०१. कुच संकोचने VI. प.

७७. खच भूतश्रादुभवि IX. प. 'स च नितान्तोत्पत्तिः । - भूतिशुद्ध्योरुत्पत्ताविति द्वे'
प्र. 'खच ग् भूतिपूत्योरुत्पत्तौ' क. १०२ 'खच बन्धने । खचवति' क. क. (अक्षः)

खचापयेच्चौर्यविघ्नी क्वपि स्याद्

ग्रोचेद् गतौ ग्लुञ्चति नोपघोऽस्तौ ॥७५॥

शपि तर्जनपरिभाषणवधेषु चर्चेद् वधेततार्ययुगे ।

शे चर्चत्यध्ययने चर्चयते चर्चयेदिति चौ ॥७६॥

गतौ तञ्चति सङ्कोचने तनक्त्यादिमः शपि ।

आद्ये त्वञ्चति शप्येव शे स्यात् संवरणे त्वचैत् ॥७७॥

व्यक्तीकृतौ शपञ्चत् क्षत्रे

पञ्चेत पाके पचते पचेद् द्वौ ।

सेण्मध्यमो विस्तरणे च विस्ता-

रोक्तौ च चौ पञ्चति पञ्चयेत् ॥८०॥

सम्पर्चने लुकि स्यात्तां मृक्ते पृङ्क्ते, रुक्मादिभुः ।

पृणक्ति यौ संयमने पर्चेत् पर्चयतीत्यपि ॥८१॥

‘खच् त्र क बन्धने’ क. २०. मुचु स्तेयकरणे I. प. ग्लुञ्च गतौ I. प. ‘नकारज्ञाव-
नुस्वारपञ्चमी शलि धातुषु’ इति बोध्यम् ।

७८ चर्च परिभाषणहिंसातर्जनेषु I. प. चर्च परिभाषणसन्तर्जनयोः VI. प्र. चर्च अध्य-
यने X. उ.

७९ सङ्को गतौ I. प. तञ्च सङ्कोचने VII. म. त्वञ्च गत्यर्थः I. म. त्वञ्च संवरणे च I. प.

८० पचि व्यक्तीकरणे I. आ. पचेति दुर्गः’ मा. ‘पचति व्यक्तीकरोतीत्यतश्चपि
स्यादोस्तौ’ प्र. रुच्यत् पाके I. उ. पचि विस्तारवचने X. उ. ‘विस्तारवचने
च द्वौ’ प्र. ‘पचिक् ततौ’ क १०४.

८१ लुकि सम्पर्चने II. लुक् ‘लुकिस्ति दुर्गतास्पर्शप्रवासादयः’ क. पृङ्गी सम्पर्च-
ने III. म. पृङ्गे सम्पर्चने X. उ. आधुनीयः ।

शाठ्यकथनदम्भेषु मचते मञ्चते, गतौ ।

मञ्चेद्, धृत्युच्छ्रयाचासु मचते मञ्चतेऽपि ॥८२॥

गतौ मुञ्चति, शाठ्यादौ मोचते मञ्चतेऽपि ।

मोक्षे मुञ्चेत् मुञ्चेत्, प्रमोचने मोचयेत् चै ॥८३॥

विरेचने शनम्यरिणक् च रिङ्गते

यौ मिश्रणामिश्रणयोररेचत् ।

अरेचयल्लोकिवदत्त लोचे-

श्च लोचते शप्यथ लोचयेज्चौ ॥८४॥

कौटिल्यगत्योरपि च प्रलम्भने

वञ्चेद् वचौ वक्त्यथ, तङ्ग प्रलम्भने ।

चौ वञ्चयन्ते, परिभाषणे च स-

सन्देशे च यौ वाचयते वचेदिति ॥८५॥

८२. मच कल्कने I. आ. 'कल्कनं दम्भः शाठ्यं कथनं वा' प्र. 'मचि कल्कने मञ्चते' प्र. क. नायं मुद्रिते द्रुमे । तत्र-'मच् ड च कल्कने' (क. १०५) इति । 'मञ्चु गतौ I. प.' प्र. क. मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु I. आ. मचते इत्यस्या-करश्चित्त्वः ।

८३. 'मुञ्चु गतौ' प्र. क. 'गत्यां, मुञ्च म्लुच्, मञ्च मुञ्चु च' । क. १०६-'मच मुचि कल्कने । मुञ्चेति चन्द्रः मा. 'मचि कल्कने' I. आ प्र. क. मुञ्चु मोक्षने VI. उ. मुच प्रमोचने X. उ.

८४. रिचिर् विरेचने VII उ. रिच विरेचनसम्पर्चनयोः X. उ. आघृषीयः । लोच दर्शने I. आ. लोच भाषायाम् X. उ.

८५. 'वञ्चु, वञ्चु गत्यर्थाः । वञ्चति । अयं कौटिल्येऽपि । वञ्चति गता । प्रलम्भनेऽपीति शङ्करः । वञ्चति वटुम् ।' प्र. वञ्चु प्रलम्भने X. आ. आङ्कु-

श्रीरामप्रसादगवेषणहस्तलिखितग्रन्थप्रसाधनकार्यालयप्रकाशिता

अनन्तशैल्यनसंस्कृतग्रन्थावलि:—ग्रन्थाङ्कः—२४४

सर्वप्रसाधकः— डाक्टर् के० रामचन्द्र मिश्र

उडुजातकोदयः



प्रसाधिका

के. विश्वेश्वरि अम्म एम्. ए०

१९७७/१९५९

मूल्यम्— रु० ३/-

अनन्तशैल्यने विज्ञानभवनमुद्रणालये मुद्रितः

General Editor:

Dr. K. Raghavan Pillai,
Director and Professor of Sanskrit.

Trivandrum Sanskrit Series No. 244.

UDUJĀTAKODAYA

Edited by

K. Visweswari Amma. M.A.

Published by

Dr. K. Raghavan Pillai,

Director and Professor of Sanskrit.
Oriental Research Institute and
Manuscripts Library.
University of Kerala,
Kariavattom, Trivandrum 55501.

No. of Copies: 250

All rights reserved

Price Rs. 3/-

Printed at

Vijñānabhavan Printers,
Manacaud, Trivandrum-9.

1977/1152

PREFACE

We are publishing as No. 244 of the Trivandrum Sanskrit Series an astrological work entitled 'Uḍujātakodaya'. The work is composed in metrical style and deals with the interpretation of Daśa results.

The task of preparing an edition of the work from six manuscripts was entrusted to Smt. K. Visweswari Amma an Assistant Research Officer of this Institute. The work was first published in the Journal of the Oriental Research Institute and Manuscripts Library Vol. XXI Part I and it is appearing now in book form. It is hoped that this lucid work dealing with the timing of events in man's everyday life will be helpful to any student of Astrology and to the lay public.

O.R.I & Mss. Library
25 - 7 - 1977

Dr. K. RAGHAVAN PILLAI
Director and Professor of
Sanskrit.

APPENDIX

We are writing to you regarding the information that we have received from the Department of the Interior, Bureau of Land Management, regarding the proposed development of the [redacted] area. The Department has received information from the [redacted] that the proposed development of the [redacted] area is in violation of the [redacted] Act. We are writing to you to inform you of this information and to request that you take the necessary steps to ensure that the proposed development of the [redacted] area is in compliance with the [redacted] Act.

Very truly yours,
[redacted]
[redacted]
[redacted]

UDUJĀTAKODAYA

Introduction

A careful study of the strength of the planets and ascendants in a horoscope gives us an insight into the good and bad effects which the native has to experience in this life. Now the question naturally arises as to when a person is likely to experience the effects of his deeds good as well as bad done in the past. The periods at which the actions of persons are expected to bear fruit are called 'Dasa'. In other words Dasa are periods in which the native undergoes good or bad experiences in his life as a result of his past karma indicated by the planetary conditions in his horoscope.

The ancient sages have declared that the span of human life is 120 years. This period is distributed among the nine planets, each division being termed as the 'Dasa' of that particular planet. This is called, 'Ududasa' 'udu' meaning 'star'. The position of Moon at birth is important in the calculation of 'ududasa'. Each constellation has a planet assigned to it as its lord and the ruling 'dasa' is determined by the constellation occupied by Moon at the time of birth.

The table of dasas is given below:

<u>Constellation</u>	<u>Planet</u>	<u>Years</u>
Kṛttika, Uttra and Uttarāṣāḍha	Sun	6
Rohini, Hasta and Śravaṇa	Moon	10
Mṛgaśīra, citra and Dhanīṣṭa	Mars	7
Ardra. Svāti and Satabhiṣa	Rahu	18
Punarvasu. Viśākha and Pūrvaḥhadra	Jupiter	16
Puṣya, Anurāḍha and Uttarabhadra	Saturn	19
Āśleṣa, Jyestha and Revati	Mercury	17
Makha. Mūla and Āśvīni	Ketu	7
Purvaphalguni, Pūrvāṣāḍha and Bharāṇi	Venus	20

The ruling daśa pertains to the planet which governs that particular star occupied by Moon at birth time and the next dasas succeed in the order given above. According as the duration of the constellation that has elapsed at birth-time a portion of the ruling daśa is already over in the state of pregnancy and the balance still remains at birth.

The most popular method of finding the ruling daśa and its balance at birth is given below: Find out the total duration of the particular star at birth and also the part that has elapsed at birth-time. Then you can find out the remaining part of the star. Multiply the number of years attributed to the planet which rules over that particular star by the unexpired part of the star and divide the product by the total duration of the star. This gives the balance at birth of the ruling daśa. Let 'x' be the total duration of the star in ghatis and 'y' be the portion of the

star in ghatis that has elapsed at the time of birth. Then the portion of the star that remains unexpired at birth-time is $(x-y)$ ghatis. Let 'z' be the number of years allotted to the planet which governs that particular star. Then $z \frac{(x-y)}{x}$ gives the balance of daśa at birth time. The quotient gives the number of years and the remainder, if any, should be multiplied by 12 and divided by the same denominator and this gives the number of months. If any fraction of a month remains it should be multiplied by 30 and divided by x. That gives you the number of days. If the remainder is further multiplied by 60 and divided by the same denominator it will give you the number of ghatis. Thus the balance of the ruling daśa can be calculated correct to the nearest ghatis.

Another method of calculating the balance of the ruling daśa is from the longitude of Moon at the time of birth. Suppose the birth takes place when the Moon is in Capricorn $26^{\circ} 10'$. The sign capricorn is composed of the three parts of Uttarāṣāḍha, the four parts of Srāvaṇa and the first two parts of Dhanīṣṭha. Every constellation covers $13\frac{1}{4}$ degree ie 13 degrees and 20 minutes of the zodiac space and so each quarter is equal to $3\frac{1}{4}$ degrees ie, 3 degrees and 20 minutes in extent. Therefore three quarters of Uttarāṣāḍha and four of Srāvaṇa = 23 degrees and 20 minutes. 26 degrees and 10 minutes minus 23 degrees and 20 minutes = 2 degrees and 50 minutes. So Moon has passed 2 degrees and 50 minutes in Dhanīṣṭha at the time of birth. We know Dhanīṣṭha is ruled over by Mars whose

period is seven years. Each constellation being $13^{\circ} 20'$ and 20 minutes, we must find out what will be the period for $2^{\circ} 50'$ and that is $7 \times \frac{21.50}{13.20} = 11$ years 5 months and 25 days. This period has elapsed in the state of pregnancy and the period we get by subtracting this from 7 years i.e. 7 years minus 1 year 5 months and 25 days = 5 years 6 months and 5 days will be the balance of the dasa of Mars at birth.

Out of the two methods the latter is the better method for calculating Udadasa.

In the Mahadasa of one planet there are periods called Bhuktis or Sub-periods. In any dasa there are sub-periods of all the nine planets, the first sub-period being that of the dasa lord itself. The order of the other sub-periods is the same as that given for the Mahadasa.

Now let us find out the method of calculating the sub-periods in each of the particular dasas. Multiply the number of years of the ruling planet or lord of dasa with the number of years allotted to that particular planet whose sub-period has to be calculated. This product divided by 120 will give the number of years. The remainder, if any, can be converted to months by multiplying by 12 and dividing by 120. The remaining fraction should be multiplied by 30 and divided by 120 and this gives the number of days. An easier method of calculating bhukti is given below. Multiply the number of years of the dasa lord with the number of years allotted to the planet whose

bhukti is desired. In this product cut off the last digit multiply it by 3 and keep that figure as the number of days, the other figures in the product being the number of months.

The Bhuktis are further divided into still minor periods called 'Antarams' or Inter-periods. For finding the inter-period of one planet in the sub-period of another planet multiply the sub-period by the number of years allotted to that planet whose inter-period has to be calculated and divide the product by 120 and the result gives the inter-period of that planet. Now let us take an example. It is required to find out the inter-period of Mercury in the sub-period of Mars in the major period of Saturn. Sub-period of Mars in Saturn is 1 year 1 month and 9 days ie 13 months and 9 days. The inter-period of Mercury in this sub-period = 13 months and 9 days $\times \frac{17}{120}$ = 1 month 26 days-12 hours and 36 minutes. In the sub-period of any planet, there will be the inter-periods of all planets, the first inter-period being that of the particular planet itself and the other inter-periods succeed in the order given for the dasas.

Important events in man's life such as marriage, birth of child, promotion, transfer etc happen in the dasas and bhuktis of particular planets. To determine the probable period of say marriage in a horoscope, the 7th house, its lord, the planet posited in the 7th, planet aspecting the 7th house and its lord, the navāmsa lord of the 7th Venus- all these have to be considered, their strength carefully

analysed and the planet which is the most beneficial one to impart marital happiness found out and the dasa or bhukti of that planet may be predicted as the probable time of marriage. During the dasa of a planet the native will experience those effects which are attributed to that planet and also the effects of the bhāva and rāsi occupied or aspected by it and also the yogas produced by that planet. The qualities and functions stamped upon the dasa-lord will be modified to a considerable extent by the nature of the house occupied by it, the nature of the planets aspecting it, the nature of the lord of the constellation in which the dasa lord is posited and the position of the planet in rāsi as well as navāmsa. While making predictions the general effects due to that planet should be carefully weighed and particular care should be taken to avoid incongruous results, whenever they occur. Also the result predicted should be consistent with the person concerned under the circumstances in which he is born and brought up and also his physical state at that time.

Some general rules which help in the prediction of dasa effects are given below. There should be harmony in the mutual relationship between the dasa-lord and bhukti lord for the production of good effects. If the dasa and bhukti lords are situated in 2 and 12 or 6 and 8 from each other, unfavourable results will be experienced by the native. During the dasa of a malefic when the sub-periods of planets governing the 3rd 5th and 7th stars from the natal star are in progress the native will be put to many hardships and trials. The dasa of a planet posited

in the 8th from the lord of lagna will be harmful to the native and may even cause his death towards the end of the dasa. If a planet is weak and debilitated we cannot expect anything much from him even if the lord of the sub-period is strong. During the dasa of a planet who is inimical to the lord of lagna and Chandralagna the native will have troubles from enemies, quarrels, diseases, loss of wealth etc. So also in the dasa of a planet in debilitation or in retrogression or posited in the house of an enemy, the person concerned will have to live in foreign countries, will be hated by his relatives and will be addicted to do forbidden acts. The bhukti of a malefic in the dasa of a malefic will be dangerous and calamitous especially if they happen to be in mutually hostile positions. The dasa of Saturn if it happens to be the fourth dasa and the dasa of Jupiter if it happens to be the sixth are unfavourable, but if Saturn and Jupiter are favourably disposed in the horoscope the evil effects will be redeemed to a great extent. If the lagna is powerful, favourable results can be expected in the dasa of the lord of lagna. The dasa periods of the lords of the trines and the sub-period of the lord of 5 in the major period of the lord of 9 and vice versa are good. In the dasa of a yogakāraka planet the effects of Rajayoga will be experienced in the bhuktis of the concerned kārakas. Even though a planet is debilitated or combust or occupies the house of an inimical planet, his dasa will yield mixed effects in general and will be favourable towards the end of the dasa period if he occupies a good bhava in rasi as well as navamsa. The dasa periods of

Venus and Jupiter are not auspicious if they occupy kendras in the horoscope. If they occupy the māraka places i.e., 2 and 7, their dasas prove fatal to the native.

The results of the major period, sub-period or inter-period are modified by the influence of transit or gocara at that time. Saturn is associated with obstacles, retardation of progress, etc., and as such if he is afflicted in a horoscope greater will be the hardships and afflictions caused by him. Jupiter on the other hand, will shield the native from obstacles if he is favourably disposed in the horoscope. The influence of these two planets is greatly felt in transits. If Saturn is in adverse angles with the dasa-lord, even if the latter is well-placed in the horoscope, he will arrest the good effects of the dasa and release them only when his transit is over. But on the other hand, Jupiter in conjunction with the dasa-lord will promote his good results to a greater extent.

An important thing to be remembered while making predictions is that the mere presence of Rajayogas or fine planetary combinations in a horoscope is not enough. These Rajayogas will not give effect if they are devoid of strength and if the proper dasas do not operate in the life-time of the native. These two conditions should be fully satisfied so as to ensure the experience of the results of the Rajayogas. If the planets which give rise to Rajayogas are devoid of strength, the results will be reduced to a minimum. It is even said that the yogas produced by planets which are devoid of any strength will be experienced only in dreams and thoughts.

The work "Udujātakodaya" is written in metrical style and consists of ten Prakaranas viz., the Miśraprakaraṇa, the Ravidasāprakaraṇa, the Chandraśāprakaraṇa,

the Kujadasāprakaraṇa, the Rāhudasāprakaraṇa, the Gurudasāprakaraṇa the Sanidasāprakaraṇa, the Budhadasā prakaraṇa, the Ketudasāprakaraṇa and the Śukradasā prakaraṇa. The first prakaraṇa deals with general topics such as strength of planets, their Kāraṭṭva, their dasa periods, the probable time of death etc. Towards the end of the Miśraprakaraṇa, the author gives the methods of calculating the Dasas and Bhuktis or Antardasas of planets. The remaining nine Prakaraṇas give the probable results each planet will produce during its dasa and bhuktis. The student of Astrology should bear in mind that the principles given here should not be applied verbatim. He should be very careful in applying them to practical horoscopes and should use his commonsense when he attempts to predict. Particular care should be taken to see that the predictions made should be fully adopted to the caste, status, age etc of the person concerned and incongruous results should be completely avoided.

The work comprises 104 slokas; 16 slokas in the Miśraprakaraṇa, 10 slokas in the Rāhudasā Prakaraṇa, 11 slokas in Ketudāsa prakaraṇa, 9 slokas each in the remaining prakaraṇas and the four concluding slokas. The author of the work remains anonymous. The only information we get about the author is that he is a brahmin belonging to Venāḍ.

The edition is based on the following manuscripts:—

1. L. 690 D-*

This is used as the model text. Number of folios 11
Size 24 cms × 4 cms. Number of grandhas 200
Malayalam script. Complete. The manuscript is old and a bit damaged.

2) 19910 B-ब

Number of folios 15. Size 20 cms × 4cms. Number of grandhas 200. Malayalam script. Complete.

3) 1912 D ग

Number of folios 6. Size 25.5 cms × 4.5 cms. Number of grandhas 200. Complete. Malayalam script. The manuscript is damaged

4) L. 864 B. व

Number of folios 4. Size 34.5 cms. × 5cms. Number of grandhas 180 Malayalam scripts. Incomplete. The first Prakarana is missing.

5) 13478 G. ङ

Number of folios 3. Size 26 cms × 4.5cms. Number of grandhas 60. Malayalam Script. Incomplete. Only the Miśraprakarana and Ravidaśāprakaraṇa are given. The work comes to an abrupt end in the middle of the Candradasāprakaraṇa. The manuscript is a bit damaged.

6) 19886 L-च

Number of folios 1. Size 31 cms × 5.5 cms. Number of grandhas 30. Malayalam Script. Incomplete. The work consists of only the Miśraprakaraṇa. The manuscript is damaged.

I acknowledge with gratitude my indebtedness to Dr. K. Raghavan Pillai, the Director and Professor of Sanskrit for his valuable suggestions which helped me in bringing out this publication.

K. VISWESWARI AMMA
Asst. Research Officer

विषयानुक्रमणिका

Page

१.	मिश्रप्रकरणम्	१
२.	रविदशाप्रकरणम्	५
३.	चन्द्रदशाप्रकरणम्	७
४.	कुजदशाप्रकरणम्	१०
५.	राहुदशाप्रकरणम्	१२
६.	गुरुदशाप्रकरणम्	१५
७.	मन्ददशाप्रकरणम्	१७
८.	बुधदशाप्रकरणम्	२०
९.	केतुदशाप्रकरणम्	२३
१०.	शुक्रदशाप्रकरणम्	२६

... FIP.

1954

1. *Chlorophyll a* (Chl *a*)

1. *Chlorophyll a* and *Chlorophyll b* were determined by the method of Arar and Collins (1971).

1990

1997, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 2634, 2635, 2636, 2637, 2638, 2639, 2640, 2641, 2642, 2643, 2644, 2645, 2646, 2647, 2648, 2649, 2650, 2651, 2652, 2653, 2654, 2655, 2656, 2657, 2658, 2659, 2660, 2661, 2662, 2663, 2664, 2665, 2666, 2667, 2668, 2669, 2670, 2671, 2672, 2673, 2674, 2675, 2676, 2677, 2678, 26

47

π.

• 100 •

37 3

श्लोकानुक्रमणिका

Sloka	Page	Number
अग्निदाह-	२३	३
अग्निभीति-	२६	६
अथ तरणि-	३६	१-मग्न
अपमार्ग-	१९	८
अमरगुरु-	६५	१
अमरार्चनं	२०	९
अरिगतकलहो	२५	८
अरिभय-	१६	५
अरिवरजननं	२६	११
अरिव्यथा	६४	८
अर्थधर्म-	२२	९
अर्थलाभ-	२४	५
अशनिभय	११	६
अष्टमाधिपति-	३३	१०
असुरगुरु-	२६	१
असुरवर-	१२	१
आत्मचित्त-	६	५
इति कथित-	२९	२
इष्टार्थब्द-	४४	१५
उद्धूर्ध्वनाडी-	४	१
उद्यद्दृगाण-	२	८
उपर्युपरि-	११	४

Sloka

Page No.

Number

सिस्तितमव-	१०	१
गणेशवाणी-	१	१
चित्तचञ्चल-	२	७
ज्वराग्नि-	३	६
तनयसौख्य धनागम-	२८	८
तनयसौरव्यबहिष्कृति-	३८	९
तनुनय	४	१३
तीव्ररोष-	५	३
तोषयान-	४०	८
दशापहारेषु	४१	१
दानधर्म-	४८	४
दुःखशोक-	४९	२
देवविप्रगुरु-	४९	३
द्विजवरकलहः	४३	२
द्विजविबुध-	४९	३
द्विजेन केना-	४९	३
धनाहृतिः	५६	६
नक्षशिरो-	५७	३
नगरयूथ-	५८	७
नयनकृषि-	५६	२
नानाविधार्थ-	५६	५
निधिभव-	५७	५
नृपकृतपरि-	५२	८
बृपाग्निचोरा-	५५	१०

Sloka	Page	Number	
नैकरोगविहृतिः	३	५	-३५
पवनजविहृति	३५	१०	
पितृजननि-	२	६	
पित्तबहि-	७	२	
बन्धूपतप्ति-	१७	९	
बन्धूपतोषण-	१७	८	
मरणं तु	१९	५	
मरुदग्निपीडन-	१८	३	
मस्तकव्यसन-	२१	५	
महीभृतो	२५	३	
मानहानि-	२२	७	
यदा शुभः	३	१२	
युवतिजन-	३१	७	
योषिद्वहृत्व-	५७	७	
रन्ध्रविभाग-	५३	११	
रवितनय-	५७	१	
राजमानन-	९	९	
रिपुक्षयो गदशमनो	५	२	
रिपुक्षयो विविध-	६	५	
रिपूदयो	६	४	
रुधिरपित्त-	२७	४	
वदतु मरण-	२२	७	
बधूविनाशः	१५	९	
वनिताहति-	५९	६	

Sloka	Page	Number
वसुचय-	२४	६
विचर्चिका	२६	७
विचिन्त्य पक्षादि-	२९	३
विज्ञाय जन्मनि	३१	२
विविधधन-	१२	९
विविधधर्म-	२७	६
विषाम्बुगुण्ट-	१३	२
वेश्याङ्गना-	१५	२
व्याधिशत्रु-	१२	८
शत्रोर्जयं	१६	६
शशाङ्कसंयुक्त-	३	९
शक्षितनय-	३०	१
शस्त्रव्रणं	१६	४
शस्त्राग्नि-	१०	२
शिखिकृत-	२४	४
शिखिजनित-	२३	१
शिरोरुजा	७	९
श्लिष्टिकर-	७	१
समीरपित्त-	१३	४
सर्वतो धन-	९	६
संपूर्णपूर्ण-	१	४
सर्वोक्तं नृपति-	२९	४
सुखोपनीतिः	१३	३
सुतस्व लब्धिः	१४	७
सुतस्वलब्धिः	१३	५

Sloka	Page	Number
सुभगत्वमस्ति	१८	२
सुरवरनमनं	२५	९
सुहृदङ्गना-	१८	४
सुहृद्वधः स्वजन-	७	८
स्त्रीघूतमद्य-	१६	३
स्वकुलजकलहः	२४	७
स्वपदच्युतिः	१९	७
स्वसमहत-	५	१६
हेमविद्रुम-	२१	४

क्र.सं.	वर्ग	वर्ग
१	१५	वर्ग १
२	१०	वर्ग २
३	१०	वर्ग ३
४	१०	वर्ग ४
५	१०	वर्ग ५
६	१०	वर्ग ६
७	१०	वर्ग ७
८	१०	वर्ग ८
९	१०	वर्ग ९
१०	१०	वर्ग १०

Director and Treasurer of 2nd Floor.

जननक्षत्रवर्गे विज्ञानभवनसूत्रमालये दृष्टिः

General Editor
Dr. K. Raghavan Pillai,
Director and Professor of Sanskrit.

Trivandrum Sanskrit Series No. 245

SARVAMATASAMGRAHA

Edited by

M. Madhavan Unni.

Published by

Dr. K. Raghavan Pillai,

**Director and Professor of Sanskrit,
Oriental Research Institute
and Manuscripts Library,
University of Kerala,
Trivandrum-695581**

No. of Copies 250.

All rights reserved

Price Rs. 3/-

Printed at

**Vijñānabhavan Printers
Manacaud, Trivandrum-9.**

1977/1152

PREFACE

Sarvamatasamgraha which we publish now as TSS No.248 is a work of Nārāyaṇābhata, on tenets of different schools of thought such as Nyāya, Mīmāṃsa, Bauddha and so on. The publication is based on the only Manuscript (No. 1028) available in this Institute.

There are 147 stanzas in this work in different metres. Though the work was composed in the early period of his life Nārāyaṇābhata has shown that he was a talented composer of poetry especially considering that this is a work which deals with the Sastras.

Sri. M. Madhvan Unni, Research Officer was entrusted to do the work in connection with its publication. It was first published in the Sanskrit Journal Vol.XXI Part I .

I sincerely hope that this publication will be a valuable addition to the field of Indian philosophical literature.

O.R.I. & Mss. Library.
1 - 8 - 1977.

Dr. K. RAGHAVAN PILLAI,
Director and Professor of
Sanskrit.

1872

SARVAMATASAMGRAHA

INTRODUCTION

Treatises of Vedic and Non-Vedic systems of Philosophy have been composed by Ācāryas from time to time. The Sarvadarśana samgraha of Mādhavācārya, Sarvamatasamgraha of anonymous authorship¹, Sarvadarśanakauṁudi of Mādhavasarasvatī², Sarvasiddhāntasamgraha of Śaṅkarārya³ are some of the treatises giving the tenets of the various schools of Philosophy. Generally such works include the Lokāyata (Cārvāka) Ārhata, Bauddha, Advaita, Sāṃkhya, Vaiśeṣika, Nyāya, Prābhākara, Bhāṭṭa, Aupaniṣada and Paurāṇika systems. In the present work namely Sarvamatasamgraha⁴, we have to assume that Nārāyaṇabhāṭṭa who

-
1. Trivandrum Sanskrit Series No. 62
 2. Trivandrum Sanskrit Series No. 135.
 3. Published by M. Rangācārya from Madras as a work of Śaṅkarācārya. But actually, it is written by a Śaṅkarārya. See 'Manuscript notices and studies: Sarvapratyayamālā of Śaṅkarārya' by E. Eswaran Nampoothiry, Journal of the Kerala University Oriental Research Institute and Manuscripts Library Vol. XVIII. No. 1.
 4. Even though there is no mention of its name as Sarvamatasamgraha in the colophon, the name of the work is registered as Sarvamatasamgraha in the Catalogue of ORI & MSS. Library, Kerala University, Trivandrum. S. Venkitasubramonia Iyer names it as Sarvamatasārasamgraha. (See 'Melputtur Mātrdatta' Journal of Oriental Research, Madras, Vol. 28 (1961) 61-67. The name of the work however, seems to be as Siddhāntasārasamkṣepa since the expressions 'Siddhāntasārāṇaham' and 'samkṣīpan' are seen in śloka 6-7 of the work.

was a devoted follower of the Bhāṭṭa school of thought has placed Bhāṭṭa system above all other systems. But we cannot say that the great author of Nārāyaṇīya has no respect for other systems, especially the Advaita.

The method of treatment:

The treatise deals with the systems of Cārvāka, Ārhatta, Bauddha, Vaiśeṣika, Naiyāyika, Sēśvarasāmkhya Nirīśvarasāmkhya, Prābhākara, and Bhāṭṭa. It also contains brief references to the systems of Pāsupata and Rāmānuja. Among these the Bauddha system is dealt with rather succinctly while the others are treated in greater detail. The enumeration of objects, the nature of liberation etc. according to the systems of Cārvāka and others are described in detail. This table will give an idea of these systems:

<u>System</u>	<u>Pramāṇas</u>	<u>Nature of liberation</u>
1. Cārvāka	Pratyakṣa	Marāṇa
2. Ārhatta	Pratyakṣa Anumāna and Āptavākya	Alokākāśe Satatordhva-gamanam
3. Bauddha	-do-	Sarvaśūnyatāvāpti
4. Vaiśeṣika (Kānāda)	Pratyakṣa Anumāna	Ātmagunocchedamayi Pāśavyanmukthih
5. Nyāya (Aśvapada)	Pratyakṣa Anumāna Upamāna Śabda	(Sokha) dukhahināti- rūpa pāśavyanmukthih

6. Nirīśvarasāmkhya	Pratyakṣa Anumāna, Śabda	Sukhadukhādi- vigamarūpa pāśāṇavanmuktīḥ
7. Śeśvarasāmkhya	-do-	-do-
8. Prābhākara	Pratyakṣa Anumāna Śabda Arthāpattiḥ	Ātmanah svarūpāvasthāna- lākṣaṇapāśāṇavanmuktīḥ
9. Kumārila	Pratyakṣa Anumāna Upamāna, Śabda Arthāpatti Abhāva	Nityānandānubhava

The author's arguments to establish the tenets of the Kumārila system are couched in a convincing way. His arguments refuting the salient features of other systems are also apparently convincing. For instance his treatment of the Lokāyata (Cārvāka) system may be examined. He maintains that though it is true that the system was given shape to by sage Bṛhaspati and as such it is Āṅga warranting recognition, the system has its own limitations. The expounder himself does not maintain that it is the final end. To establish the truth and to point out the limitations of this system our author cites illustrations. Thus he says that 'the words of the sage which give rise to over ambition, as also the words of the sage which go against the express injunction of śruti are to be rejected.' He also speaks against the arguments of the heterodox system which finds fault with the Keraḷa Brahmin marrying Śūdra women. The smṛti maintains that the Brahmin shall marry a Śūdra girl only after marrying a girl each from the other three communities. He who marries a Śūdra lady without these three previous marriages goes to hell. Taking support on this, some hold that Brahmins

who marry a Sudra lady alone is to be despised. Our author does not share this view. He replies to this argument effectively.*

His mode of refuting the saptabhaṅgi principle of Ārhatas is thought-provoking as well as interesting. For example the following passage is noteworthy:—

एतान्यातः सन्ति नो वेत्यमन्दे
सन्देहे स्यान्नैव निर्धारणेषाम् ।
तद्वैधुर्यं नोपदेशो गुरूणां
शिष्याणां चानिर्णयान्न प्रवृत्तिः ॥ (श्लो-५३)

His refutation of the Prābhākara system in the following lines is yet another interesting observation.

को वा वेदप्रणीतं विधिवदिह विधायेश्वरस्य प्रसादा-
न्मूर्च्छामिच्छेद्विपश्चिद्वह विरसत्प्रमात्मनोजन्यत्समानम् ॥ (श्लो-७४)

Indebtedness to other works

It is already noted earlier that there are several works which explain the principal tenets of important systems of Indian Philosophy. Such epitomisation helps one to understand the basic ideas of the chief

४. नीतिशास्त्रोक्तसिद्धान्तं स्थापयिष्यन् बृहस्पतिः ।
कृत्वा लोकायतं शास्त्रं चार्वाकाय समर्पयत् ॥ (श्लो-३)
अत एवाप्रामाण्यं चार्वत्वेऽप्यस्य हेतुदर्शनतः ।
वेदविरोधाच्च यथा वैसर्जनसर्ववेष्टनस्मृत्योः ॥ (श्लो-४)
५. कथं नास्तिक हास्य तुल्यकुलजान् जूढान् स्वदारान् विना
वेद्यानामपरिग्रहेण नरकं नाप्स्यस्यमुनेति किम् ।
मानं ह्यत्र च बोधनेति सति बाहस्यावरन् केरला-
स्तं सर्वोपशयेर्जहानिषु महद् वृत्तं विनश्येदिति ॥ (श्लो- ७)

systems. Among such works Sarvadarśanasamgraha of Mādha-vācaryā holds an important position. Its influence on other works of a similar nature is worth mentioning. Much parallelisms can be noticed in epitomes of these systems. It is only natural that expressions are often found in such works, including this work of Nārāyaṇabhaṭṭa. We can see many identical expressions both in Mānameyodaya Pūrvabhāga and in this work. A few instances of similarities in expressions are given below:-

‘सामान्यं वा विशेषः किमु विषय उताभ्यां परं वस्तु नाद्यः
सामान्यं व्याप्तिबोधे विदितमिति यतः सिद्धसाध्यत्वदोषः’

Sarvamatasamgraha (श्लो-९)

‘अत्र चार्वाकाः- अग्निविशेषस्यानुमेयत्वे व्याप्त्यसिद्धिः । अग्निसामान्यस्यैव धूमसामान्येन व्याप्तेः। सामान्यस्यानुमेयत्वे तु तस्य पूर्वमेव परिच्छिन्नत्वात् सिद्धसाध्यत्वम् ॥

(Mānameyodaya. See p. 3 footnote)

Similarly the verse-

नहि कुहचिद् भ्रान्तिमति-
भेदाग्रह एव शुक्तिरजतादौ । (श्लो-१२९)

has an echo in the following line of Mānameyodaya:—

इदं रजतमित्यलेदमित्यगृहीतविशेषं शुक्तिशकलं गृह्यते । रजतमिति च रजतमात्रं स्मर्यते । तयोश्च भेदाग्रहात् पुरोवर्तिनि रजतार्थिनः प्रवृत्तिः, न तु शुक्तिशकलस्य रजतत्वेन भ्रान्तमस्ति ।

(See p. 22. footnote)

Yet another similarity may be noted between the works.

इदमिह रजतमितीत्थं
तादात्म्यधियान्यथाग्रहाश्रयणात् ।

(Stanza 128.)

तत्तज्ज्ञानस्य स्वविषय एव प्रवृत्तिकरत्वनियमात् रजतज्ञानस्यापि
स्वविषयत्वाभावे तत्र प्रवृत्तिर्न सिद्ध्येत्, तदेवमेव रजतमिति सामानाधि-
करण्यं तथैव भेदप्रतीतिं विना न सिद्ध्येदित्यादिदिशा निराकरणीयम् ।

(See p. 24 footnote)

The Sarvasiddhāntasamgraha of Śaṅkarārya seems to have influ-
enced our author to a considerable extent. The similarity in ideas
and expressions is obvious. For instance the following stanzas of
the work of Śaṅkarārya are given below for comparison.

7
स्वर्गानुभूतिमृष्टाष्टिद्वर्षष्टवर्षवधूगमः ।
ब्रह्मवैस्त्रिदुर्बलैश्च चन्दनादिनिषेवणम् ॥
नरकानुभवो वैरिशस्त्रव्याध्याद्युपद्रवः ।
मोक्षस्तु मरणं तच्च प्राणवायुनिवर्तनम् ॥

पातिव्रत्यादिसङ्केतो बुद्धिमद्दुर्बलैः कृतः ।

देवालयप्रपासन्नकूपारामादिकर्मणाम् ।

प्रशंसां कुर्वते नित्यं पन्था एव न चापरे ॥

These verses are succinctly expressed by our author in a beautiful and
thought-provoking manner as follows:-

इष्टापूर्तान्नदानप्रभृतिषु सुकृतोवृद्धोषणामध्वगाद्याः

पातिव्रत्यव्यवस्थाद्यकृषत मतिमद्दुर्बलाः शक्तभीत्या ।

मृष्टाष्टिद्वयष्टवर्षप्रिययुवतिजनसगदुक्लादिरेव

स्वर्गो व्याघ्राद्यनर्थो नरक इति दृढं पापचार्वाक ऊचे ॥ (श्लो१२)

The arguments advanced to controvert the Jaina doctrines bear close resemblance with the Bhāṣya on 'Brahmasūtra' by Śaṅkara. For instance the stanzas from 50-57 may be compared with the Brahmasūtrabhāṣya passage:-

‘एवमेव एकत्वनित्यत्वादिष्वपि इमं सप्तभङ्गीनयं योजयन्ति । अत्रा-
चक्षते-नायमभ्युपगमो युक्तः । ‘एकस्मिन्नसम्भवात्’ (सु) न ह्येकस्मिन्
धर्मिणि युगपत् सदसत्त्वादिविरुद्धधर्मविशः सम्भवति, शीतोष्णवत् । य एते
सप्त पदार्था निर्धारिता एतावन्त एवरूपस्येति ते तथैव वा स्युः नैव
वा तथा स्युः इतरथा हि तथा वा स्युरतथा वेति अनिर्धारितरूपं ज्ञानं
संशयसाधकप्रमाणमेकं स्वात् ।

एवं सति, कथं प्रमाणभूतः सन् तीर्थकरः प्रमाणप्रमेयप्रमातृप्रमितिषु
कनिष्ठस्तिष्ठत्युपदेष्टुं शक्नुयात् । कथं वा तदभिप्रायावुसारिणः
तदुपदिष्टेऽर्थेऽनिर्धारितस्ये प्रवर्तेतुम् ।

(ब-सू-शा-भा-अ-२-पा-२-अधि-६-सू-३३)

Thus it is clear that our author accepts the ideas of his predecessors in this field. In a work of epitomisation of this kind there is no question of originality. What the author tries is to introduce the principles of the various schools of Philosophy which may help us to understand them with their particular modes.

Author

At the outset it may be noted that the manuscript of the work does not contain any colophon attributing the work to any author. But there is an important feature in this work which

more or less, points to its authorship. Thus the work contains altogether 7 stanzas which form the introduction to the treatise. Of these 3 verses are also found in the Kriyākrama of (TSS No. 238) Melputtūr Nārāyaṇabhaṭṭa. It may be concluded that the author has used the same verses as the benedictory verses of this work also. This feature is suggestive of a common authorship. No author borrows the lines of another for the benedictory portion. Thus it proves that the author of these verses is also the author of the present work.

After the refutation of the system of the Cārvākas, the author states:

मतं लोकायतस्यैवमुपन्यस्य निराकृतम् ।

मातृदत्तेनार्हतस्याथोपन्यस्य निरस्यते ॥ (श्लो-८)

Here the name of Māṭṛdatta is expressly included in the work which may give rise to some doubt regarding the real authorship of the work. But we know that Māṭṛdatta, the father of Nārāyaṇa bhaṭṭa, taught his son, the various sāstras like Mīmāṃsa.⁸ Moreover, the above verse is to be explained in the light of the following statements contained in the present work:

धर्मस्थापकयुक्तितल्लजमयोल्लोलावलीदुस्तर-

श्रीकौमारिलतन्त्रसागरतरीसत्प्रज्ञ सर्वज्ञ भोः ।

अन्तर्वाणिशिरोमणे क्षणमपि क्षोणीसुरेन्द्राञ्जसा

शुश्रूषे भवतोऽत्र तत्रभवतः सिद्धान्तसारानहम् ॥

(Sloka 6) and

8. श्रीमांसादि स्वाताताम्रिगमविकलं माधवाचार्यवर्यात्

तर्कं दमोदरार्यादपि पदपदवीमच्युताख्याद् बुधेन्द्रात् ।

तेषां कारुण्ययोगात् किमपि च कवितामाप्रवं सर्वमेतद्

भूयात् कृष्णार्पणं मे भवतु च सततं क्षीरघारे कथायाम् ॥ (प्रक्रियासर्वस्वे
न्यायचण्डे)

इति प्रार्थ्यं गुरोः श्रुत्वा तान् पद्यैः संक्षिप्तं कृमात् ।

अवेदिकान्, निरुप्यामि, वैदिकाद् स्थापयामि च ॥

(Sloka 7)

It is said Mārāyaṇabhaṭṭa desirous of perpetuating the knowledge imparted to him by his father composed the work.

The ideas expounded by his father were given shape to by the illustrious son in his own facile style. Out of humility he did not forget to maintain the name of his teacher in the work and that is how we find the name of Mātṛdatta mentioned here in the work itself. The passage like. 'मातृदत्तेनाहृतस्याथोपन्यस्य निरस्यते' । (श्लो-१८) clearly brings out his indebtedness to his father who was his teacher.

Moreover the similarities of ideas and expressions seen in 'नित्यतदगदाचक्राज्ज्वल्यमानश्रीमद्बाहुचतुष्कं' (Sarvamatasamgraha- Sloka 3)

and श्रीमद्बाहुचतुष्कसंगतगदाशङ्खारिपङ्के-

रुहां' (Nārāyaṇīya Deśaka 2 Sloka 2)

'साक्षाद् ब्रह्माद्वितीयम्' (Sarvaṇatasamgraha Sloka 3) and

'ब्रह्मतत्त्वं तत्तावद् भाति साक्षात्' (Nārāyaṇīya I-1)

'उपनिषद्वेद्यं' (Sarvamatasamgraha Sloka 3) and

'निगमशतसहस्रेण निर्भास्यमानं' (Nārāyaṇīya 1-1)

'आनन्दरूपं' (Sarvamatasamgraha Sloka 3) and

सान्द्रानन्दबोधोदात्मकं' (Nārāyaṇīya 1-1)

clearly strengthen the above view.

9. Venkitasubramonia Iyer, 'Melputtūr Mātṛdatta' Journal of Oriental Research, Madras (1961) 61-67

Date of composition

The following reference is suggestive of the date of composition of the work.

The 'Kali day 1711277' is mentioned in connection with the completion of this work. 28th Viscikam M. E. 762 is given as the date of completion of Nārāyaṇīya in the chronogram 'आयुरारोग्यसौख्यम्' (नारायण १००-११ (1712210)). So the present work was composed 933 days' before the completion of Nārāyaṇīya.

Much has already been written about the date of Nārāyaṇabhaṭṭa¹¹. According to a granthavari Nārāyaṇabhaṭṭa was born in M. E. 725 and passed away in the year 841. In that case it is evident that the present work was composed while the author was 25 years old.

The Edition

The edition of this work is based on Manuscript No. 1028 G. of this Institution. (Palm leaf folios 28; size 6 " x 11" ; 7 lines per page; 25 letters per line; No. of granthas 200, Malayalam script, complete). The portion from 'देवैर्वा वैशेषिकनामकं च' (sloka 71) is repeated in 10 folios and the variants therein are given as B in footnote.

Sri. A. Rāmachandra Sastry, Senior Research officer (Retired) has helped me in the preparation of the work and I express my thanks to him.

I gratefully acknowledge my indebtedness to our Head of the Department Dr. K. Raghavan Pillai for entrusting the work to me and his valuable suggestions and instructions which helped me much in bringing out this publication.

Karyavattom

17-3-77

M. Madhavan Unni

Research Officer.

संस्करणे सम्यक् कलि: (Page 28 footnote.)

11. See Venkitasubramoṇia Iyer Introduction to Prakriyā-sarvasva Part III-Trivandrum Sanskrit Series No. 153.

सर्वमतेसंग्रहे

बिबिधानुक्रमणी

श्लोकसंख्या

मङ्गलाचरणम्	१ — ४
मीमांसासाम्यासिनिन्दो	५
गुरोः सिद्धान्तसारश्रवणे इच्छाकथनम्	६
गुरोर्मतानुसारं वैदिकसिद्धान्तस्थापने अवैदिक- सिद्धान्तनिरासे च प्रतिज्ञा	७
अवैदिकेषु चार्वाकस्य मुख्यता	८
चार्वाकमतोपन्यासः	९ — १२
लोकायत(चार्वाक)मतस्य बृहस्पत्युपज्ञत्वम्	१३
चार्वाकमतखण्डनम्	१४ — १७
आहृतमतोपन्यासः	१८ — ४७
आहृतमतखण्डनम्	४९ — ५७
चार्वाकाहृतयोर्मते अत्मस्वरूपम्	५८
बौद्धानां मतभेदादि	५८ — ५९
संक्षेपतः चार्वाकाहृतवैशेषिकनैयायिकप्रभाकरभाट्ट- सांख्यपाशुपतसम्प्रानुजीयमतविषयाः	६० — ७०
वैशेषिकनैयायिकमतोपक्षेपः	७१
वैशेषिकमते प्रमाणत्रिणि सौगताद्वैशेषिकस्य विशेषः	७२
वैशेषिकमते पदार्थाः	७३
द्रव्यलक्षणं द्रव्यभेदाश्च	७४
नित्यद्रव्यअनित्यद्रव्याणि च	७५
पृथिव्या वैविध्यं धृत्वादीनां पार्थिवत्वे हेतुश्च	७६
अप्तेजसोर्वैविध्यम्	७७
सुवर्णादीनां तैजसत्वे हेतुः काष्ठेनैविक्रमं च	७८
आकाशादीनां निःस्पृक्तविभुत्वादि, गुणानां संख्या च	७९

रूपादयोऽष्ट भूतगुणाः सुखादय आत्मगुणाः सामा- न्यगुणाश्च	८० — ८१
पाकजाः पार्थिवगुणाः, कर्मविभागः जातिलक्षणं च	८२ — ८३
जातेर्द्वैविध्यं विशेषपदार्थस्याङ्गीकारे युक्तिः समवाय- स्वरूपं च	८४ — ८५
अभावपदार्थस्वरूपम्	८६
पदार्थतत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिः तत्स्वरूपं	
चेति वैशेषिकमतोपसंहारः	८७ — ८८
नैयायिकमतोपक्रमः शब्दोपमानयोर्मनित्वे युक्ति- कथनम्	८८ — ९०
षोडशपदार्थानामङ्गीकारे हेतुः, ते च के इति	९० — ९३
वैशेषिकनैयायिकयोः कस्मिन्नंशे साम्यमिति	९४
प्रमेयानि, तेषां मुक्तौ साधकता मुक्तिलाभप्रकारः मुक्तेः स्वरूपं चेति नैयायिकमतोपसंहारः	९५ — ९८
सांख्यमतोपक्रमः, नैयायिकादृतस्य वेदस्येश्वरकर्तृकत्व- स्यायुक्तिप्रदर्शनम्, वेदानां नित्यत्वं स्वतः प्रमा- ण्यं च	९९ — १००
प्रकृतेरेव सृष्टिः सृष्टिप्रकारः	
निरीश्वरसेश्वरसारव्योक्तिश्च	१०१
निरीश्वरसांख्यमते सृष्टेः प्रकारः चतुर्विंशति- तत्त्वानि च	१०२ — १०४
मोक्षाप्तिमार्गः	१०५ — १०६
यागस्य हिंसायोगः	१०६
ध्यानादीनां निवृत्तिधर्माणां मोक्षाङ्गत्वम्	१०७
मोक्षस्वरूपकथनं निरीश्वरसांख्यमित्यस्याख्यायाः संगतिश्च	१०८

सैश्वरसांख्यमतोपक्रमः, पञ्चविंशतितत्त्वानि	१०९
अष्टाङ्गयोगद्वारा मुक्तिरिति कथनम्	११०
यमादिनिर्देशः	१११ — ११२
योगफलानि, मोक्षस्वरूपं च	११३ — ११४
प्रभाकरमतोपक्रमः सांख्यमतखण्डनं च	११५
पदानां कार्यार्थता	११६
लिङ्गार्थः	११७
विधिवाक्यस्यैव प्रमाणता	११८
भ्रान्तिनिरासः	११९
त्रिपुटं ज्ञानम्, प्रमाणानि च	१२०
अभावस्य पदार्थतानिरसनम्	१२१
पदार्थाः	१२२
विप्रतादीनां जातित्वनिरासः	१२२½
विधिवाक्यानां प्रमाणता अपरेषां विधिशेषत्वम्	१२२
उपनिषदामपि विधिशेषत्वम्	१२३
विहितकर्मणा पाषाणवन्मुक्तिः स्वर्गादिर्वा परमपुमर्थः	१२४
भाट्टमतोपक्षेपः, अबाधितेऽर्थेऽर्थवादोपनिषदां प्रमाण- त्वमिति विधिवाक्यैकप्रमाणप्रभाकरमतखण्ड- नम्	१२५
लिङ्गार्थः	१२६
अपूर्वस्य लिङ्गार्थतानिरासः तस्य निर्वचनं च	१२७
भ्रान्तेरस्तित्वम्	१२८
ज्ञानं प्राकट्येनानुमितमिति तद्विषयकतार्किकप्रभा- करमतनिरासः	१२९
अभावस्याङ्गीकार्यता प्रमाणषट्कं च	१३०
चत्वारो भावपदार्थाः, समवायस्य पदार्थत्वनिरसनं च	१३१

प्राभाकरादृतसादृश्यपदार्थस्य निरासः, इत्याणांमेकादशविधत्वं च	
द्रव्येषु मनसोजुमेयत्वं शिष्टानां प्रत्यक्षत्वम्,	
द्रव्येषु परमाण्वारब्धाः पञ्च, षड् विभव इति च	१३२ — १३३
मनआत्मनोरसंख्यत्वं दिगादीनामेकत्वं शब्दानां	
वर्णमयत्वं च	१३४
विभूनां नित्यः संयोगः, धर्माधर्मशब्दानां गुणानन्त-	
भूतत्वं च	१३५
शक्तिप्रकट्ययोगुणत्वम् प्रत्यक्षविषया गुणादयः	१३६
विप्रत्वादिरपि जातिः जातावपि सत्तेति	१३७
आनन्दस्य मुक्तौ श्रुतिः मोक्षमार्गश्च	१३८ — १३९
भाट्टप्राभाकरयोः कुत्रांशे मतसाम्यमिति	१४० — १४३
मीमांसादर्शने द्वादशप्रश्नाभ्यां प्रपञ्चिता विषयाः	१४४ — १४५
यागादिकार्याणां फलकारणत्वम्	१४५
उपसंहारः	१४६ — १४७

इतीहासमुद्रमणिका

श्लोकः	पुटम्	श्लो-संख्या
अजसंयोगो	२१	१३५
अज्ञाततत्त्व-	२४	१२५
अज्ञातेऽर्थे	१८	८९
अत एवाप्रामाण्यं	४	१४
अथ खलु	१६	७३
अनुभूतिस्तिबह	२२	११९
अनेकान्तत्व-	८	३७
अन्योन्यपृथक्त्वार्थं	१७	८५
अवयवतर्क-	१८	९३
अवैदिकास्तत्र-	२	८
अष्टौ सन्ति	२२	१२२
असत्त्वसदसत्त्वानि-	९	३९
अस्ति प्राकट्याख्यो	२४	१२९
आत्मगुणा अष्ट	१७	८९
आत्मगुणोच्छेदमयीं	१७	८८
आत्मगुणोऽप्यानन्दो	२६	१३८
आत्मसतत्वज्ञाना-	२६	१३८
आत्मस्वन्तर्भूतं	१७	८७
आत्मानं कथयन्ति	१२	३८
आयुः कायविहा-	८	३१
इति प्रार्थ्यं	२	७
इदमपि मतं	१९	९९

श्लोक	पुटम्	श्लो-संख्या
इष्टापूर्ताभिदान	३	१२
इष्टापूर्ताभिदानसन्नि-	४	१६
इष्टाभ्युपायत्व-	२३	१२६
ईश्वरचिन्ता	२२१	११३
एकान्तनित्यत्वद्रो-	२१०	४३
एतानि प्रकृति-	२०	१०५
एतान्यातः सत्त्व	११	११५
एवं द्व्यष्टपदद्वयं	१८	९४
एवं विधिवाक्यं	२२	११५
कर्ता धर्मस्य	१३	६१
कर्मद्रव्यगुणा	१४	६४
कलघौतसीस-	१६	७८
कश्चित् तामिह	१३	५९
कस्मैचिद् किञ्च-	२	४
कार्यं प्रवर्तकं	२१	११६
किञ्च लोकादीनां	५	१९
कुलबोधसहकृती-	२६	१३७
कोलम्बे नाग-	२८	१४७
क्षित्याद्याश्चत्वारो	१६	७५
गमनाद्यास्त्विह	१६	७९
गमनमिति	१७	८३
गोरूपेण यथा-	१५	७०
चतुर्दोष्णे	१	२
कल्पाद्यैस्तान्	१८	९२

श्लोक	पुटम्	श्लो-संख्या
जीवोऽजीवश्चा-	६	२१
जीवो बोधस्वप्नो	६	२२
ज्ञानं स्वयंप्रकाशं	२२	१२०
ततश्च तत्साधनतो	२४	१२७
तत्त्वज्ञानविधाति-	८	३३
तत्राद्ये स्वयमेव	११	१०२
तत्रानेकान्तता-	९	३८
तत्सिद्धिः सर्व-	८	३५
तस्मात् सर्व-	१०	४७
तस्य विरोध-	२०	१४५
तामसभागा-	२८	१०४
तेन हि नित्यान्-	११	१००
तेनानेकान्तिकस्तेन	९	४२
तेनार्थवाद-	२३	१३३
तेभ्यः पुरुषस्य	२०	१०६
दर्शनावरणीयं	७	२९
दृष्टान्तेऽस्मिन्	१२	१७
देशे क्वापि क्वापि	११	५१
द्रव्यगुणकर्म-	२३	१३५
द्रव्यं गुणार्थं	१६	७४
द्वेधैव वैशेषिक-	१५	७१
धर्मस्थापक-	२	६
धर्माधर्ममिराद्याः	३	११
धर्मो प्रमाणहितम्	२७	१४४

श्लोक	पुटम्	श्लो-सङ्ख्या
नमनमते भेद	१०	४८
न पुनर्विबोध-	२१	११०
नान्त्योऽप्यत्वे	११	५०
नाभावोऽस्ति	२२	१२१
नामिकं त्वत्त	८	३२
नायं पक्षो	११	४९
नास्तीति बुद्धि-	१७	८३
नित्यत्वादे-	११	५४
नित्याः खलु	२७	१४१
निर्मायि ज्ञाता-	२८	१४६
नीतिशास्त्रोक्त-	३	१३
नैत्यमृते धरणि	१७	८२
नेव हि सृष्टि-	२७	१४२
पक्षाः सद्वाचसद्	१०	४४
पुंस कात्यायनस्येतान्	७	२५
पुण्याः पुद्गलका-	६	२४
पृथिवी मृत्पद्मवा-	१६	७६
प्रकृतिविभोगात्-	२०	१०८
प्रकृतिः स्वभावो-	१९	१०१
प्रकृतेर्महा-	१९	१०३
प्रत्यक्षमप्यनुमिति-	१५	७२
प्रत्यक्षं त्वनुमान-	१४	६५
प्रत्यक्षं नः	३	९
प्रत्यक्षं हि	१३	६०
प्रत्यक्षाणि	२५	१३३

श्लोक	पुटम्	श्लो-सङ्ख्या
प्रत्यक्षाद्यैः सर्व-	१२	५६
प्रत्यक्षानुमिती	५	२०
प्रत्याहारः स्वात्	२१	११२
प्राग् दृष्टस्यां	३	१०
प्रेत्योद्भवफल-	१८	९६
बध्नीमश्रित्त	१	१
ब्राह्मण्ये पुरु-	२	५
भक्तावाञ्छितदो	१५	६८
भक्तिविराग-	२१	११४
भाट्टप्राभाकरयो-	२७	१४०
भ्रान्तावन्यस्फूर्ति-	१०	४६
मतं लोकायत-	५	१८
मन्ये नास्तिक	५	१७
मीमांसको	२१	११५
मोक्षस्त्वक्षय-	८	३४
मोक्षेच्छुः स्वात्मानं	१९	९७
मोहनीयं प्रवृत्तस्य	७	३०
ये तु ध्यान-	२०	१०७
योगकृतैर्बहु-	१९	९८
रूपरसगन्ध-	१६	८०
लोकान्तर्वर्त्यदो	७	२३
वर्ज्यत्यागो-	२१	१११
वस्त्वस्त्यभाव-	२५	१३०
विधिवाक्यै-	२७	१४३
विपिनगतो	१८	९०

श्लोकः	पुटम्	श्लो-संख्या
विभ्रुविभिन्नः	१४	६७
विभ्रुषु च मन	२५	१३४
विमतं वस्त्वनेकान्तं	१०	४५
विश्वोत्पत्त्यादि	१	३
विहितैककर्म-	२३	१२४
वेदे तु स्वर्गेच्छो-	२२	११७
शक्तिप्राकट्ये	२६	१३६
शमाद्यात्मा	७	२६
शास्त्रं प्रायोऽत्र	१५	६९
श्रुत्यादृष्टपथ-	४	१५
षोडशपदार्थ-	१८	९१
षोडशवस्तुषु	१८	९५
स तु तप्तशिला-	७	२७
सम्यग्ज्ञातं	७	२८
सरिदर्णव-	१६	७७
सर्वत्र सर्वधा	८	३६
सांख्याः सप्रकृति	१४	६३
सादृश्यमित्यभीष्टो	२५	१३२
स द्विविधो	१७	८४
सिद्धेऽपि चार्थे	२३	१२५
सेश्वरसांख्यो	२०	१०९
स्यादस्ति चावाच्यं	९	४०
स्यादस्ति नास्त्यवाच्यं	९	४१
स्याद्वादोऽयं तेषु	११	५२
स्याद्वादोऽयं मानं	१२	५५
हित्वा काम्यं	१४	६६

PART—B
Vol. XXI. Part II

PART-B
XXI

ĀSVAGHOṢA, THE POET AND PHILOSOPHER

Dr. S. VENKITASUBRAMONIA IYER

Āsvaghoṣa is a great figure in Sanskrit literature and Buddhist philosophy whose works have travelled beyond India and are found in translations in Chinese and Tibetan also. A good deal of work has been done on this author and his works by scholars, Indian and foreign, but a comprehensive study examining and evaluating his contribution as a whole, was a long-felt desideratum. Dr. Biswanatha Bhattacharya of the Viswabharati University has met this demand by his admirable treatise on Āsvaghoṣa, the result of an intensive and systematic study over a long period which gained for him the D. Litt degree of the Calcutta University.

In three major sections respectively entitled 'Āsvaghoṣa's life and works', 'Āsvaghoṣa's language and style' and 'Religion-

Āsvaghoṣa, a Critical study by Biswanath Bhattacharya, Viswabharati, Santiniketan, 1976. Rs. 60.

philosophical matter in Aśvaghosa' the author conducts an exhaustive examination of the diverse aspects of Aśvaghosa's output with meticulous care and keen insight. He subjects to severe scrutiny the writings of earlier scholars, whether they be in English, German, French, Chinese or Tibetan, and draws his own conclusions, which are, in general, convincing.

Numerous reasons are adduced to fix the date of Aśvaghosa as about 100 A. D., among which are his doctrinal position in Buddhism vis-a-vis the Sāṅkhya metaphysics recorded in his works and the antiquity and rarity of the metres he has handled. After elaborate discussion, the two well known Kāvya *Buddhacarita* and *Saundarananda*, and the dramas *Śarīputraprakaraṇa* and the not-so well known *Rāstrapālanātaka*, both of which exist only in fragments, are accepted as the authentic works of the author, and fifteen other works found assigned to him, among which are well-known ones like the *Vajrasūci*, *Gaṇḍistotragāthā* and *Sūtrālankāra* are declared as apocryphal, being mostly by the namesakes of the author, and on the basis of the nature of the contents in each.

The authentic works are dealt with in detail from their poetic as well as religio-philosophic points of view, keeping in mind the missionary spirit of the author. It is rightly pointed out that the Buddha of Aśvaghosa is indubitably the mortal Buddha of Indian history and not the ideated Buddha of the full-fledged

Mahāyāna of later date. Aśvaghōṣa's language, Sanskrit as well as Prakrit, is examined in all its aspects and attention is drawn to the specially noteworthy features in phonology, morphology, semantics and syntax. His poetry is examined from every aspect of Alāṅkāraśāstra and the dramas from every aspect of Indian dramaturgy. On the philosophical side, it is stated, that he takes Buddha as the embodiment of dharma and represents his philosophy as an improvement upon the Sāṅkhya-yoga metaphysics and that he must have belonged to some Mahāsāṅghika sect of the transitional period between the late Hīnayāna and early Mahāyāna.

Dr. Bhattacharya considers Aśvaghōṣa to be anterior to Kālidāsa (and Bhāsa too), and so takes his works as the earliest available specimens of mahākāvya and nāṭaka. Although this position may be warranted, we may remember that consensus on the date of Kālidāsa is still lacking and the relative priority between Aśvaghōṣa and Kālidāsa remains a matter of controversy. Numerous alāṅkāras, as many as 45, are illustrated from the *Budhacarita* and the *Saundarananda* on the basis of the definitions in later Alāṅkāra works, since in Aśvaghōṣa's own time many of them were undefined. These are stated to be on the basis of standard Alāṅkāra treatises. In view of the differences in the definitions of several alāṅkāras even in these standard works, it would have been advantageous if the particular work or works followed here had been specified.

The work is throughout interspersed with numerous German terms. This is not an unavoidable contingency, although it may be natural to a scholar to whom German is almost like his mother tongue.

On the whole, the present work of Dr. Biswanatha Bhattacharya can be considered an outstanding contribution to Sanskrit history and historical study.

A SHORT NOTE ON KANNADA PROSODY

N. V. KRISHNA WARRIOR

1 Sanskrit Metres in Classical Kannada Literature.

The early Kannada poets were all great Sanskrit scholars. Under all the irresistible charm of classical Sanskrit poetry, they composed their works, which were in the form of Campūkāvyaś, in highly Sanskritised style and mainly in classical Sanskrit metres. Pampa the father of Kannada poetry (A. D. 941) in his two epics Ādipurāṇa and Vikramārjunavijaya (alias Pampa Bhārata) has paid only scant regard to indigenous (Dēśi) Kannada metres, depending mainly on one metre derived from Prākṛt. viz. Kanda and six metres of classical Sanskrit, viz. , Śārdūlavikṛidita, Matṭēbhavikṛidita, Uṭplamālā, Campakamālā Sragdharā and Mahāśragdharā. Other classical poets who followed in the footsteps of the great master restricted themselves to these same metres. Only these metres are to be found also in the inscriptions of A. D. 600 to A. D. 1000¹. Because of the success with which the classical poets made use of the six metres derived from Sanskrit, Nāgavarma (A. D. 990) in his Chandōmbudhi, which is the earliest available work on Kannada prosody, has called these as Khyātakarnātaka or metres celebrated in Kannada poetry². It may also be noted that the metres Campakamālā, Uṭplamālā, Matṭēbhavikṛidita and Mahāśragdharā occur very rarely, if at all, in classical Sanskrit literature, and it seems that these have been popularised, if not invented, by the classical Kannada poets.

The metre par excellence, of Kannada Campū literature, however, is Kanda, which is a Mātrā metre composed of four lines, the 1st and the 3rd line having 12 and the 2nd and the 4th having 20 Mātrās each. The two halves of this metre, again are the same as the 1st half of the Āryā metre of Sanskrit with one Guru added at the end. This metre is called Skandhaka in Sanskrit and Khandhaa in Prākṛt. Obviously the name as well as the metrical form have been adapted from Prākṛt into Kannada.

From Kavirājamārga of Nripatunga (A. D. 817-877) and the examples quoted by Nāgavarma the author of Chandōmbudhi A. D. 990) and Kēśirāja (the author of Śabdamaṇidarpaṇa, circa A. D. 1260) it can be inferred that Kannada poets, to begin with, made use of those Sanskrit metres which have been the stock-in-trade of Itihāsas, Purāṇas, Kāvya and Nāṭakas, in Sanskrit, viz., Anuṣṭubh, Indravajrā, Vamśastha, Vasantatilaka Aupacchandāsika, Āryā, etc., and that after experimenting with these metres they rejected those which were found unsuitable to the genius of Kannada and adopted only those which, along with a few of the indigenous metres taken from folk literature, proved eminently serviceable for their purpose. It should also be stated that in the classical works in Kannada we come across, though not frequently, classical Sanskrit metres like Mālinī, Pṛthvī, Śikharinī, Hariṇī, Mandākrāntā, Mallikāṇalā, Taraṇa, etc.

2. Deśi Metres in Classical Kannada Poetry

Kavirājamārga, which is the earliest available work in Kannada and is a treatise on Poetics, mentions 4 indigenous metres, viz., Akkara, Caupadi, Gīṭige and Tripadi. Chandōmbudhi which is a regular treatise on Prosody divides metres used in Kannada into two categories, viz. Vṛttas and and Jāṭis. By Vṛttas the Varnaṇvṛttas adopted from Sanskrit

are meant while the category Jāti^{only} include Mātrāvṛttas taken from Sanskrit, Prākṛt Apabhraṃsa and indigenous metres. Chandōmbudhi defines 10 varieties of these indigenous metres, viz., Madanavṛtī, Akkara, Caupadi, Gīṭiko, Ele, Tripadi, Utsāha, Ṣaṭpadi, Akkarīke and Chandōvatamsa⁸. of these metres only Tripadi, Akkara, and Ṣaṭpadi are used in inscriptions upto the 10th century A. D. and in the works of Pampa and early classical poets. Sāṅgātya and Ragale, two metres not defined in Chandōmbudhi⁴ may also be added to the above three to form five Deśi metres favoured in early Kannada poets.

2. Trimūrtigaṇas or Amśagaṇas

It was realised from the earliest times that these indigenous metres are basically different from the Varṇa and Mātrā metres current in Sanskrit and Prākṛt because of the following reasons:

1. The number of syllables or Mātrās in each line is not fixed, but is variable to some extent.
2. The places of Gurus and Laghus are not rigidly fixed except in few special cases.
3. The most important consideration in these metres is rhythm (Laya), which is the result of repetition or alternation of rhythmic units (Layakhaṇḍas, Gaṇas or feet) in each line. For the sake of rhythm a Guru can be pronounced as a Laghu and vice versa. The addition or omission of one or more syllables is permissible, provided the rhythm is not affected.

Because of this fundamental difference the usual mechanism for the scanning of Varṇa and Mātrā metres was considered inadequate for the scanning of the indigenous metres and Nāgavarma provided an altogether different mechanism by defining a set of

feet (Gana) called variously as TrimūrtiGana, DvāGana or AśṭaGana.

The basic unit of these feet is one Guru. This may be substituted,

(i) by two Laghus if it occupies the initial position in the foot, and

(ii) by one Laghu, if it occupies any other position.

Feet consisting of two three and four such units are respectively termed BrahmaGana, ViṣṇuGana and RudraGana.

One unit i.e. one Guru, one Laghu (or 2 Laghus) alone cannot constitute a foot, except at the end of a line and that too exceptionally. No foot can contain more than four units.

Because the Guru can be substituted one or two Laghus depending upon its position in the foot, four variations are possible in BrahmaGana, eight variations in ViṣṇuGana and sixteen variations in RudraGana as detailed below :--

I, BrahmaGana (Two units; 4 varieties)

Example

1.	G. G.	Bra hman
2.	LL. G.	sura pam
3.	G. L.	dhā tr
4.	LL. L.	raja ne

II, ViṣṇuGana (Three units; 8 varieties)

1.	G. G. G.	gō vi ndām
2.	LL. G. G.	hrda yē śam
3.	G. L. G.	nā ki gam

4. LL. L. G.

5. G. G. L.

6. LL. G. L.

7. G. L. L.

8. LL. L. L.

vara hi tam

kam sā ri

nara kā ri

ari pa ti

mura ha ra

III. RudraGaṇa

(Four units; 16 varieties)

1. G. G. G. G.

gam gā dhi śam

2. LL. G. G. G.

giri jā nā tham

3. G. G. G. G.

nī la ka ṇṭham

4. LL. L. G. G.

vīṣa bha la ksyam

5. G. G. L. G.

kā mā nta kam

6. LL. G. L. G.

prama thā dhi ram

7. G. L. L. G.

Sū la dha ram

8. LL. L. L. G.

pura ma tha nam

9. G. G. G. L.

ka nda rpā ri

10. LL. G. G. L.

mada na dhvam si

11. G. E. G. L.

can dra mau li

12. LL. L. G. L.

Bhoja ga dhā ri

13. G. G. L. L.

bhū tā gra ṇi

14. LL. G. L. L.

triya ga dgu ru

15. G. L. L. L.

kā ma ri pu

16. LL. L. L. L.

Mada na ri pu

These three Gaṇas have been compared with the cirs with two, three and four Asais respectively, the two initial Laghus (in the place of one guru) with the Nirai Asai, and the Gurus and Laghus in the other places with the Nēr Asai of Tamil prosody. On the basis of this comparison, it has been maintained that these indigenous Kannada metres point to a pre-Sanskritic Dravidian prosodial tradition. However I have been unable to find

any direct connectionⁿ between these metres and the Tamil metres described in Tolkāppiyam and Yāpparuṅkalam and employed in the Sangham works. Comparison of these metres with the metres in the works of later Śaivite and Vaiṣṇavite saints of Tamil may perhaps yield better results.

In course of time the rhythm (Laya) based on the number of Mātrās gained the upper hand and it became the practice of poets to substitute the Gurus in the second, third and fourth places in the feet with two Laghus (instead of one Laghu), thus effecting a basic change in the nature of these metres and making them pure Mātrā-Vṛttas. As a consequence Brahma Gaṇa and Viṣṇu Gaṇa with two and three Amśas (constituents) respectively were substituted by Mātrā Gaṇas with three, four and five Mātrās with the names Brahma and Viṣṇu retained. Rudra Gaṇa with three Amśas was separated into two Gaṇas with three and four Mātrās, thus losing its identity altogether. Where such an accommodation was not possible, it became the practice to take a Guru as a separate foot at the end of lines.

4. Definitions and illustrations of indigenous Kannada metres

Without going into details we may describe these Dēśi metres of Kannada.

1. Tripadi.

Chandōmbudhi gives the following definition of Tripadi, which is also its illustration:

Bisaruḥō/ dbhāvaganam/ Rasadaśa/ Sthānadō/
Bisarthat/ nētra/ gaṇamebar/ 'kkullḥuvu/
Bisaruḥa/ nētra/ tripadigē/

This means that in Tripadi the sixth and the tenth places shall be occupied by Brahma Gaṇa while in all the other places there shall be Viṣṇu Gaṇa.

Tripadi transformed itself into a Mātrā Vṛtta, and became the most popular metre of Kannada in the hands of Virśaiva poets from the 12th century A.D. In this later form a stanza of Tripadi has three lines, the first and the second line of four feet each and the third line of three feet. The sixth and the tenth feet have 4 Mātrās while all the other feet have 5 Mātrās each. In the 7th and the 11th feet the five Mātrās should be capable of being divided into 4 plus 1, which means that the final syllable of these feet should be a Laghu. This can be illustrated by quoting a stanza by Sarvajñamūrti, The symbol “:” shows that preceding vowel has to be lengthened to suit the rhythm.

Obbana/ lladejagake/ ibbrum/ tēmatte/

Obbasa/ rvajña/ kartts: nul / jagakella/

Obdane/ daivā/ sarva:jña//

While reciting a stanza in this metre the second line has to be chanted twice. At the first time only the first three feet are chanted. In the second chanting the entire second line is recited followed by the third line, the total effect being that of the recital of a four-lined stanza.

The second and the third lines of this metre compared with the Venpā metre of Tamil and may be compared with the Mañjari of Malayalam.

2. Akkara.

Nṛgavarma has described five varieties of the Akkra metre, called (i) Piriyaakra, (ii) Dorayakkara, (iii) Naḍuvanakkara, (iv) Edayakara and (v) Kiriyaakra⁵. Of these five varieties only one, viz., Piriyaakra, has been used in inscriptions and in the works of Pamba and other classical poets. All these are quatrains.

(i) Piriyakkara.

The definition of Piriyakkara in Chandōmbudhi is as follows:

Modalo/ lajagaṇam/ kundade/ barkatta/ mayduga/ paṅga/
viṣṇuvakkum,
Tudiyo/ lembā/ tāṇado/ lelliyum/ kandarpa/ ripuagṇam/
nelasinilke/
Padado/ leṇaḍemba/ samkheyyo/ lāRaRo/ lajagaṇam/ sama-
vāya/ mappoḍakkum/
Sadama/ leṇduni/ bhānanē/ nākiga/ niṣṭadi/ nitidu/
Piriyakkaram

According to this definition each line of Piriyakkara shall consist of seven feet; the first foot shall be a BrahmaGaṇa; the last (the seventh) foot shall be a RudraGaṇa; and all the intervening feet shall be ViṣṇuGaṇas, which may occasionally be substituted by Brahma Gaṇas. Another illustration from Ādipurāṇa by Pampa:

Īgaḷ/ ninirdu/ nōnise/ nōntuma/ hābaḷam/ lalitāgam/ vajra-
nḡham/
Bhōga/ bhūmijam/ sṛidhara/ dēvam/ suvidhina/ rādhipa/
nacyutēndram/
Sāgarāntam/nelanani/tanitumam/ cakradim/ besakeysi/ vajranābhi/
Yāgi/ sarvārtha/ siddhiyo/ puṭṭi/ bharatado/ linnādi/
dēvanappom/

Here the 4th foot of the second line, the 2nd foot of the third line and the 4th foot of the fourth line are Brahma Gaṇas substituted for ViṣṇuGaṇas.

There are also instances where the initial Brahma Gaṇa has been substituted by a ViṣṇuGaṇa. The final RudraGaṇa has, however, to be preserved in tact.

(ii) Doreyakkara.

According to the definition in Chandōmbudhi each line of this quatrain consists of six feet in the order Viṣṇu, Brahma, Viṣṇu, Viṣṇu, Brahma. It has been said that this metre has been used by Asaga in his Karnāṭa Kumārasambhava.— This work is not available, and no other poet seems to have composed in this metre in Kannada. Hence the definition by Nāgavarma which is quoted below, is its sole illustration:

Sarasi jōdaragaṇa merada janumalli neradikke mattam
Sarasi jōdara ganamerad a janu makke gaṇamumā Rakkum
Sarasi jalōcanē dorevetta gaṇadim dorevettā pesarim
doeryāgisandu doreyakkara midana Rivudi teRadim.

(iii) Naduvanakkara.

The definition of this metre given by Nāgavarma is as follows:

Jalaga sombhavagaṇa makke modalōlnadu ve mūrum.
Jalaruhōd dara gaṇa makkei kāmānta kagaṇamakkum
tilakadantire talayolē bandikke; kāmabāṇā
Valiya pāṅgeyde gaṇamakke naduvanakkarakke sakhī.

According to this definition each of the four lines of a stanza in this metre should consist of 5 feet, viz., 1 initial, Brahma, 3 intervening Viṣṇu and 1 final Rudra. It is said that this metre has been used in Karanāṭa Mālatīmādhava Kāvya which has not yet come to light. A stanza in this metre, however, is found in Madanatilakam by Candra Rāja.

(iv) Edayakkara.

The following is the definition of this metre in Chandōmbudhi:

Vanaja sambhava gaṇa makke moda loḷattal
Vanaruhōdara gaṇa yugaḷa madakke ru-
dranada Ramtyadoḷ bandikke nālke gaṇa
Vinite, vanite, kēḷ, edayakkarakkinisum.

It is said that this metre is found in Karnāṭavyāsa Kathā, which unfortunately has not come to light. CāndraRāja in his Madānatilakam has made use of this metre also.

(v) Kiriyakkara.

The fifth and final variety of Akkara has been described by Nāgavarma as follows :

podeya larirbarum modalolikke

jadeya sankarambarum tadiyolikke

madadi kalimaru gana mesedikke

gada, kiriyakkarakkide lakṣaṇam.

According to this definition, each of the four lines of a stanza consists of 3 Gaṇas, viz., 2 Viṣṇu and 1 final Rudra. A work called Sṅgārapinda is to have made use of this metre, but this work is not available.

3. Akkarike.

The stanza in Chandāmbudhi which defines and illustrates/ this metre, is as follows:

Muraṇipu/ bommam/ muraṇipu/ bommam/ muraṇipu/ śūladharanta/

Sarasode/ nilkum/ kharagaṇa/ makkum/ surucira/ mātragaṇa/

Nirupama/ dindam/ paṭimita/ mappam/ tireyati/ rṇuniyatam/

Baretara/ lakshi/ dhareyoli/ dettam/ karamasa/ vakkantide,

According to this definition, each of the four lines of a stanza in this metre consists of 6 feet, viz., Viṣṇu, Brāhma, Viṣṇu, Brāhma, Viṣṇu and Rudra. The last Rudra may be substituted by Viṣṇu plus Guru.

4. Madanavati.

Nagavarma defines Madanavati thus:

Madanana/ tandeya/ ganamavu/ viṣayado/ liregumamum/

Dodayire/ padadola/ madanavo/ lappudu/ harapadamum/

Viditamū/ pēndraṣa/ tustaya/ dattala/ bujavadaṇa/

Madanaha/ ratroya/ dimhari/ kadepade/ madanavati/

According to this definition this metre can be scanned in three ways:

i. 3 Viṣṇu Ganas plus 1 Guru. (as shown above).

ii. 4 Viṣṇu Ganas plus 1 Rudragana (it may be remembered that one Guru added to a Viṣṇu Gana makes it a Rudragana)

iii. 2 Rudra Ganas plus 1 Viṣṇu Gana.

This metre also does not occur outside of Chandōmbudhi.

5. Chandōvatamsa

Madanana/ tandeya/ nameṣe/ diremo/ dalole/

Bandhe/ yama/ Woodhi/ samuḥ/ janmaḥ/

Bandudu/ lakṣa/ namava/ niyoli/ teradim/

Chandōva/ tamsa/ kkesedu/ dugaja/ gamanē/

According to the above definition of Chandōmbudhi one line of a stanza in this metre has 5 feet, viz. 1 Viṣṇu and 4 Brahma Ganas. This metre also is seen only in Chandōmbudhi.

6. Caupati

Chandōmbudhi defines this metre as follows:

Madanana/ tendeyamum/

dudayise/ śankaranol/

Vedavire/ samdudun/

Dattati/ caupadige/

2 According to this definition each of the 4 lines of a stanza consists of 2 feet, 1 Viṣṇu followed by 1 Rudra.

Akkarika, Madanavati, Chandōvatamsa and Caupadi have, like ^{the} Akkara, stanzas of 4 lines composed of Amsāgaṇas; but the examples show a stage where these have become more or less Mātrā Metres. They have specific Yatis (pauses) and Prāsas which will be described later.

7. Gītike.

Gītike is a quatrain each line of which consists of 7 feet. The last line a RudraGaṇa in the final place; the second line may have either a RudraGaṇa or a ViṣṇuGaṇa as the final foot. The second foot and the sixth foot in each line is a BrahmaGaṇa. The remaining feet are ViṣṇuGaṇas. The definition of Chandōmbudhi, which is also its illustration, is as follows:

Eraḍaṛo/ Iāṛem/ basamkhyeyol/ barepadma/ bhavanuṣi-
duvumel/ cāvate Radim/
Diremum/ daṇapa/ dammunṇinam/ tirekaram/ Gītike/
yimtā/ kkum sakhi/

8. Ēḷe.

A couplet of Ēḷe has 4 feet in the first and 5 feet in the second line. The 6th foot should be a BrhmaGaṇa; the other feet might be either Viṣṇu or Rudra Gaṇas. The definition-illustration of this metre by Nāgavarma is as follows:

Bhujagapakṣa/ puragaṇa/ vrajadolā/ Raṛōlakku/
majagana/ mēle/ gibhagate/

9. Utsāha.

Nāgavarma defines Utsāha as a quatrain, each line consisting of 7 BrahmaGaṇas and one final Guru. According to

later prosodists it is a MātrāVṛtta, each of the four lines of which consists of seven feet of three mātrās with one final Guru. Example:

Anta/ kanta/ kam di/ takke/ dēva nīne/ bhāvi/ pama/
 Dantā/ rinde/ kāvu/ denna/ nāva/ teprado/ lambha/ ya/
 Bhrānta/ namba/ likka/ mentu/ māpa/ dartha/ yukta/ ro//
 Śānti/ yamsa mantu/ mādu/ vudagu/ nam ma/ hatta/ ram/

10. Ṣaṭpadi

Nāgavarma defines this metre as follows:

Mandara/ dharagaṇa/
 Mondide/ kadayo//
 Kundade/nelasuge/ madanaharam/
 Induni/ bhānane/
 Mundana/ teRan//
 Yamdame/ yāgale/ ṣaṭpadikē//

According to this definition each half, i.e. each three lines, of Ṣaṭpadi consists of 6 ViṣṇuGaṇas and 1 RudraGaṇa. Poets upto the 10th century, including Pampa, have not used this metre. The earliest instance of Ṣaṭpadi being used in any work outside Chandōmbudhi is in Madanatīlakam by Candrarāja (circa 1079 A.D.). In the 12th and 13th centuries A.D. Ṣaṭpadi evolved into a Mātrā metre and six varieties of it called Śara, Kusuma, Bhōga, Bhāmini, Parivardhini and Vārdhaka emerged. The following verses, considered to be interpolations in Chandōmbudhi define these;

Onḍiḍa Rtuṣaṭpadigaḷo-

ḷemḍā teRanḍaḍapadamam mēḷ munda-

kkondare barkum tūdiya-

ḷindudharam bandōḍaRige ṣaṭpadiya teRan-

Tōruya mātreyā ṣaṭpadi-

plus 1 Guru in the long lines). [Ganas of 3, 4, and 5 Mātrās are respectively termed: Hāṣṭaka, Maṇḍaka, Maṇḍoḍaka. The modern Kannada Prosodists on the basis of the occurrence of such feet in Raga [es of these names.]

Illustrations of these varieties of Śaṭpadiś are given below:

- i. Śāra- (2 feet four Mātrās each in the short and 3 such plus 1 Guru in the long lines).

Īśana/ Karuṇeya/
nāśisu/ vinayadi/
dāsana/ hāgeye/nēmana/vē/

ii. Kusuma (2 feet of 5 Mātrās each in short and 3 such feet plus 1 Guru in the long lines)

pāśava/hariduvu/
lāsadi/ satyava/ tilimana/vē/

- iii. Bhōga. (4 feet of 5 Mātrās each in the short and 6 such feet plus 1 Guru in the long lines)

Nāḍumana/ sijaṇolavi/
nāḍuveḍe/ santatam/
nōḍidani/ miṣapatige/
māḍuvudu/ vinayavanu/
nāḍāḍi/ yavargeba/

- iv. Dhareya. (4 feet of 5 Mātrās each in the short and 6 such feet plus 1 Guru in the long lines).

Mereyu/ tidda/ bhāgya/ vella/
haridu/ hovi/ tenura/ tiruka/
marali/ nāci/ pōgu/ tidda/ marula/ nante/vē/
Dhareya/ bhōga/ yannu/ mecci/
pārava/ māretu/ kēḍalu/ bēḍa/
dhareya/ bhōga/ kanasi/ nante/ kēḷu/ māna/ vā/.

iv. Bhāmini. (4 feet in short lines, 2 feet of 3 Mātrās, in odd and 2 feet of 4 Mātrās in even places; 6 such feet in the same order plus 1 Guru in the long lines).

Kēlu/ janamē/ jayadha/ ritri/
 pāla/ kaurava/ nṛpana/ tandukr/
 pālu/ vinacara/ nāgra/ dalikeda/ bidanu/ kalipār/ tha/
 Tōla/ hiṅga/ tṛṅgaḷa/ mōreya/
 kāli/ keyabidū/ daleya/ nīrore/
 vāli/ gaḷakuru/ bhūpa/ niddanu/ tamma/ dirusahi/ ta.

v. Parivardhini. (4 feet of 4 Mātrās each in short lines and 6 such feet plus one Guru in long lines).

Duritava/ nambeḷe/ vudepo/ lamkole/
 parikali/ sidanava/ dōhala/ maartam/
 parikā/ ludakama/ dakekala/ vanya/ strāam/ gamege/ yme/
 paira/ kṣaṇeyati/ kāmṣeya/ daṛinava/
 nīrutam/ pordado/ ḍillam/ samṣṛti/
 yurukil/ bishame/ lliyuduṇi/ cārīse/ bhaṇṇaja/ gōttamaṣā/.

vi. Vārdhaka. (4 feet of 5 Mātrās each in the short and 6 of such feet plus 1 Guru in the long lines).

Kettaba/ ḷgattalege/ taranimun/ gāṇadīse/
 pottuveḷa/ gambēre/ tōrpparār/ bidadegha/
 rmmōttaarake/ mārutam/ bemardodār/ biṣuvār/
 baḷikāḷa/ vaṭṭadindam/
 kṛtrimada/ viṣadasom/ kiḡegarūḍa/ naḷavāḷiye/
 mattera/ kṣegemāntri/ suvarṅku/ bhāpani/
 nottuvanu/ tāpakede/ gōttodār/ baḍisuvār/ pēḷenda/ muni-
 pana/.

11 . Sāṅgatyā.

Sāṅgatyā has not been defined by Nāgavarma. It made its debut in Kannada at about A.D. 1410 in Sobagina Sōṇe by Dēparaja and became favourite of both classical (Bharatesa Vaibhava of Ralmakara-Varni. Haribadeyadharmā by SanciHonnaṃma,) and also folk poets. Since its constituent feet still retain their original Amśa character, this metre affords a lot of freedom to composers.

A stanza in Sāṅgatyā has 4 lines. The odd lines have 4 Viṣṇu Gaṇas each. The even lines have 2 Viṣṇu Gaṇas followed by one Brahma Gaṇa. Viṣṇu and Brahma Gaṇas may occasionally be substituted by the other two Gaṇas. To suit the rhythm a Laghu may be lengthened or a Guru may be shortened in recitation, Example;

Kuvaranāl dodebandal guṇavēna/ dārinde/
kuvariyāl dodekum/ dēnu/
ivarirval ṛṇlālil gepadedal varinde/
savanipuḷ dihapara/ saukhya./

(Laghus to be lengthened have been underlined)

In Yakṣagāna a stanza in this metre has broken into two independent Couplets retaining this same arrangement of feet.

12. Ragaḷe.

Apabhramśa prosodists have given the name Ragaḷa to a metre in that language. Certainly the name Ragaḷe and possibly the forms of metre included under this name in Kannada are adaptations from Apabhramśa. In Apabhramśa poetry a cluster of verses with unity of content is called a Kaḍavaka. The word Ragaḷe also might have originally meant the same thing; for in Kannada, Ragaḷe is a stanza having an indefinite number of lines, each line having the same number, of Mātrā-gaṇas, and the whole intended to describe some object place, etc. This form of stanza with indefinite number of lines provides much freedom to poets, especially because the Yati and

Prasa rules applicable to other metres in Kannada are generally disregarded here.

Chandōmbudhi contains 3 verses in Kanda metre defining Ragale:

1. Gaṇaniyamaviparyāśado-
lenevadedol, veseye mātresamanāgi gumā-
graniya matadinda tālada
gaṇanegodaṃbaṭṭodaduve raghaṭāchandam.
2. Mandānilalalitōtsava-
vendē ragalegaḷa nāmamakkum kramadin-
dondake padinālrpa-
ttondakirpattunālkumātregalaḷabale.
3. Ippattu māt্রে ragalege
bappudu padināru māt্রে mandānilakam
tappudu utsahaḷuRe-
yoppuvudippattunalku mātregalaḷabale.

According to the verse quoted first, in Ragale (or Ragata) the rules regarding Gaṇas are often violated; all the lines in a stanza should have the same number of Mātrās; and the most important consideration is that of Tāla (the regular beat). The second verse names the three varieties of Ragale as Mandānila, Lalita and utsava and prescribes the number of Mātrās per line for these varieties as 16, 23 and 24. The third verse is only a repetition of the second verse. Most scholars consider the second and the third verse to be later interpolations, Chandassāra of Guṇacandra (circa A. D. 1650) mentions the names of these three varieties of Ragale.

We may now examine these three varieties in some detail.

i. Utsāha Ragale

Chandōmbudhi says that one line of Utsava, which is another name for Utsāha, has 24 Mātrās per line. In practice, however, this

one line is broken into two equal parts, each having 12 Mātrās. Such a line is scanned into 4 feet of 3 Mātrās each. In some examples the fourth foot has only one Guru (2 Mātrās). Example:

- a) Kuḷirva/ pūgo/ laṅga/ lalli/
 taḷira/ kāva/ naṅga/ lalli/
 tumbi/ viṇḍi/ nante/ pāḍi/
 jakka/ vakki/ yante kūḍi/
 b) Māvi/ nadiyo/ lādu/ tum/
 pāda/ neyde/ kēlu/ tum/
 poḷta/ nintu/ kaleyu/ tum/
 tolaga/ dirda/ reseyu/ tum/

One stanza in this metre is found in Pampa Bhārata; but the classical poets have mostly disregarded this variety.

ii. Mandānila Ragale

According to Chandōmbudhi one line of this metre contains 16 Mātrās. In practice a line is scanned into 4 feet of 4 Mātrās each or 2 feet of 3 Mātrās and 2 feet of 5 Mātrās each in alternation. Examples :

- a-1) Ā ve/ leyoḷati/ sambharama/ mesedire/
 pūvali/ purav/ thigalo/ ne/ redire/
 pavaḷada/ rannada/ guḍiga/ guḍiga/
 navamau/ ktikaram/ gadagām/ guḍiga/
 me Reduvu/ mi Ruguva/ misuniya/ tōraṇa/
 ma Rikeya/ purajana/ dutsava/ dōraṇa/
 māṇaya/ māṇa/ palaviḷe/ milirdire/
 nāṇā/ vidhaviṭṭa/ dadhvan/ yuḷirdire/
 pōṇaḍō/ ladaṭā/ ladaṇṇu/ ninadam/
 paṇarise/ gītara/ vamaḱaḍ/ binadam/
 baḱeḱiḱi/ vandadu/ rāḱaḱi/ pracayam/
 biḱaḱoḱa/ vandadu/ nāṇi/ nicayam.

a-ii

Polalabe/ daṅgam/ mlgeme/ ccinōdi
divijēn/ dravilā/ sadoḷin/ tukūdi/
karumū/ damanā/ daradin/ damēRi/
keladol/ mādaṅga/ ḷanaRi/ dutōRi/
karitura/ gabalaṁ/ gaḷ per/ cuvantu/
maleyam/ mandala/ mumber/ cuvantu/
nelanam/ paripā/ lisedhar/ masūnu/
sukhamir/ damripu/ balatimi/ rabhānu/

b) nandal natgaḷoḷ/ suliva/ birayiyim/
kampu/ kaṁmaleye/ pūta/ surayiyim/
sutta/ lum pariva/ jaripo nalgaḷim
etta/ lum naḷiva/ posana vilgaḷim
beḷadu/ magamagipa/ gandha/ śāliyam
alli/ suliva gili/ vinḍi/ nōliyam
dhanada/ rannariva/ renipa/ paradarim/
dēvā/ rannariva/ renipa/ birudarim/
neReye/ sogayipā/ ēka cakramam/
mecci/ dam/ hariga/ namita/ vikrama m

This metre, also called Maṭṭa Ragaḷe, seems to be an adaptation of the Paddhati (Pajjhaṭikā) metre of Apabhramśa, and in certain manuscripts of Pampa's works the name Paddhati, Paddali or Paḍḍali is given to stanzas in this metre.

iii. Lalita Ragaḷe

Lines of this metre, which according to Chandōmbudhi consist of 20 Mātrās, are scanned into 4 feet of 5 Mātrās each. Example:

Viṣayaviṣa/ valliyaṁ/ percisuva/ jaladāre
sādhutva/ mam kiḍisi/ naḍesuva/ du/ rācare/
kapaṭanā/ tākatatige/ tāne neḷe/ yenisuva/
kopagra/ haveśa/ janmanidhi/ yenisuva/
śastradr/ ṣṭige/ tīmra/ paṭalatati/ yenisuval
dōṣamem/ bāṣi/ viṣakkepu/ ttenisuval

In addition to these three varieties, there is another variety of Ragale in Pamba Bhārata:

AdaRa/poravo / jalavi śāla/ kanaka/ kṛtaka/ giriga/
 tim pha/ lapra/ kīrṇa/ taruga/ līm/
 nancya/ koneya/ tālira/ mugula/ vanala/ tāni/ kunjadam
 la/ satpra/ śūna/ puñja/ dim
 gagana/ tālame/ paRidu/ bīdu/ denipa/ bahuta/ tāka/ dim
 ku/ kildu/ nalina/ kōka/ dim/
 tegeya/ dabda/ samiti/ pōle/ pariva/ madaga/ jaṅga/ lim ta/
 rattu/ raṅga/ maṅga/ lim/
 lavana/ jaladhi/ balasi/ dante/ balasi/ dagāla/ nīla/ dīndul
 dagra/ kanaka/ sāla/ dim/
 kanaka/ śāla/ menisi/ negāda/ bhūmi pāla/ bhavana/ dim
 sa/ masta/ vastu/ bhūvana/ dim/

Each line of this stanza has 12 feet of three Mātrās each, excepting the final foot, which has only two Mātrās (one Guru).

Ragale metre though handled by Pampa and other classical poets of Kannada, revealed all its potentiality in the hands of Harihara (A. D. 1200) who composed a large number of story-poems (Kathana Kāvya) mainly in the three varieties of this metre and thus came to be known as the poet of Ragale (Ragaleya Kavi).

13. Lalita.

This is different from the variety of Ragale of the same name. A stanza in this Mātrā metre has four lines, each consisting of four feet, the first three of five Mātrās and the fourth of four Mātrās. Example:

Samkugora/ loṭaṭa/ muttinasa/ raṅga/
 komkiḍida/ perbuliyu/ gursobagu/ vatsam/
 kamkavan/ kettisida/ tālipada/ kaṅga/
 sōmkaleru/ gōḍavana/ pengalerde/ gōḍam/

14. Utsaha.

99.

Unlike the variety of Ragale having the same name, a stanza in this metre is a quatrain, each line consisting of 7 feet of 3 Mātrās each plus an 8th foot of 2 Mātrās (one Guru) Example;

Anta/ kanta/ kamdi/ takke/ deva/ nina/ bhāvi/ paṃ
dantā/ Rinde kāvu/ denna/ nava/ teRado/ Lambha/ ya/
bhrānta/ nam ba/ jikka/ mentu/ māpa/ dartha/ yukta/ ro/
śanti/ yam su/ mantu/ mādu/ vudugu / paṃ ma/ hatta/ram/

15 Akkarike

A stanza in this Mātrā metre consists of 4 lines, each line having 6 feet of 4 Mātrās and a 7th foot of 2 Mātrās (one Guru). Example :

Suranuta/ cāraṇē/ varagaṇa/ bharāṇē/ khararuci/ bimbaga/ te/
sarasija/ vadanē/ surucira/ /radanē/ purahara/ nāṃgayu/ tē/
karadhṛta/ nalinē/ parihṛta/ maline/ harividhi/ śakranu/ tē/
kariripu/ gamanē/ hariripu/ śamanē/ pore giri/ rājasu/ te/

16 Layagrāhi.

A stanza of this Mātrā metre consists of 4 lines, each line having 7 feet of 5 Mātrās and a final foot of 4 Mātrās. Example:

Omdudese/ yolturuka/ rondukaḍe/ yolmorasa/ rondeseyo/
lāreyara/ bṛndamaḷa/ vim bē/
Rondubali/ yol tiguḷa/ rondiravi/ nol koḍaga/ rondu kela/
dol malepa/ ronduverē/ dellar/
sandanisi/ kālegake/ munduvari/ vannamada/ tindavara/
taṭṭuḷaḷa/ pandalega/ landi/
gṛndabali/ yittu nala/ vinde cika/ dēvanṛpa/ nandamige/
perjasama/ nondi sogā/ vālgum/

17 Layōttara

A stanza in this metre is a quatrain, each line having 14 feet of 3 Mātrās and a final foot of 5 Mātrās. Example:

TuRuge/ tumbi/ guruḷa/ bamba/ lideka/ pōla/ rāṅga/ dol tu/
 lunke/
 poṅga/ raṅga/ dol ma/ laṅge/ vijaya maṅgadoḷ/
 miRuge/ palla/ caviga/ leḷedu/ nelasi/ celvu/ yāna/ dol be/
 daṅgu/
 baleye/ māna/ dol ma/ namtoḷ/ ḍamke/ dānaḍoḷ/
 neReye/ navapa/ yōdha/ rōtha kumbha/ maliye/ pāda/
 dol ca/ lānda
 kam vi / nōda / dol ka / daṅge / madhura/ mōdadoḷ/
 me Redu/ pugugu/ maṅga/ neyaru/ maaka dāne/ yum na/
 manni/ kā ma/
 nikhila / bhuvana / mam ta / dīya / rāja / bhavanamam /

18 Sisa

Sisa, which is extensively used in Yakṣagānas, came to Kannada from Telugu. A stanza in this metre consists of 4 lines, each line having 6 ViṣṇuGaṇas and 2 BrahmaGaṇas (30 Mātrās in all, as a Viṣṇu Gaṇa has 4 and a BrahmaGaṇa has 3 Mātrās). As in Telugu, in Kannada also a stanza in Sisa metre is considered incomplete unless followed by a stanza in the ĀṭaVeladi or TētaGiti metre. Of these, ĀṭaVeladi is a couplet, each line of which consists of 3 BrahmaGaṇas, 2 Viṣṇu Gaṇas and 5 Brahma Gaṇas. Tēta giti is a quatrain, each line having 1 Brahma, 2 Viṣṇu and 2 Brahma Gaṇas. Examples of these are given in the note on Telugu metres.

19. Kanda.

Kanda is the staple Mātrā metre of classical Kannada literature. A stanza in this metre has 4 lines. The first and the third line have 3 feet of 4 Mātrās each and the second and the fourth line have 5 such feet. In the odd places of both halves a foot with a Guru in between two Laghus (a Jagāṇa) should not be used. The sixth foot in both halves should be either a Jagāṇa or a foot with 4 Laghus. Example:

Iradoy/ vadu/ ta nniccege/
 varayu/ vanadam/ du puruṣa/ nam prakr/ tirajam/
 boreḍu ti/ riputte/ suṭṭure
 teraḷcita Rageleya/ nuyvate/ Raḍim/ dettam/

These are the main metres which have been used in Kannada literature upto the 20th century, when the romantic revolution wrought a change not only in the content, but also in the metrical patterns, and poets started experimenting with folk rhythms and free verse. This, however, is beyond the scope of our present study.

8. Yati and Prāsa.

Yati in Sanskrit prosody is a pause for breath within or at the end of a line, where the morpheme should end. Places for such pauses have been prescribed in different metres, and a failure to observe Yati is considered a defect (Kāvya Doṣa). Prāsa is a repetition of the same consonant, which is considered an ornament of the sound (Śabdālamkāra).

Tamil prosodists do not speak about Yati, but Tōṭai, which contains several types of Prāsa, has been considered as a constituent of metre by Tōḷkappiyar and others following in his footsteps. Tōṭai has been divided into five categories, viz., Mōnai Etukai, Muran, Iyaippu and Aḷaṭṭai. Of these Monai viz., the identity or similarity of the initial syllable and Etukai, viz., the identity or similarity of the second syllable, have been observed by poets of Telugu, Kannada and Malayalam. Monai is called Yati in Telugu and is almost compulsory.

In Kannada prosody Yati signifies pause, as in Sanskrit; but in metres borrowed from Sanskrit the poets of Kannada do not observe the Yati rules of Sanskrit. In Sanskrit the second line of a stanza never runs-out to the third line, but this is the invariable practice in Kannada and also in Telugu. This disregard of Yati is stated to be an excellence of the Kannada Poetry.⁶ However in indigenous metres Yati is to be observed and words should end in stipulated places both within and at the end of the line.

Etukai is called simply "Prāsa" in Kannada and is considered a constituent of metre. By Prāsa is meant the similarity or identity of the consonant or consonants between the first and the second vowel in each line. Since similarity can be of several kinds, the Prāsa also has several varieties, and has been elaborated into six categories, viz, Simha, Gaja, Vṛṣabha, Aja, Śarabha and Haya.

A single consonant after a short vowel, repeated in the 4 lines, is SimhaPrāsa, as,

Ḡirigal Paramānugaleṇa
 Saṛōjabhavaṇi karindramem māḍidanem
 Diradidara kāyabalamam
 Nirūpīsal nāgarajanum neRedapanē.

(Here the repetition of the underlined consonant constitutes SimhaPrāsa).

If the preceding vowel is long, the alliteration is called Gajaprāsa. Where the preceding vowel long or short, has an Anuswāra attached to it the Prāsa is called Vṛṣabha. If the previous vowel long or short, has a Visarga attached to it, the Prāsa is called Aja. In both these varieties, the preceding attachments have also to be repeated along with the consonant, which may be single or may be a conjunct. When the preceding vowel has no Anuswāra or Visarga attached to it and what is repeated is a conjunct composed of different consonants, the Prāsa is called Śarabha. Repetition of genuinated consonants in identical situation is called Haya Prāsa.

Prāsa in any one of these categories is obligatory in Kannada poetry, excepting in the Ragale metre, where, though not as a rule, this Prāsa is observed between two consecutive lines of the multi-line stanza.

Internal Prāsa within the same line, called OḷaPrāsa, is also obligatory in certain metres. This has been compared with the Yati of Telugu Prosody.

NOTES

1. Two Tripadi stanzas are found in the Badami inscription of circa 700 A. D. There is a stanza in Akkara metre in the Sravana belagola inscription of A. D. 942. One Saṭpadi stanza is found in an inscription of A. D. 1067 at Citradurga.
2. Guruvondādiyoḷutpalam, gurumodal mūrāge śārdūlamā
Gurunālkāgiralamtusragdhare, laghudvanvdam gurudvandvamā-
Gire Mattēbha, laghudvayatriguruvimdakkum mahāsrāgdharam
Harinākshi, laghu nālku campaka, vivārum khyāṭakarnāṭakam.
3. Madanavatiyakkaram cau-
padi gītike yēle tīpadi yutsāham saṭ-
padi yakkarige karam cel-
vodaṇḍa chandōvatamsamabjadalāksi!
4. The verses defining Ragale in Chandōmbudhi are considered to be later interpolations.
5. Eradam mūrum nālku
guruvim prastarisalambunidhigajadha raṇi-
śāvaragapamogegumavarkkam
sarasījabhavaviṣṇurudrasaṇ jnagalakkum.
Ch; 5, 240.
6. Yativilaṅghanadindaridalte Kannaḍam (Sadbamaṇidarpana).

KALIDASA ON THE ARTS

Dr. T. Bhaskaran,

A poet whose main aim in writing is to evoke the desired sentiment in the heart of his readers by finding an appropriate "objective correlative" has nothing to do with ideas as such. He tries to rouse the sentiment by striking a sympathetic chord in the heart of the connoisseur. For the successful evocation of sentiment the method prescribed by Bharata, in his *Natyasastra*, the monumental work on dramaturgy, namely, depicting in perfect combination suitable characters; matching surroundings for them, the fleeting sentiments to which they are subject to from time to time and so on is the best. Kalidasa, the foremost among Sanskrit poets, followed this method. Hence, in a sense, it will be futile to search for his views in his poems on any given topic. Besides, such a study will not contribute much to the direct appreciation of his poetry. Nevertheless, certain incidental remarks of Kalidasa made by way of casual and general statements may point to his way of thinking on specific topics. Kalidasa was an adept at using the figure of sense called *arthantaranyasa* in which a general statement is corroborated by a particular one and vice versa. A fairly correct idea of Kalidasa's views on the arts can be reconstructed from such obiter dicta. Even though not directly connected with poetic appreciation as such, this enquiry may be of indirect help to it by throwing a flood

of light into his poetic insight, uncovering the hinterland of his mind.

Genius and inspiration, essential ingredients of creation:—

That genius and inspiration form the basic ingredients of creative activity has been clearly expressed by Kalidasa. This is patent from his introductory remarks in the beginning of *Raghuvamsa*. A poet should be endowed with genius. Only a man of supreme intelligence can even aspire for the position of a poet. A man of limited intelligence cannot successfully compose a great poem on a sublime subject.

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व जाल्पविषया मतिः ।

Raghuvamsa I. 2.

If a man lacking in genius tries to snatch fame by composing poems he will be subject to ridicule as a dwarf becomes the laughing-stock of others on trying to reach at fruits at a height.

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।

Raghuvamsa I. 3.

A genuine poet engages himself in creative work only when he is inspired. Without inspiration he is helpless. That is why Plato complained that the poets were unconscious of the nature of their work and that they were impelled by an external, though divine, force while engaged in creative activity. Kalidasa holds that a poet cannot help writing when he is under the spell of inspiration. He has put this indirectly by way of an apology for his undertaking, namely, the compilation of *Raghuvamsa*.

तद्गुणैः कर्णमागत्य चाधलाय प्रचोदितः ।

Raghuvamsa I. 9.

The question of Identity in the Artistic process:

Creative activity requires the whole-hearted attention of the artist. Through meditation he establishes complete identity between himself and the object at hand. This वर्णनीयतन्मयीभाव is effected through भावसमाधि. It is said that 'Valmiki before commencing the actual composition of the story of Rama not satisfied with the elaborate preparations made by him remained in meditation and visualized everything pertaining to the nature of the characters of the story. The advaitic theory of perception is very relevant in this context. To see an object, according to Advaita, means that the mind (अन्तःकरण) which is of a luminous nature (तेजस) goes out through the eye and establishes contact with it and subsequently assumes its form. Similarly on conceiving an idea the mind assumes its form (सदकास्वप्ति). The case of creative activity and that of appreciation bear resemblance to this. If Identification is established creation and appreciation become easy. The poet gives expression to the moods and feelings by falling into a trance as it were. The critic has to fall into a similar trance to reproduce the moods and feelings of the poet, so that he might have the full appreciation of the poem. This idea has been explicitly brought out by Kalidasa both with reference to the composition of poetry and the appreciation of painting. If the critic is sympathetic to the poet appreciation becomes lively. This also is implied in the following passages.

Sakuntala is engaged in the act of meditating on the way in which her love-letter is to be worded. As she was full of the thoughts of her lover identification became very easy. This is indicated by horripilation on her cheeks. Her posture with an eyebrow lifted points to the level of

concentration she has been able to achieve.

उन्नमितैकभ्रूलत-

माननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।

कण्टकितेन प्रथयति

मय्यनुरागं कपोलेन ॥

Sakuntala III, 13

While appreciating with remorse the picture of Sakuntala the king forgot that it was only a picture. As one who painted her he could bestow all his feelings on it and it was easy for him to imagine as if she herself were before him. By associating with sympathy for the king the Vidusaka also was lifted away from reality and made to forget that it was only a picture. In the frenzy of love the king realizes Sakuntala herself in the picture, the Vidusaka says. He adds that his association with the king has made him share the latter's condition.

एष तावदुन्मत्तः । अहमपि एतस्य संगेन ईदृशवर्ण इव संवृत्तः ।

Sakuntala VI

Not only the Vidusaka but also Sanumati, the divine, damsel came under the influence of the art especially because she was moved by affection towards Sakuntala:

अहमपि इदानीमवगतार्था । किं पुनयाथार्थालिखितानुभाव्येषः ।

Sakuntala VI

On reminding that it was only a picture the king complained that the Vidusaka's act was ill-advised because he was enjoying the sight of Sakuntala as if she were before him through identification of the heart by the mediation of the

picture. Recollection of reality caused the dissolution of concentration and she is once again reduced to the state of the picture.

किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम् ।

दर्शनसुखमनुभवता साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।

स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्तीकृता कान्ता ।

Sakuntala IV, 21.

Identification of actor with character:

While staging a drama, the actor enacting the role of a particular character should completely merge his personality in and establish identity with the latter. Otherwise the acting itself will go wrong. This has been exemplified by the experience of Urvashi, the divine nymph, while enacting the role of Laksmi in a drama staged in heaven. Urvashi when asked by her friend 'whom do you love?' answered Pururavas, instead of Purusottama, forgetting that she was in the role of Laksmi. She was really in love with Pururavas at that time. The slip that invited a curse from the sage Bharata was caused by her failure to merge her personality in that of the character.

Aesthetic transport:

On achieving identity with the object depicted the enjoyer of art feels it in all its glory. This enjoyment lifts the connoisseur to a higher plane from the mundane life. This aesthetic transport is implied in the following stanza of the Sutrādhara of Sakuntala.

तदास्मि गीतसंगेन हरिणा प्रसन्नो हृतः ।

एष राजेव दुष्यन्तः सारभेणातिरहसा ॥

Sakuntala I. 5.

As a result of this aesthetic transport the activities of the sense organs become suspended for the time being bringing forth a state of rapt attention, which can be rightly described as "willing suspension of disbelief." The state of the audience present to witness the presentation of Sakuntala after being enchanted by the song of the actress is to the point.

रागवद्विस्तृप्तिः सर्वतः अलिखित इव सर्वतो रङ्गः ।

Sakuntala I.

The ineffable experience of enjoying music is allied to aesthetic transport. A mysterious uneasiness wells up in the mind on listening to enchanting voices or on seeing beautiful objects. This may be attributed to the remembrance of friendships formed in former births. This is the feeling of Dushyanta on hearing the music of Hamsapadika with whom he was once very fondly in love:

रम्याणि वीक्ष्य मुधुरांश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं

भावास्थिराणि जनानान्तरसौहृदानि ॥

Sakuntala V. 2.

A similar idea of nostalgic remembrances roused by a beautiful object in nature has been expressed by Kalidasa in the Meghasandesa. Even the minds of persons

in the company of their beloved ones will be subject to uneasiness on the advent of clouds, then what will be the state of those separated from their spouses.

मेघलोके भवति सुखितोऽप्यन्यथावृत्तिः चेत्
कदाचिन्मोक्षमप्यनिश्चये किं पुनर्दूरेत्यर्थः ॥

Meghasandesa.

Poet and critic:

Kalidasa was a poet of inborn genius. His genius was matched by his unstinted training (बलवत्प्रशिक्षित) and learning. Brimming with self-confidence he had high regard for the connoisseur because he was fully conscious of the fact that poetry finds its alter-ego in the latter. In the *Malavikagnimitra* he has paid a glorious tribute to the सहस्य otherwise called सज्जन by stating that the latter forms his own opinion on literary works after having himself taken the trouble of going through them in contradistinction of a fool who is carried away by the opinion of others.

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते

मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।

Malavikagnimitra I. 2.

In the *Sakuntala* he has expressed his regard for the सहस्य here called विद्वान् through the words of the stage-director. Only when the learned appreciate a work a poet can feel confident however much the latter might be experienced.

आ परितोषाद्विदुषां

न साधु मन्ये प्रसंगविज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षिताना-
मात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

Sākuntala I. 2.

The mind of the critic is, according to Kalidasa, the real touchstone to find out the merits and demerits of a poem. (सर्वसद्व्यक्तिहेतवः)

Art and nature:

That art is complementary to nature is almost universally accepted. Art is ideal in as much as it depicts what ought to happen. It has the capacity to correct nature. What is by nature imperfect can be depicted as perfect in art. Even unpleasant objects and incidents put in poetry give rise to pleasure. This view of Indian aestheticians is shared by Kalidasa. A painting is not an exact replica of what is in nature. Whatever is wanting in nature can be supplied by art. Kalidasa has twice hinted at this idea in the Sakuntala. Even though the Vidusaka admired the picture of Sakuntala drawn by Dushyanta the latter felt that the special power of painting to complete nature has failed in this case because her beauty was beyond the supreme power of art. Art has failed even in reproducing at least a fraction of her beauty.

यद्यत् साधु न चित्रे स्यात्
क्रियते तत्तदन्यथा
तथापि तस्या लावण्यं
रेखया किञ्चिदन्वितम् ॥

That perfection can be attained in art is once again alluded to in Sakuntala when the king was driving home to the Vidusaka the extra-ordinary beauty of Sakuntala. He has said that her creation might have been by the process of drawing her in a picture first and then infusing life into it.

चित्रे निवेद्य परिकल्पितसुखयोगा ।

Sakuntala II. 9.

Poetry and Painting:-

Some pronouncements of Kalidasa on the art of painting bring forth its difference from poetry. The most important feature of painting is that it depicts an important moment in life. That is to say, it is still. Even though it can create the illusion of movement it can never depict movement whereas poetry can easily do it. A lover leaning to kiss his sweetheart cannot ever hope to accomplish it and the un-kissed kiss becomes thus immortalised. The mysterious smile of Mona lisa can be enchantingly portrayed, but never the movement of her lips. To put it in the words of Keats.

‘Bold lover never, canst thou kiss.
Though winning near the goal-yet do not grieve;
She cannot fade though thou hast not thy bliss,
For ever wilt thou love and she be fair’.

This peculiarity of the art of painting seems to have been uppermost in the mind of Kalidasa from his references to it in his works. When Diliṇa attempted to take an arrow from his quiver to shoot the lion that had captured

the cow under his protection he found his hands benumbed. His posture then could be compared to an action put in a picture.

चित्रप्रतिबिम्ब इवावतस्थे ।

Raghuvamsa II. 31

The very same words are repeated in the third canto of Kumarasambhava. When Cupid (God of love) with his retinue came to the forest where Siva was doing penance the followers of Siva were about to be influenced by the feeling of love. Nandikesa, the chief of His hosts immediately chastised them and as a result the entire forest appeared as if drawn in a picture.

तच्छासनात् काव्यमेव सत्

चित्रप्रतिबिम्ब इवावतस्थे ।

Three dimensional effect:

By a judicious and dexterous use of light and shade the illusion of the third dimension is effected in paintings and pictures. Only an accomplished artist can give rise to the feeling that there is unevenness in pictures, because there is no high or low plane in them; still they are seen due to the skill of the artist. (चित्रे नतोन्नतं नास्ति च, दृश्यते अथ च । Mahayana sutralamkara XIII. 17. Quoted by Ananda K. Coomaraswamy: The Transformation of nature in Art P. 30 [and also P 145) Kalidasa was aware of this peculiarity and has directly hinted at it in the Sakuntala where the Vidusaka looking at the picture of the heroine observed that he felt as if his eyes were stumbling at uneven places. Sanumati's statement

endorsing the view of the Vidusaka also points to the same fact.

(मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानु प्रवेशः । स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नो-
न्नतप्रदेशेषु ।

सानुमती अहो राजर्षेर्निपुणता । जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति ।)

Form and Content:

In the benedictory verse of Raghuvamsa Kalidasa has foreshadowed the idea that form and content are inseparable. He says that sound and sense representing form and content are inseparable like the pair of Parvati and Parameswara.

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थेप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

This brief survey reveals that Kalidasa had certain definite ideas about the nature and function of poet, critic music, painting and the like. The depth of his learning and the sublimity of his genius become evident from this enquiry. It is for the reason of possessing in abundance poetic qualities of a high order that he became endeared to the minds of generation after generation of Indians.

1. The first step is to identify the problem or question that needs to be addressed. This involves understanding the context and the specific requirements of the task.

the 1990s, the number of people in the world who are undernourished has declined from 1.1 billion to 800 million. The number of people who are malnourished has declined from 1.5 billion to 1 billion. The number of people who are obese has increased from 100 million to 300 million. The number of people who are overweight has increased from 100 million to 300 million. The number of people who are obese and overweight has increased from 100 million to 300 million. The number of people who are obese and overweight has increased from 100 million to 300 million.

()

[illegible]

the 1990s, the number of people in the world who are illiterate has increased from 1.2 billion to 1.5 billion. The number of illiterate people in the world is projected to reach 1.7 billion by the year 2015. The number of illiterate people in the world is projected to reach 1.7 billion by the year 2015.

1. *Chlorophyll a* and *Chlorophyll b* were determined by the method of Arar and Collins (1971) using a Shimadzu 1010 spectrophotometer. The concentration of chlorophyll was expressed in $\mu\text{g mL}^{-1}$ of the sample.

[illegible]

**Statement about ownership and other particulars about
THE JOURNAL OF THE KERALA UNIVERSITY
ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE AND
MANUSCRIPTS LIBRARY**

**to be published in the first issue every year after the
last day of February**

FORM IV (See rule 8)

- | | |
|---|--|
| 1 Place of Publication | Trivandrum |
| 2 Periodicity of its publication | Half yearly |
| 3 Printer's Name | T. Baby |
| Nationality | Indian |
| Address | Vijñanabhavan Printers
Manacadu, Trivandrum-9. |
| 4 Publisher's Name | Dr. K. Raghavan Pillai |
| Nationality | Indian |
| Address | Dr. K. Raghavan Pillai
Director and Professor of
Sanskrit, Oriental Research
Institute and Mss. Library,
Kerala University, Trivandrum. |
| 5 Editor's Name | Dr. K. Raghavan Pillai |
| Nationality | Indian |
| Address | Dr. K. Raghavan Pillai
Director and professor of
Sanskrit, Oriental Research
Institute and Mss. Library,
Kerala University,
Trivandrum. |
| 6 Name and address of individuals
who own the news papers and
partners or share holders
holding more than one per-cent
of the total capital. | University of Kerala |

**I. K. Raghavan Pillai, hereby declare that the parti-
culars given above are true to the best of my knowledge
and belief.**

**Trivandrum.
8.8-77.**

**K. RAGHAVAN PILLAI (Sd/-)
Signature of Publisher.**

Statement about the condition of the ship

THE SHIP IS IN A GOOD STATE OF REPAIR

AND IS CAPABLE OF MAKING A GOOD RUN

TO ANY PORT IN THE NORTH ATLANTIC

OR TO ANY PORT IN THE SOUTH ATLANTIC

OR TO ANY PORT IN THE INDIAN OCEAN

OR TO ANY PORT IN THE PACIFIC OCEAN

OR TO ANY PORT IN THE ARABIAN SEA

OR TO ANY PORT IN THE BAY OF BENGAL

OR TO ANY PORT IN THE GULF OF BENGE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF MALACCA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SINGAPORE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SUMATRA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF JAVA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BALABAC

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BORNEO

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF CELEBES

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF MALAYSIA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SINGAPORE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SUMATRA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF JAVA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BALABAC

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BORNEO

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF CELEBES

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF MALAYSIA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SINGAPORE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SUMATRA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF JAVA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BALABAC

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BORNEO

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF CELEBES

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF MALAYSIA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SINGAPORE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SUMATRA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF JAVA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BALABAC

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BORNEO

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF CELEBES

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF MALAYSIA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SINGAPORE

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF SUMATRA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF JAVA

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BALABAC

OR TO ANY PORT IN THE STRAITS OF BORNEO



NOTICE

**All Correspondence regarding this journal and
for review may be sent to:**

**THE DIRECTOR & PROFESSOR OF SANSKRIT,
Oriental Research Institute & Manuscripts Library
University of Kerala, P. O. Karyavattom, Trivandru**

**Printed at the Vijnana Bhavan Printers, Manacaud, Trivand
and Published by Dr. K. Raghavan Pillai, Director & Profes
Sanskrit, ORI and Mss Library, for the University of Kera**





8000321626

